पुस्तक :

पावस प्रवचन

द्वितीय पुष्प

प्रकाशक :

जयपुर चातुर्मास प्रवचन प्रकाशन समिति

मूल्य :

२)५०

श्रद्धा के दो शब्द

जयपुर चातुर्मास के शुभावसर पर आचार्य श्री १००८ श्री नानालालजी मा० सा० के प्रवचनो का यह द्वितीय पुष्प पाठको की सेवा मे प्रस्तुत करते हुए हमे अतीव प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

आचार्य श्री का दिव्य संदेश "किं जीवनम् ? सम्यग् निर्णायकम् समतामयञ्च यत् तज्जीवनम्" घर-घर में प्रचारित एवं प्रसारित होकर मानव जीवन को सुपथ पर अग्रसर करने मे प्रेरणात्मक बने—यही इस प्रकाशन का उद्देश्य रहा है।

प्रस्तुत पुष्प के सम्पादन एवं दिशा-निर्देशन मे हमे आचार्य श्री के सुशिष्य श्री शान्ति मुनिजी मा० सा० का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ उसके लिए हम आपके अत्यन्त आभारी हैं।

मैं तो सिर्फ निमित्त मात्र हूं—सर्व ओर से मुझे जो अपूर्व सहयोग मिला उसके लिए मैं अपने सब सहयोगियों को धन्यवाद देता हूँ व आभार मानता हूँ।

ज्ञानचन्द चोरडिया
एम ए, बी.कॉम., एल एल.बी.
सयोजक
जयपुर चातुर्मास प्रवचन प्रकाशन समिति

दिनांक
१८-११-७२

आचार्य श्री जी का प्रत्येक प्रवचन साधु मर्यादा एव शास्त्राज्ञा की सीमा मे आवद्ध होता है। गुरुदेव का कार्य तो प्रवचन देना मात्र है। उनका इन प्रवचनो के प्रकाशन या मुद्रण से कोई सवन्ध नही है, अत इस पावस-प्रवचन माला मे कोई भी शब्द या वाक्य सदोष आ गया हो या मूल भावो मे कोई अन्तर दिखाई दे तो उसके लिए हम ही उत्तरदायी हैं, क्योकि ऐसी भूल हमारे से ही प्रमादवश सभव है।

अनुक्रमणिका

अनन्त-ज्योति

अतरच खलु स पेहाए, धीरे मुहुत्तमवि णो पमायए—
आचाराङ्ग २/१

अनत जीवन प्रवाह मे जीवन को बीच का सुअवसर जानकर
साधक मुहूर्तभर के लिए भी प्रमाद न करें।

(प्रार्थना)

अनन्त जिनेश्वर नित नमूँ, अद्भुत् ज्योति अलेख।
ना कहिये ना देखिये, जाके रूप न रेख।। अनन्त जिनेश्वर नित नमूं।
सूक्ष्म थी सूक्ष्म प्रभु, चिदानन्द चिद्रूप।।
पवन शब्द आकाश थी, सूक्ष्म ज्ञान स्वरूप।। अनन्त जिनेश्वर नित नमू।।

यह प्रभु अनन्त नाथ की प्रार्थना है। प्रार्थना की कडियो के साथ अनन्त नाथ भगवान् के विषय मे कुछ सकेत दिया है। उस सकेत को पाकर मस्तिष्क उस अर्थ के अनुसधान की ओर घूम जाता है। प्रभु के चरणो मे भव्य प्राणी अपने भावो को भक्तिपूर्वक रखता है तो उसके जीवन मे अपूर्व हर्षोल्लास का प्रसग आता है क्योकि भगवान् अपूर्व शक्ति सम्पन्न हैं। प्रभु का वास्तविक स्वरूप साधारण मस्तिष्क मे नही आ सकता है। दीर्घ अनुभवी महात्मा-योगी लोग योग साधना के माध्यम से उनका कुछ अंकन कर पाते हैं। साधना के क्षेत्र मे जब मानव तल्लीन बनता है तब उसे कुछ प्रभु का आभास हो सकता है। उसके आभास का स्थल हृदय है। आन्तरिक वृत्तियाँ हैं। मनुष्य के जीवन मे अनेक तत्त्व निहित हैं। बाह्य और आतरिक दृष्टि से मनुष्य के जीवन का अवलोकन किया जाय तो बाहरी दृश्य की अपेक्षा अन्तर मे और ही दृश्य है। अन्तर मे जितनी मानसिक वृत्तियाँ काम करती हैं उन मानसिक वृत्तियो के बीच जब वह सत्य तत्त्व का ध्यान करता है तो उस वक्त उसको अनन्त नाथ का कुछ आभास हो सकता है। जब अन्दर की चाह बढती है तो अन्दर के भाव कविता की कड़ियो के रूप मे प्रस्फुटित होते हैं। कविता का प्रारम्भ भी कुछ इस

आशय की स्थिति से व्यक्त हुआ है, ऐसा माना जा सकता है। क्योंकि इसमें कहा है—

> अनन्त जिनेश्वर नित नमूं, अद्भुत् ज्योति अलेख।
> ना कहिए ना देखिये, जाके रूप न रेख॥ अनन्त जिनेश्वर....

शब्दों का अर्थ कुछ झलक ही रहा है और यह भावना व्यक्त हो रही है "अनन्त जिनेश्वर नित नमूं"। कहाँ है अनन्त जिनेश्वर ? हमारी दृष्टि मे आ रहे है क्या ? हम उनको जब देख ही नही पा रहे हैं तो उनको नमन कैसे किया जाय ? पर साथ मे संकेत है कि उनको आप इन चमडे की आँखो से नही देख पायेंगे। वे अद्भुत् ज्योतिस्वरूप हैं, जिनका कोई रूप नहीं है। न उनका कोई आकार ही है और न ही वे वर्ण, गन्ध, रस स्पर्श से युक्त है। पौद्गलिक आकार रहित प्रभु के अद्भुत् स्वरूप का आभास मात्र कर सकते हैं लेकिन उनको देख नही सकते। देखने का प्रसंग भी एक समय आ सकता है बशर्तें कि इस मानव जीवन को आप समग्र रूप से समझ ले और इस जीवन की परिभाषा को भी, जो कि आप लोगो के सामने निरन्तर व्यक्त हो रही है। उस परिभाषा को सभी दृष्टिकोण से आप अवलोकन करते हुए अन्तर की वृत्तियों में उसका प्रवेश करालें तो अनन्त नाथ भगवान् के दर्शन भी इस जीवन के लिए असम्भव नही है, कठिन अवश्य है। लेकिन यह कठिनता भी शनैः शनै सुगमता के रूप मे परिणित की जा सकती है। इस जीवन से बढकर इस ससार मे अन्य कोई जीवन नही दीखता। विशिष्ट आत्माए है उस दिव्य रूप को सुन कर सोचा करती है कि इस मानव जीवन का कितना महत्त्व है। विकास की स्थिति का जितना इसमें चान्स है उतना किसी दूसरे जीवन मे नही है, विशिष्ट केवलज्ञानियों ने भूमण्डल पर इस बात की उद्घोषणा की है। उस उद्घोषणा को नही समझने के कारण यदि वर्तमान जीवन को कुछ भी न समझ कर व्यर्थ मे गंवाया तो बहुत बड़ी भूल होगी। हम इस भूल को सुधारने के लिए इस जीवन को समझने का प्रयास करे। इस जीवन मे अनन्त नाथ भगवान् की अद्भुद् ज्योति कैसे आये, जिस ज्योति के लिए जिस प्रकाश के लिए वडे वडे योगी लोग साधना के वल से अपनी जीवनियो की इतिश्री कर लेते है लेकिन उस ज्योति को, उस प्रकाश को पूर्ण रूप से प्राप्त नही कर पाते है। अत उस दिव्य जीवन को प्राप्त करने के लिए जीवन की परिभापा को समझना नितात आवश्यक है।

मैं अनन्तनाथ भगवान् की प्रार्थना कह रहा हूँ। आज से करीब ढाई हजार वर्ष पहिले वीतराग प्रभु भगवान् महावीर ने वस्तुस्थिति का प्रतिपादन करते हुए भगवान् अनन्त नाथ के स्वरूप को प्रकारान्तर से रखा है। "अनन्त" का मतलब है जिसका अन्त नही । इस ससार मे जितने पदार्थ दृष्टिगोचर होते हैं सब नाशवान है अत सान्त है किन्तु प्रभु पद अविनाशी है उनमे अनन्त शक्ति है अतः वे अनन्त हैं। उस जीवन मे अनन्त शक्तियो का पूर्ण विकास है उसी अनन्तता को प्राप्त करने के लिए आप और हम लालायित हैं। उसके लिए शास्त्रो मे प्रक्रिया बतायी गई है जिसमे धर्मध्यान और शुक्ल ध्यान का प्रसग आता है जिसका विस्तृत वर्णन शास्त्रो मे विद्यमान हैं। उस ध्यान मे यदि मानव तल्लीन हो जाय तो जीवन का जो वास्तविक सम्यक् निर्णायक स्वरूप है वह दृष्टिगत हो सकता है और वह प्रभु की अद्भुद् शक्ति के स्वरूप को भी अपने आप मे प्रकट कर सकता है। जो शक्ति प्रभु मे है वही शक्ति हमारे अन्दर भी विद्यमान है। उसको भली प्रकार से समझने का प्रयास करें।

इस प्रकार का आध्यात्मिक चिन्तन भारत भूमि और भारतीय जनता को बहुत समय से प्राप्त है। एक नही अनन्त तीर्थंकरो ने यहाँ जन्म लिया किन्तु उनके दिव्य स्वरूप को हम समझ नही पाये। इसीलिये भारतीय जीवन आज जिस स्थिति मे चल रहा है यह स्थिति कुछ विचारणीय है। भारतवासियो को तो यह सोचना चाहिये कि हम इस आध्यात्मिक क्षेत्र मे, नैतिकता के धरातल पर और जीवन की साधना के क्षेत्र के साथ-साथ वैज्ञानिक पद्धत्ति मे भी अन्य देशो से बहुत आगे हैं। यह ठीक है कि इस युग की स्थिति के अनुरूप प्रेक्टिकल रूप मे नही है फिर भी सैद्धान्तिक दृष्टि से हम बहुत आगे हैं। ये सैद्धान्तिक बाते जो आज भारतीयो को उपलब्ध हैं वे सिद्धान्त आज अन्य क्षेत्रो को उपलब्ध नही हैं। अन्य देशो मे इस विषय की तो गवेषणायें ही चल रही हैं। विज्ञान के क्षेत्र मे वैज्ञानिको ने खोज प्रारम्भ की। खोज की दृष्टि से आगे बढे। खोज करते करते उन्होने किस स्थान पर पहुँचने का प्रयास किया। पर इतना करते हुए भी उनके ऐतिहासिक पृष्ठो मे देखें तो पता लगेगा कि वे जीवन की सम्यक् निर्णायक स्थिति पर नही पहुँच पाये हैं। भारतीय सस्कृति एक आदर्श सस्कृति है। इसके द्वारा मानव अपना आध्यात्मिक विकास करके चिर सुख शाति को प्राप्त कर सकता है।

जीवन को पानी मत बनाइये

आज का मनुष्य कितना ही भौतिक शक्तियो के सहारे चले लेकिन वे भौतिक शक्तियाँ आध्यात्मिक जीवन की उपलब्धि नही दे सकती हैं जिस आध्यात्मिक शक्ति से व्यक्ति अपने आप के अन्तर को देख सकता है। क्या आप अपने अन्तर की स्थिति को देखने का प्रयास करेगे। आज मानव की दृष्टि बाहर की ओर लगी हुई है। मानव इधर-उधर दृष्टिपात करते हुए यह सोचता है कि फॉरेन के अन्दर जो कुछ बाते श्रवण करने को मिल रही है क्या वे हमारी भारतीय सस्कृति मे, या भारतीय संस्कृति के ग्रन्थों मे है। क्या ये बाते भारतीय पुस्तकों में मिल सकती हैं? अधिकतर व्यक्तियो को इस बात की जानकारी नही परन्तु ऐसा वर्णन हमारी पुस्तको में उपलब्ध है। इस बारे मे मैं आपसे कुछ कहने की स्थिति में हूँ। आपके साहित्य और शास्त्रो के अन्दर वस्तुतत्व का स्वरूप उससे बढकर विद्यमान है। जीवन की कला, जीवन के स्वरूप का वर्णन, जीवन की पद्धति क्या है, जीवन के सिद्धान्त क्या है, आदि सभी विषय आपके इन भारतीय सस्कृति के ग्रन्थों में उपलब्ध हैं जो फॉरेन के ग्रन्थो मे नही है क्योकि उनका इतिहास जब हम देखते हैं और उनके विकास के क्रम को सामने लेते हैं तो हमे ज्ञात होता है कि वे अपने आप में अन्दर प्रयोग करते हुए कैसे आगे बढ़े है। यूनानी दार्शनिको का जो प्रथम दर्शन है, उस ग्रीक के दार्शनिक को लेते है, उस ग्रीक दार्शनिक कोलिस का चिन्तन है कि ससार में जो कुछ है जड़ ही जीवन है। जड़ ही जीवन का स्वरूप है। संसार का स्वरूप एक तत्व में है। उनकी एक कल्पना इस प्रकार से वही। वे कैसी कल्पना करते थे, उसका थोड़ा सा नमूना यदि आज आप देख लेगे तो आप अपने मस्तिष्क से चिन्तन कर पायेगे। उनका चिन्तन कुछ भी महत्व नही रखता है। ग्रीक दर्शन में प्रथम दार्शनिक थेलिश हुआ है—उसने जीवन के एक तत्व का चिन्तन किया और उसने कहा कि पानी ही सब कुछ है, पानी से ही जीवन बनता है, पानी ही जीवन का स्वरूप है। पानी से ही संसार चल रहा है, पानी से ही पत्थर बने है। याने सब कुछ पानी ही है। इस प्रकार का दृष्टिकोण बना। इस दृष्टि-कोण से वे अपने आपको समझाने लगे। अब उनका दूसरा साथी आता है–एनाक्षी मेनसे। वह कहता है, पानी ही जीवन नही है। जीवन तो वायु है। इस वायु से ही संसार की रचना हुई है। यह जीवन जो जड़ और चेतन के रूप में है। यह वायु से निर्मित है। यह एक ही तत्व वायु

के सहारे चल रहा है। परन्तु इससे कुछ लोगो को तुष्टि नही हुई। तीसरे साथी उनके इस क्षेत्र के अन्दर आये जिसका नाम हेराक्लीट्स था। वह कहने लगा—यह जीवन पानी और वायु से नही बना है। तेज ही जीवन का सहारा है। तेज ही सृष्टि का तत्व है। तेज ही जीवन का स्वरूप है, तेज ही आत्मा है। तेज से ही जड और चेतन की रचना हुई है और यह सब उसी के अन्तर्गत चल रही है। लेकिन ये सब छद्मस्थ, अधेर व्यक्तियो की खोजे थी और उसके साथ एक न एक व्यक्ति एक-एक नई खोज को लेकर आता रहा। एक कहता है पानी से सृष्टि की रचना हुई है, दूसरा कहता है वायु से जीवन, सृष्टि की रचना हुई है और तीसरा कहता है कि तेज से। आप इसको मान जायेंगे ? प्रारभिक विद्वानो की दृष्टि से इन सबको सामान्य रूप से यहाँ पर लिया है। यहा जड़ तत्ववाद का उल्लेख आया है। जो सृष्टि के अन्दर तत्व है उन सब मे इसका सम्मिश्रण है और उसके अन्दर जीवन है। आप सोचिये, प्रारभिक विद्वानो को, दार्शनिक दृष्टि और उनका दर्शन क्या सोच रहा है। आज की दृष्टि से उनका चिन्तन भिन्न चल रहा है। यह उनका प्रारंभिक सोचना था। इसके बाद जो दार्शनिक आये हैं उन्होने द्वैतवाद की स्थिति का प्रसग उपस्थित किया। जड और चेतन का प्रसग आया। जड और चेतन को खोज आगे चली। ऐनाक्षी गोरस नामक दार्शनिक ने कहा—सृष्टि के अन्दर स्वतन्त्र रूप से दो तत्व हैं। एक है जड तत्व और दूसरा है चेतन (*Nous*) तत्व। जितने निर्जीव पदार्थ दिखते हैं उनको जड तत्व और जितने चेतन्य के स्वरूप मे दिख रहे हैं उनको चेतन्य तत्व के अन्दर रख लिया जाये। इस प्रकार उन्होने आगे की स्थिति रखी। इसके पश्चात् आधुनिक ढग के ग्रीक दार्शनिक डेमोक्रिट्स का सिद्धान्त नानार्थ-वाद के रूप मे आया। वह कहने लगा हम दो ही सिद्धान्तो से नही चलते हैं, सृष्टि के स्वरूप मे दो तत्व ही नही है, दो तत्वो को ही जीवन का स्वरूप नही समझा जा सकता है। उसने नानार्थवाद की स्थिति को सामने रखा और यह घोषणा की कि संसार अनेक तत्वो से बना है। उन्होने सख्या की दृष्टि से गिना और उसको असख्यात्मक सख्या बता कर अनत दृष्टि का चिन्तन किया जो वर्तमान का वैज्ञानिक युग है, इसमे भी कही कुछ चिन्तन हो रहा है तो कही कुछ। इस समय जो स्थिति सामने आ रही है उसमे अनत तत्व है। इन अनत तत्वो की खोज आज मानव भौतिक साधनो से कर रहा है। आज मानव का सारा का सारा जीवन भौतिक खोज की ओर मुड रहा है। आप जरा सोचिये। विज्ञान के धरातल पर आप जरा

चिन्तन करेंगे तो आपको विदित होगा कि आज का वैज्ञानिक किस आधार पर इस जीवन की स्थिति का अकन करने की कोशिश कर रहा है। मै इस बात को आपके सामने इसलिए रख रहा हूँ कि मानव मस्तिष्क मे आज कल इन पाश्चात्य दर्शनो का, एव वैज्ञानिक दृष्टिकोणो का एक विशेष महत्त्व हो गया है। आज इसको महत्व की स्थिति से देखा जा रहा है। अब जो आधुनिक जीवन की परिभाषा है उसके साथ ही यदि आप भारतीय संस्कृति के प्राचीन ग्रन्थो को देखेगे और उनके शास्त्रो का अवलोकन करेगे तो आपको मालूम होगा कि नानार्थवाद, द्वैतवाद, अद्वैतवाद, जडवाद ये सारे वाद भारतीय सस्कृति के ग्रन्थो के अन्दर विद्यमान है। जो आध्यात्मिक दृष्टि पर आधारित हैं। अलग-अलग दार्शनिको के दर्शन की जो पृष्ठ भूमि रही है, वे सारे तत्व, प्रयोग और सिद्धान्त यहाँ पर विद्यमान है और उनको देखने से आप इस निष्कर्ष पर पहुँचेगे कि जीवन का स्वरूप उसमे से ढूंढा जा सकता है।

आप वर्तमान जीवन मे जिस ख्याति और शक्ति को प्राप्त करना चाहते है, वह कैसे प्राप्त की जा सकती है इस दृष्टिकोण से चिन्तन करें। पाश्चात्य देशो के विद्वानो, विशेषकर ग्रीक देश के विद्वानो का उल्लेख मैंने किया है। वहा पर जो और विद्वान हुए है उनके दृष्टिकोणो को भी सामने रखा है, और रख रहा हूँ। आप इन पर जरा सोचिये, चिन्तन कीजिये। आप कहेगे महाराज, पाश्चात्य दृष्टिकोणो से हमारा कोई मेल नही है। पर मै कहूँगा फिर भी यह हमारे देश मे क्यो फैल रहा है। आप अपने मन को थोड़ा इसकी ओर केन्द्रित कीजिये। तुलनात्मक दृष्टि से मैंने इस विषय को छुआ है। हम चिन्तन के क्षेत्र मे आगे बढकर चिन्तन के द्वारा उस जीवन के स्वरूप को समझने का प्रयास करे कि इस जीवन के साथ अनन्त शक्ति का सम्बन्ध जुडा हुआ है। हम कैसे आत्मा की अनत शक्ति को मानते हैं और कैसे आत्मा को स्वतन्त्र अस्तित्व के रूप मे मानते है। इस प्रकार के महत्वपूर्ण विषय हमारे ग्रन्थो मे भरे पडे है पर उनकी तरफ हमारा ध्यान ही नही है। वैज्ञानिक और पाश्चात्य दार्शनिक उन गहन तत्त्वो को समझने का प्रयास कर रहे है और हम कान मे तेल डालकर सो रहे हैं। सत्य रूप से देखा जाये तो हमारा यह सारा जीवन संघर्ष के लिये रहा है। जीवन की सारी शक्ति लडाई झगड़े करने मे, तेरी मेरी करने में जा रही है। मेरा पडोसी क्या कर रहा है, मेरा पडोसी उन्नति क्यो कर रहा है, मैं इस उन्नति करने वाले पड़ोसी के पैरो मे कैसे कुठाराघात करू, उसको गिराकर मै कैसे उन्नति के शिखर पर

पहुंच जाऊ, यह भावना भारतीयो के मस्तिष्क मे प्रवेश कर गई है। भारतीयो मे जो अपूर्व दिव्य शक्ति, दिव्य ज्योति विद्यमान थी वह आज उनमे से ओझल होती जा रही है। इतना होते हुए भी, इतनी पिछडी स्थिति मे बैठ कर भी हमारी निद्रा भंग नही हो रही है, हम प्रगाढ निद्रा में सो रहे हैं। आप प्रश्न करेंगे महाराज कहा सो रहे है, सोये हुए होते तो लाल भवन मे कैसे आते ? मैं आपके लिये ही नही कह रहा हू। आपके भाई बहुतेरे है, जो प्रमाद की नीन्द मे सो रहे हैं। आप भी यहा तो जरूर बैठे हुए है। आपका दृष्टिकोण मेरी तरफ लगा हुआ है। आपके कान कुछ श्रवण भी कर रहे है लेकिन जिस प्रकार से यह लाल भवन धार्मिक दृष्टि से जीवन के अनंत स्वरूप को ढू ढने का आकर्षण बिन्दु है, वैसा आकर्षण बिन्दू आत्म स्वरूप के प्रति आपके जीवन का वन गया है या नही ? यहा आप सुनने आये हैं, सुनते है और सुन कर चले जायेंगे। चलो भाई लाल भवन पहु च जाय, कुछ सुन ले और अपनी हाज़री दे दें—अन्यथा कभी महाराज ने पूछ लिया और हाज़री न हुई तो अच्छा नही रहेगा। आज रविवार का दिन है, छुट्टी का दिन है अत. जैसे अन्य क्षेत्रो मे पर्यटन आदि के लिये जाते हैं वैसे ही यहाँ पहुँच जाये। पर हाजरी भरने के लिये भी किस टाइम पर पहुंचना है व्याख्यान के प्रारम्भ मे या पूरा होते २। मैं सुनता हूँ कि भारतवासियो की आदत कुछ ऐसी बनी हुई है, कि वे समय के पाबन्द बहुत कम मिलते हैं। कही २ स्कूल के अन्दर सुनने और देखने का प्रसग आता है। अध्यापक लोग छात्रो की हाज़री लेते हैं उसके बाद फिर छात्र ईमानदारी के साथ अध्ययन कर रहे हैं या नही, ईमानदारी से पढ रहे हैं, या नही यह नही देखते है। ऑफिस मे कोई अधिकारी देखरेख के लिये उपस्थित हुआ तो इधर उधर घूमते हुए मिलेंगे। यह प्रवृत्ति और इस प्रकार की स्थिति, हमारे जीवन का नक्शा व्यक्त कर रही है। आज भारत का मानव अपने जीवन मे कितना लापरवाह वन रहा है। अपने उत्तरदायित्वो के प्रति लापरवाह हो रहा है और कर्त्तव्यो के प्रति लापरवाह हो रहा है। हम कर्त्तव्यो की जिम्मेदारी कहाँ तक महसूस कर रहे हैं ? इसका अनुभव जब तक इन्सान नही करेगा, उसके साथ ईमानदारी के साथ पेश नही आएगा तब तक कुछ उन्नति नही हो सकती है। आज के मानव का जो रूप सामने आ रहा है वही भारतीयो के दुख का कारण है, उनकी विषमता का कारण है, अशान्ति का कारण है। इस अशान्ति मे आप कहाँ जीवन रत्न को ढूँढ पायेंगे। भगवान कैसे आपको शान्ति दे। आप प्रार्थना करेंगे, पर शान्ति कैसे मिलेगी। आप तो बाहरी दृश्यो की ओर

दौड़ रहे है, आपा धापी करने में लगे हुए हैं। यह कहावत चरितार्थ हो रही है कि जितना संग्रह कर सके उतना कर लेना चाहिये। यही जीवन का ध्येय, यही जीवन की दृष्टि बन गई है। इधर उधर हाथ फैलाने लग गये है। इसकी तरफ दौड़ लग रही है। फिर हम चाहे कि अनंत नाथ भगवान के दर्शन हों तो कैसे हो सकते हैं ?

छात्र पढने की दृष्टि से स्कूल पहु चता है और वह स्कूल मे अध्ययन की कक्षा मे न बैठे और हाजरी माड कर बाहर खेल कूद करता रहे और दिन भर उसीमे बिता दे, फिर वह छात्र परीक्षा के समय यह चिन्तन करे कि मैं परीक्षा के अन्दर प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण होऊं। क्या वह छात्र प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण हो सकता है ? नही हो सकता है। जब वह नही होता है तो दु:ख का अनुभव करता है और कभी-कभी इतना दु:खी हो जाता है कि इस जीवन को ही समाप्त कर लेने की सोच लेता है और यह कल्पना कर लेता है कि यह हमारा जीवन बेकार जीवन है, इतने समय तक स्कूल मे अध्ययन किया और मैं फैल हो गया अब इस जीवन को रख कर क्या करू। वह यह अनुसंधान नही कर पाता है कि वस्तुतः मैंने अध्ययन किया या नही। मैंने खेल कूद किया या अध्ययन किया। अगर खेल कूद मे लगा रहा तो अध्ययन नही हुआ और उसके परिणाम स्वरूप मैं फैल हो गया। इस बात का वह अनुसंधान नही करता है लेकिन चूंकि मैं फैल हो गया इसलिये मेरा जीवन ही व्यर्थ हो गया इस प्रकार के विचारों से आत्मघात तक करने के लिये तैयार हो जाता है।

मैं जब देहली मे था तो सुना गया कि कुतुब मिनार पर पहरा लगा हुआ है। मैंने पूछा क्यो ? तो कहा कि आजकल परीक्षाओ के रिजल्ट निकल रहे है और परीक्षाओ के रिजल्ट मे छात्र पास भी होते हैं और फैल भी होते है। जो फैल होने वाले छात्र हैं वे उस एक वक्त की असफलता को लेकर अपने वर्तमान के बहुमूल्य जीवन को समाप्त करना चाहते है और कुतुब मिनार पर चढ कर आत्माघात करना चाहते हैं इसलिये सरकार की ओर से पहरा लगाया गया है कि कोई छात्र कुतुब मिनार पर चढ न सके।

मैं जब इस बात को सुनता है तो मुझे आश्चर्य होता है कि आज भारतवासियो की क्या दशा है ? जीवन की कली खिली नही, विकसित नही हुई उसके पूर्व ही स्वयम् की लापरवाही से फैल हो कर मरने की तैयारी कर रहा, आत्मघात कर रहा है। आत्मघात कितना बडा पाप है यह उसको महसूस नही हो रहा है। महसूस कैसे हो, जब उसने जीवन

का मूल्य ही नही समझा है। विना मूल्य समझे ही वह जीवन को समाप्त कर रहा है।

पहिले किसकी दाढ़ी बुझाओगे ?

आत्मघात करने के लिये कई भाई और बहिने तैयार हो जाते हैं। यह केवल छात्रो का ही प्रसग नही है। मेरे कानो मे कभी-कभी कुछ भाई और बहिनो की बाते सुनने को आती हैं, वे सोचते हैं कि इस जिन्दगी मे क्या पडा है, जिधर देखो उधर गरीबी और आपा धापी मे समस्याये हल नही हो पाती हैं इसलिये इस जीवन से तो मरना ही श्रेयस्कर है। मैं भाई बहिनो को परामर्श देता हूं कि इन थोडी सी समस्याओ को लेकर अपने आपको खो रहे हैं और इस वहुमूल्य जीवन को समाप्त करने के लिये उतारू हो रहे हैं। कितना जघन्य पाप कर रहे हैं। दुनिया मे इससे बढकर कोई पाप नही हो सकता है। यह आत्मघात महापाप का भी महा पाप है। कत्लखाने मे भी पाप होता है कसाई महापाप का कार्य कर रहा है, पर आत्मघात करने वाला उससे भी बढकर महापापी है। आप सोचेंगे, यह कैसे ? कसाई बकरे आदि का वध कर रहा है उसको महापापी कहा जा सकता है। जो व्यक्ति अपने जीवन को ही समाप्त कर रहा है दूसरो के जीवन को तो समाप्त नही कर रहा है। वह अपने जीवन को भी इसलिये समाप्त कर रहा है कि उससे दुख सहन नही हो रहे हैं या और किसी अन्य प्रकार की बातो से अपने जीवन को समाप्त कर रहा है। इसको महापापी क्यो कह रहे है ? इसलिये कि बकरे और भैसो को काटा जाता है उनमे क्रूरता आती है और अतिक्रूरता के अन्दर हिंसा होती है फिर भी जो बकरे पर हाथ उठा रहा है, वह यह सोचता है कि छुरी चलाने से मुझे कष्ट नही होता है, वह अपनी सुरक्षा कर दूसरो पर छुरी चलाता है वह यह अनुभव नही करता है कि यदि मेरी अगूली पर पड जाय तो मुझे कैसा अनुभव हो। इस प्रकार उसमे क्रूरता जरूर आती है और इतनी क्रूरता आती है कि इसको महापाप की सज्ञा दी गयी है। पर आप सोचिये कि उसकी अपेक्षा भी जो अपने आप पर छुरी चलाता है, वह अत्यधिक क्रूर बनता है तब जाकर अपने शरीर के अवयवो पर हाथ उठाता है।

वीरबल और बादशाह दोनो मनोविनोद की दृष्टि से बातें कर रहे थे। बातो ही बातो मे बादशाह ने सहज ही मे प्रश्न कर दिया। वीरबल ! तुमको सबसे ज्यादा प्रिय कौन है ? वीरबल ने कहा, जी हजूर सबसे ज्यादा प्रिय आप हैं। दुनिया मे आप से बढकर कोई प्रिय नही है। आपका जीवन

महत्वपूर्ण जीवन है। और आपके जीवन को मैं सबसे श्रेष्ठ और प्रिय समझता हूं। आपके लिये शासन व्यवस्था सबसे प्रिय है लेकिन मेरे लिये तो आप ही श्रेष्ठतम, प्रिय है। बादशाह ने कहा मैं अधिक प्रिय हूं? जी हजूर। तो तू एक बात का उत्तर दे कि तुम्हारी दाढी मे भी आग लग जाय और उसी समय मेरी दाढी मे भी आग लग जाय तो पहले तू किसकी आग बुझायेगा? तो उस समय बीरबल कहने लगा, जहा पनाह, हजूर माफ करिये यहां पर तो सबसे पहले हाथ मेरी दाढी पर ही जायगा। पहले मैं अपनी दाढी को बुझाऊंगा और बाद मे आपकी दाढी को बुझाऊंगा।" तो बता—अभी तो तू कह रहा था कि आप सबसे प्रिय हैं और सारा जीवन आप पर न्यौछावर है तो मेरी दाढी पहले क्यो नही बुझाता है। हजूर, वह तो आदर्शवाद की बात है। यथार्थवाद की बात तो यह है कि मै अपने आपको सबसे प्रिय समझता हूँ। मैं अपने जीवन को सबसे अच्छा समझता हूँ और दूसरे नम्बर पर मैं आपको समझता हूँ और फिर तीसरे नम्बर में अन्य व्यक्तियो को समझता हूँ। यह तो एक रूपक है।

मनुष्य को अपना जीवन कितना प्यारा है, कितना प्रिय है। कितना बहुमूल्य है यदि इस ओर मनुष्य सोचे तो जीवन को समझ सकता है। लेकिन मनुष्य अपने जीवन के महत्व को न समझ कर थोडे से संकटो को देख कर तथा उनसे घबरा कर अपने बहुमूल्य जीवन को समाप्त करने पर उतारू हो जाता है, चोरी छिपे अपने शरीर को रेल के पहियो के नीचे फेंक देता है या जहर खाकर मर जाता है या घासलेट डालकर आग लगा कर मर जाता है। यह बरबादी का रास्ता आज भारतवासियो को क्यों सूझ रहा है? मैं सोचता हूँ फॉरेन के व्यक्तियो को ऐसा रास्ता नही सूझता है। बहुत कम लोग होंगे जो उस रास्ते पर जावे चाहे भौतिकवादी हो या अन्य तरह का दृष्टिकोण रखते हो। परन्तु वे इस प्रकार के रास्तो को नही अपनाते है और जिनको बार-बार आध्यात्मिक जीवन की शिक्षा मिलती है वे अपने जीवन की बेकद्री करके मरने की सोचते है। क्या उन्होने जीवन के स्वरूप को समझा है। कि जीवनम्-जीवन क्या है? इसको समझना है। जीवन की परिभाषा के प्रसग से मैं आपको कुछ बता रहा हूँ। सम्यकम् निर्णायकम् समता मय च यत् तत् जीवनम्। इसकी परिभाषा मैं राज्य की राजधानी के नागरिको के समक्ष कर रहा हूँ ताकि वे इसको समझे और उसको समझ कर राजधानी के आस पास के क्षेत्र मे इसका प्रचार प्रसार करे। सब तरह के व्यक्ति चाहे वे व्यापारी वर्ग के

हों या अधिकारी वर्ग के हो, वे दिलचस्पी के साथ इसको समझें। वे एकाग्र होकर इसका श्रवण करें और श्रवण कर इसका चिन्तन मनन करे। जीवन क्या है ? इसको समझने का प्रयास करे तो जीवन की परिभाषा समझ मे आ सकती है, जीवन के स्वरूप को समझा जा सकता है।

मैं एक जिज्ञासा रखता हूँ और सोचता हूँ कि बैठने वाली जनता मेरी जिज्ञासा की पूर्ति करेगी। हालाकि मैं दूसरे त्याग प्रत्याख्यान पर हाथ नही उठवाता हूँ, इसके लिये मेरी भावना कम रहती है। परन्तु मै यह चाहता हूँ कि यहा पर बैठने वाले भाई और वहिन अपने जीवन के महत्व को समझते हो तो कम से कम सर्वानुमति से इस विषय मे हाथ ऊचा करने की कोशिश करे कि हम कभी भी आत्मघात नही करेंगे। अपने जीवन को अपने आप नष्ट नही करेंगे। क्या इसमे भी मनवार करू। क्या मेरी बात आपने नही सुनी ? कैसी भी परिस्थिति हो अपने आप का घात नही करेंगे। बडा विचार हो रहा है। या तो मेरे शब्द मेरी बहिने नही समझ पाई हैं। उधर दूर बैठने वाले थोडी-थोडी बाते करते हैं इसलिये सम्भवत उनके कान पर यह बात नही आ पाई हो, क्या आप अपने जीवन को खत्म करना चाहते हैं। आपको यह समझना है। जीवन की परिभाषा को ठीक करना है तो सबसे पहले हम जीवन को समाप्त नही करने का सकल्प लें, हमारे जीवन मे कैसी ही अवस्था हो हम उससे नही घबराए गे अपने आपके जीवन को नष्ट करने का प्रयास हम नही करेंगे। कैसी भी परिस्थिति हो, जो अपने आप पर हाथ उठाता है तो वह अहिंसक नही हो सकता है, क्या वह जैन हो सकता है, क्या उसे मानव कहा जायेगा ? जो आत्मघात का त्याग नही करता क्या मै उसको जैन कहूँ ? तो फिर कैसे वह तीर्थंकर का उपासक हो सकता है ? अनतनाथ भगवान की ज्योति को वह कैसे देख सकता है। जो आत्मघात का परित्याग नही कर सकते उनके लिये जैन और मानव नाम तो दूर रहा वह मानव पशु से भी गया बीता है। मैं बहिनो से कहूँगा, क्या आप मेरी बात को नही समझ रही हैं। मेरी बात को समझती हो तो हाथ उठा देती कि हम आत्मघात नही करेंगी और शरीर पर घासलेट डालकर नही मरेंगी।

बन्धुओ, जरा अपने मस्तिष्क को काम मे लें। हिताहित की बात का चिन्तन करे। यह सोचें को जीवन क्या है ? वस्तुत. निर्णात्मक शक्ति कहाँ से आती है। जैसा कि मैं दार्शनिक दृष्टि से परिभाषा कर रहा हूँ। यद्यपि मैं समझ रहा हूँ, कि कई भाइयो के यह परिभाषा समझ मे नही आ रही

है। वे सोचते है कि महाराज क्या बोल रहे है। कभी परिमाण, चेतन्य, लक्षण, निर्णायक आदि ये सब क्या है। वस्तुत. इन विषयो का अभ्यास न होने से हरेक व्यक्ति इसको नही समझ पा रहा हैं। परन्तु आप सदा-सर्वदा, निरन्तर श्रवण करते रहेगे तो यह अवश्य ही समझ मे आयेगा। आपको यह बता रहा हूँ कि जो जीवन निर्माण की ओर बढता है, वह जीवन के महत्व को समझता है, अपनी सन्तानो को भी इसका महत्व समझाता है। वह जीवन के एक भी क्षण को व्यर्थ मे नष्ट नही करता है। वह चिन्तन में यह सोचता है कि गृहस्थ अवस्था मे भी उसके कुछ उत्तरदायित्व है, वह उनको समझने को कोशिश करता है। कथा भाग से यह विषय आपके समक्ष स्पष्ट आ रहा है।

कथा भाग का वर्णन चल रहा हैं—महारानी एक स्वप्न देख कर अपने पतिदेव के सामने उसका वर्णन रखती है। महाराजा ने जब यह बतलाया कि तुम्हारी कुक्षी मे से एक दिव्य पुरुष आयेगा, जो शाति का पु ज होगा। वह सरोवर के समान आकर्षक होगा। वह पानी के समान सब जीवो का आधारभूत होगा। कमल के समान जीवन को सुगन्ध से परिपूर्ण करने वाला होगा। सन्तजन के लिये और परिवार के लिये वह शुभ और उज्जवल होगा। महारानी यह श्रवण कर गभीरता से उस पर चिन्तन करने लगी। अभी तक तो मै अपने जीवन के कर्त्तव्यो का निर्वाह करने की दृष्टि से ही चल रही थी। पर आज मुझ पर एक उत्तरदायित्व और आ गया है। अतः मै अपने आपके जीवन को ऐसा रखूँ, कि उसके आधार पर सन्तान का रक्षण कर सकू ताकि वह अपने जीवन निर्माण के संस्कार जन्म से ले सके। वह इन सब बातो का चिन्तन करती हुई अपने जीवन को उस तरह बिताती है जिससे गर्भस्थ सन्तान को कोई कष्ट न हो उसमे अभद्र संस्कार न आए।

मां के संस्कार बेटे में

महारानी महाराज के वचन सुन कर प्रसन्नता का अनुभव करती है। गम्भीरता से चल कर अपने भवन मे पहुँचती है। सोचती है, मेरे ऊपर सतान का उत्तरदायित्व आया है उसका पालन कैसे करू। क्या यह भी उत्तरदायित्व है?

बहिनो की तपश्चर्या का मगलाचरण प्रारम्भ हो रहा है। कल भी कुछ बहिनो ने प्रात्याख्यान किये थे (पछखे थे)। बहिनो की शक्ति

तपश्चर्या की ओर अधिक मुडी हुई है। धर्मध्यान की तरफ भी उनका लक्ष्य है जो होना चाहिये लेकिन उसके साथ साथ वर्त्तमान जीवन को भी समझने की आवश्यकता है और वह उत्तरदायित्व इस कथा के प्रसग से आ रहा है। यह माताओ के कर्त्तव्य से अधिक सम्बन्धित है।

गर्भ मे जब सतान आ जाती है तो माताओ का कर्त्तव्य क्या है? शास्त्रो मे जहाँ बडी-बडी माताओ का वर्णन है, तीर्थंकर और चक्रवर्ती की माताओ का वर्णन है, वे माताऐं गर्भावस्था मे किस प्रकार कन्ट्रोल रख कर चलती थी। वे खाना भी इसी प्रकार का खाती थी कि जो गर्भस्थ जीवन को हितकर होता हो, गर्भस्थ जीव किसी प्रकार अस्वस्थ न हो इस बात का ध्यान रख कर अपने मनयोग्य विषयो और खानपान का त्याग करके चलती थी। वह महारानी भी शास्त्रीय प्रसग का श्रवण कर चुकी थी कि गर्भावस्था मे माता को क्या करना होता है आदि। महारानी भी अपने गर्भ की पालना करने लगी, इस वक्त उसके मन मे उदार भावना है। वह दान देने की दृष्टि से चल रही है।

"शास्त्र श्रवण और गुरु भक्ति मे हर्ष का नही है पार।
दीन दुखी के दुःख मिटाये, अनाथ नाथता धार जी।। निज गुण—

महारानी सोचने लगी कि मेरे गर्भ मे जिस महापुरुष का अवतरण हुआ है उस महापुरुष के जीवन का उत्तरदातित्व मेरे पर है, इसको वहन करने के लिये मै नितप्रति शास्त्र का श्रवण करूँ। इतने समय तक तो मैं शास्त्र श्रवण करने मे व्यवधान भी डाल देती, धर्म कथा नही सुनती तो भी चलता था क्योकि मैं अपने जीवन तक ही सीमित थी लेकिन अब जरूरी हो गया है। क्योकि गर्भस्थ जीवन मे जो सस्कार आवेगे वह शास्त्र मे वर्णित महापुरुषो के आवेगे। मनुष्य का जीवन कैसा होना चाहिये इसका श्रवण मे करूगी तो वे सस्कार गर्भ मे रहने वाले महापुरुष पर गिरेंगे। इसलिये मेरा कर्तव्य है कि शास्त्र श्रवण करने मे कभी पीछे न रहूँ। शास्त्र श्रवण के साथ ही साथ देव गुरु और धर्म का सदा खयाल बना रहे, सम्यक् दृष्टि रूप से जीवन काल को लेकर चलू जिससे सही जीवन का विकास होता रहे और उसका प्रभाव सतान पर पडता रहे। महारानी हर्षित होकर कार्य मे लगती हुई सोचती है कि मेरी संतान दातार बने और दीन दुखियो के दुख दूर करने वाली बने। वह सोच रही है दीन दुखियो के आँसू पौछने के लिये मै अभी से प्रवृत्ति करूगी तो वही असर मेरी संतान पर आयेगा और जब वह गर्भ से बाहर आयेगी तो वह गरीबो की गरीबी मिटाने मे समर्थक बनेगी।

आज कल भी नारे तो लग रहे है। गरीबी मिटाने की आवाज बुलन्द हो रही है लेकिन यह आवाज केवल प्रधान मत्री तक ही सीमित है या प्रधान मत्री की जाति की ये बहिने हैं, इन बहिनो के अन्दर भी वह आवाज आ रही है ? आज का युग परिवर्तित युग है। आज के युग मे बहिनो के विषय मे उन्नति की कल्पनाये उठती जा रही हैं। प्राचीन काल मे बहिनो के विषय मे बहुत कुछ अनादर के भाव थे लेकिन आज बहिनो के प्रति आदर के भाव बढते जा रहे है। सभा मे कभी बोलने का प्रसंग आता है तो बहिनो को पहले वोलने का मौका दिया जाता है। संतों ने प्रश्न कर लिया कि माताओ को क्यो पहले बुला रहे है। तो भाई के मुख से निकला कि आज माताओ की प्रधानता है। इन्दिरा गाधी बहिनों का प्रतिनिधित्व लेकर चल रही है और किसी दृष्टिकोण से आज सारे विश्व में एक धाक जमा ली है। यह तो मुझे बताने की आवश्यकता नही है लेकिन मै दो शब्दो से समग्र जीवन का सम्बन्ध जोड़ने का संकेत दे रहा हूँ कि आज की जो माताये हैं उनको पर्दे में रख कर निर्बल बना दिया है, उनके जीवन में धार्मिक संस्कार, उन्नत जीवन के सस्कार, जीवन निर्माण के सस्कार और जीवन के स्वरूप को समझने के संस्कार प्रायः नही आने दिये हैं। प्रायः इसलिए कि इसमे कुछ अपवाद हैं।

इस पर आप अपने अन्तरमन से चिन्तन करें, जो विचारक या राजनैतिक क्षेत्र के लोग है वे किस प्रकार से इस विषय मे सोचते है ? यह यह तो विदित ही है लेकिन जो व्यापारी या दूसरे लोग हैं वे बहिनो के बारे मे इस प्रकार सोचते है कि ये तो हमारी कठपुतली है। जैसे अनेक वस्तुऐ है उन वस्तुओ मे से यह भी एक वस्तु है। एक वस्तु से तृप्ति नही हुई तो दूसरी वस्तु को ग्रहण कर लिया। इस प्रकार इन बहिनो के प्रति मानव अपने कर्त्तव्य का पालन नही कर रहा है। पुरुष इस ढग से क्यो चल रहा है इसका चिन्तन करना चाहिये। बहिनो मे जागृति आ रही है। एक बहन प्रश्न कर रही थी। वह काकरिया परिवार की बहन थी, उसने एक प्रश्न रखा कि महाराज, बहिनो को अपने जीवन के अन्दर एक ही वक्त शादी करने का अधिकार है। बहिनें केवल एक वक्त शादी करती है। फिर कदाचित् पति का वियोग हो जाये तो वह अपने उत्तरदायित्व का वहन करती है, अपनी कर्त्तव्यनिष्ठा का पालन करती है तो क्या पुरुष के लिये भी ऐसा नियम नही है, उसका कोई कर्त्तव्य नही है। यह प्रश्न मेरे सामने था। लेकिन वह प्रश्न आपके सामने रखे तो आप क्या उत्तर देंगे। क्या इधर उधर बगले झाकेंगे ? जिस तरह की दृष्टि ये रखती हैं क्या मनुष्य नही

रखे। एक बार विवाह हो जाये और सयोगवश ऐसा प्रसंग आ जाये तो क्या पुरुप जीवन भर अकेला नही रह सकता। वह ब्रह्मचर्य का पालन नही कर सकता? वह दूसरा विवाह क्यो कर लेता है। इस मायने मे बहनो की कमजोरी है। वह बहनो पर अत्याचार करता है और दूसरी तरफ बहने अपना कर्त्तव्य पालन करने को तैयार है, तत्पर है। उनकी बेकद्री का अर्थ है कि हम उनको बेच रहे हैं। उनके मूल्य को नष्ट कर रहे हैं। एक स्त्री के बाद पुरुष दूसरी स्त्री से विवाह कर लेता है। पर इस प्रकार की स्थिति कब तक चलेगी? जब तक कि माताऐं अपने जीवन के स्वरूप को नही समझेगी। जब तक उन्होने भी यह समझ लिया है कि वे पुरुषो की कठपुतलिया है, उनके विषय विकार की सामग्री है तब तक वे अपने जीवन का मूल्यांकन नही कर सकती है।

मैं आपको यह बतला रहा हूँ कि इन माताओ को इस प्रकार की शिक्षा दी जाय जिससे ये अपने स्वरूप को समझ सके मै स्त्री शिक्षा का पक्षपाती हूँ, परन्तु स्वच्छन्द शिक्षा का पक्षपाती नही हूँ। एक तरफ शिक्षा मे अति हो रही है, स्कूलो के अन्दर जो शिक्षा दी जा रही है, वह जीवन निर्माण की दिशा मे नही है। वह शिक्षा विषयो की तरफ है। वैसी शिक्षा नारी जीवन के लिये उपयोगी नही है। नारी अपने जीवन के स्वरूप को समझे, वैसी शिक्षा का मैं पक्षपाती हूँ। भारतीय सस्कृति के अनुरूप उनके जीवन का निर्माण वितराग देव ने यथास्थान बताया है, माताऐ अपने उत्तरदायित्व को समझकर शक्ति का विकास करे। इन माताओ मे जागृति लाने की आवश्यकता है। वे अपने जीवन के अन्दर स्वय के महत्व को समझे।

वह महारानी क्या सोच रही है? मेरे गर्भ मे आने वाला महापुरुष गर्भ से बाहर आकर दीन दु खियो के दुःख को मिटावे, वैसे सस्कार उसके अभी से डाल दूँ। वह यह भावना रखे कि वह अनाथो का नाथ बने। कोई भी अनाथ बच्चा है तो वह अपने मन के अन्दर सोचती है कि यह मेरा बच्चा है और मैं इसका सरक्षण करूँ। ऐसी भावनाऐ उसमे दिन प्रतिदिन जागृत होती हैं।

> चिन्ता शोक सभी निवारे, माया, छल नही सार।
> ब्रह्मचर्य की करे पालना, शुद्ध भावो के लार जी॥ निज।

दीन, दुखियो के दु ख मिटाने की दृष्टि से वह चिन्तन कर रही है। साथ ही यह भी चिन्तन कर रही है कि मेरे गर्भ के अन्दर जिस महापुरुप

का पालन हो रहा है वह महापुरुष चिन्ता वाला न बने। क्योकि यदि वह अधिक चिन्ता वाला बन गया तो हृदयरोग की बीमारी से ग्रस्त हो जायेगा और वह जीवन का उद्धार नही कर पायेगा, जीवन के स्वरूप को नही समझ पायेगा, जीवन की परवाह नही कर पायेगा। इसलिये वह चिन्तामुक्त हो। वह चिन्तामुक्त कब बनेगा जब कि मै चिन्ता छोडू गी। तो उन्होने चिन्ताओ को तिलाजलि दे दी और साथ ही साथ यह भी सोचने लगी कि मेरी सतान व्यक्तिगत चरित्र से हीन न बने। बडा होने के बाद अपने चरित्र को न गिरावे, चरित्र निर्माण का सब से वडा सम्बल है ब्रह्मचर्य व्रत। मेरी कुक्षी मे इस पुत्र का आरोहण हो गया है तो मै अब ब्रह्मचर्य का पूर्ण रूप से पालन करू और जब तक कि इस गर्भ का ठीक स्वरूप वाहर व्यक्त न हो जावे मै विपयो की तरफ न मुडू। यह भावना मेरे मे अभी से चलेगी तो गर्भ के अन्दर रहने वाला बच्चा इस दृष्टि को ग्रहण करेगा तो बाहर आने के बाद अपने नैतिक जीवन के अपने उत्तरदायित्वो को समझते हुए अपने जीवन को बर्बादी की ओर नही ले जायेगा। यह भावना किस को थी ? यह उस माता को थी। मै इस चरित्र का कथन इसलिये कर रहा हू कि आज का मानव भी अपने जीवन को इस तरीके से चलावे। आज के भाई, बहिन अपने जीवन के उत्तरदायित्वो को समझ कर अपनी कर्तव्यनिष्ठा के साथ ईमानदारी का पालन करे। जब कभी किसी गृहस्थ के घर मे सतान होने की स्थिति मालूम होती हो तो वे भी ब्रह्मचर्य का अखडता के साथ पालन करे। यह मर्यादा मै सोचता हू आज पुरुष मे कितनी है। इसे विचार पूर्वक सोचे। पशुओ मे हम सुनते है कि जिस वक्त मादा पशु गर्भ धारण करती है तो पुरुप पशु उसकी तरफ देखता भी नही है। यह दृष्टि उनमे है। लेकिन आज के मानव मे कितनी निष्ठा है, यह मेरे मु ह से कहलाने की बात नही है। आप अन्तर में ही विचार करके देखे। ऐसी अवस्था मे भी मानव अपने पर नियन्त्रण नही रखता है तो आने वाली सन्ताने क्या बनेगी। वे वदचलन वनेगी तो उसका उत्तरदायित्व उनके माता पिता पर होगा। आप चिन्तन करिये मै यह बात इसलिये कह रहा हू कि आप जीवन के स्वरूप को समझे, जीवन के स्वरूप को सही अर्थ से देखे। यह समझ कर इस जीवन को अनन्त नाथ भगवान के चिन्तन में लगा देगे तो आपका जीवन अन्त मे सफल और मगलमय हो सकता है।

जयपुर
३०-७-७२

अपना-धर्म

प्रार्थना

घरम जिनेश्वर मुझ हिवडे बसो, प्यारा प्राण समान।
कवहु न विसरू हो चितारू नही, सदा अखडित ध्यान ..

बन्धुओ,

धर्मनाथ भगवान के चरणो मे प्रार्थना की कडियो का उच्चारण प्रतिदिन की तरह आया है। प्रतिदिन का तात्पर्य प्रार्थना से है, प्रभु के नामो से नही। प्रभु के नामो का परिवर्तन तो प्रतिदिन हो रहा है उस नाम के साथ कुछ कडियो के उच्चारण भी विविध प्रकार से आ रहे है। भगवान के गुणो की दृष्टि से यदि चितन किया जाय तो इतने गुण है कि जिनकी कोई सूची नही बन सकती। एक-एक गुण का एक-एक नाम भी यदि रख लिया जाय तो इतने शब्द सम्पूर्ण ससार मे नही मिलेगे जिन नामो से भगवान के समग्र गुणो को पुकारा जाय। परमात्मा अनन्त शक्ति सम्पन्न हैं जितनी भी भाषाए एव लिपियां प्रचलित हैं उन सब लिपियो मे प्रभु के समग्र स्वरूप को व्यक्त करने की शक्ति नही है। प्रभु का स्वरूप शब्दो से भी अतीत है। शास्त्रकारो का कथनक है कि अपयस्स पय नत्थि अर्थात् अपद के लिए पद नही है, कुछ अक्षरो के सम्मेल से पद बनता है जिसका कि कुछ न कुछ अर्थ निकलता है। परमात्मा अपद है, अर्थात् अक्षर से बने हुए पद की दृष्टि से परमात्मा के नाम का अकन नही किया जा सकता, फिर भी प्रत्येक व्यक्ति अपनी शक्ति के अनुसार, अपने जीवन के अन्दर प्रभु के स्वरूप को समझने के लिए पूर्व शरीर के साथ रहने वाले नाम को लेकर के परमात्मा को सम्बोधित करता है। जिस नाम वाले शरीर के द्वारा उन्होने सब सिद्धिया प्राप्त की। आत्मिक शक्ति की चरम सिद्धि जिसे सिद्ध अवस्था कहते है, वह प्राप्त की। भव्यजन उसी नाम का उच्चारण करके परमात्मा के यत्किंचित गुणो को याद किया करते हैं।

इस दृष्टिकोण से तीर्थकरो के नाम का प्रसंग आपके सामने आ रहा है और यहां धर्मनाथ भगवान को याद कर लिया गया है। कवि ने सकेत दिया कि—

धर्म जिनेश्वर मुझ हिवडे बसो

इस प्रार्थना को भक्तजन कभी-कभी बड़ी मस्ती से गाते हैं और प्रभु को यह आमन्त्रण देते है कि धर्म जिनेश्वर आप मेरे हृदय मे बसो। हृदय का तात्पर्य आप द्रव्य मन तक ही न समझे भावमन से भी उसका सम्बन्ध है क्योकि द्रव्य मन तो सारे शरीर में व्याप्त है पर उसका सचालन भाव मन से होता है। भाव मन, यह आत्मा की शक्ति है। उस शक्ति मे अनेक तरह की विकृतियां है। अनादि काल से आत्मा इन पर पदार्थों के साथ रमण कर रही है। ये जितने भौतिक तत्त्व दिख रहे हैं उनको आत्मा अपना मान कर चल रही है और उन तत्त्वों के पीछे अपनी समग्र शक्तियो को लगा रही है। उसके परिणामस्वरूप भौतिक तत्त्व के सस्कार जिन्हे हम कर्म कह सकते हैं आत्मा के साथ सम्बद्ध हो जाते है ? शास्त्रीय परिभाषा से कर्म सज्ञा एक प्रकार के पुद्गल-मेटर की ली गई है। वे कर्म भौतिक तत्त्वो के वने हुए हैं। आत्मा के असख्य प्रदेशो पर जब उस सूक्ष्म कर्म रज का आवरण आ जाता है तो आत्मा की समग्र शक्तियां आच्छादित हो जाती है पर उनमे से कुछ न कुछ पुरुषार्थ रूप आत्मिक प्रकाश बाहर आता ही रहता है। इसे एक उदाहरण द्वारा आप और स्पष्ट कर ले:—

एक हजार पावर का बल्ब प्रकाश युक्त है। वह किसी स्थल पर पडा हुआ हो और उसके ऊपर एक लाल कपडा ढक दिया जाय। उस लाल कपडे के ढकने से बल्ब के उस प्रकाश की शक्ति का हनन तो नही होगा। वह शक्ति नष्ट तो नही होगी लेकिन कपड़े के आवरण से दब जायेगी। कपडे में से छन कर कुछ प्रकाश की शक्ति बाहर आएगी। तो उस लाल कपडे से छन कर जो रोशनी बाहर आ रही है और वह किसी दीवार पर गिर रही है। मान लीजिये वह दीवार श्वेत वर्ण की है किन्तु उस पर रोशनी की किरण गिर रही है तो वह दीवार कैसी दिखेगी ? आपने कभी अनुभव किया होगा ? लाल दिखेगी। क्या प्रकाश की किरणे लाल हैं ? प्रकाश की किरणे मूल में तो श्वेत हैं लेकिन उस लाल कपडे के आवरण से लाल-लाल दिखने लगी और जिस किसी पदार्थ पर पडती है तो वे लालिमा ही उपस्थित करती हैं यह एक देशीय उदाहरण है।

इस उदाहरण के माध्यम से हमे उस आवृत्त आत्मशक्ति को समझना है। हमारी आत्मा की शक्ति वह हजारो पावर के बल्ब से भी बढकर है उसके पावर का कोई नाप नही कर सकता है। अनेको सूर्यो का प्रकाश भी पूर्ण विकसित आत्मा के प्रकाश के तुल्य नही हो सकता। जैसा कि मानतुगाचार्य प्रभु ऋषभदेव की स्तुति करते हुए कहते हैं— "सूर्यातिशायि महिमाऽसि मुनीन्द्रलोके" हे प्रभु आपकी महिमा सूर्यातिशायि है, अर्थात् सूर्य के साथ भी आपके प्रकाश की तुलना नही की जा सकती क्योकि सूर्य के प्रकाश मे ताप है, उष्णता है, और वह उष्णता ग्रीष्म ऋतु मे मनुष्य को तग कर देती है, लेकिन आपके प्रकाश मे वह उष्णता नही है। सूर्य का प्रकाश सीमित है, लेकिन आपका प्रकाश असीम है। सूर्य मे गति है लेकिन आपका प्रकाश अटल है। सूर्य की स्थिति के साथ आपके ज्ञान शक्ति के प्रकाश की तुलना नही की जा सकती क्योकि उसका सीमित प्रकाश है। दो सूर्य की उपमा दी जाय, तीन सूर्य की उपमा दी जाय, चार की दी जाय, अनन्त सूर्य की उपमा दी जाय तो भी अनन्त सूर्यों का प्रकाश एक तरफ और आपकी शक्ति का, जो आन्तरिक ज्ञान-प्रकाश है वह एक तरफ, उस ज्ञान प्रकाश की तुलना अनन्त सूर्यों के प्रकाश मे भी नही दी जा सकती ऐसी अनन्त शक्ति का पुञ्ज परमात्म-रूप है।

जैसी परमात्मा की शक्ति है वैसी की वैसी शक्ति प्रत्येक भव्य आत्मा
वह आत्मा सर्वत्र है। वह आत्मा यहाँ भी है। यहाँ पर भी जितने
बैठी हुई हैं उन सब मे वह शक्ति है, लेकिन अन्तर यह पड
शक्ति के ऊपर लाल वर्ण के कपडे की तरह मोह की
ई है, हमारी आत्मा पर मोह का रग इतना गहरा चढा
उस मोहरूपी कपड़े मे से फूटकर बाहर तो आती है
के द्रव्यो से उसी रग की दिखती है। आत्मा के
वर्ण पर वह मोह रूपी लाल वस्त्र के पडने के
तत्त्व को ठीक तरह से नही देख पाती है, उसकी
रहती है, उन बाह्य तत्त्वो मे वह इतनी अधिक
यही सोचती है कि ये मेरे स्वरूप हैं और मे इसकी
इस आत्मा के साथ चल रही है। वह आत्मा
कर पा रही। वह आत्मा स्वयद्रष्टा है, स्वयं
भी स्वय की स्थिति का निर्णय करने मे
उस असमर्थता को दूर करने के लिए

इस दृष्टिकोण से तीर्थंकरो के नाम का प्रसंग आपके सामने आ रहा है और यहा धर्मनाथ भगवान को याद कर लिया गया है। कवि ने सकेत दिया कि—

धर्म जिनेश्वर मुझ हिवड़े बसो

इस प्रार्थना को भक्तजन कभी-कभी बड़ी मस्ती से गाते हैं और प्रभु को यह आमत्रण देते हैं कि धर्म जिनेश्वर आप मेरे हृदय मे बसो। हृदय का तात्पर्य आप द्रव्य मन तक ही न समझे भावमन से भी उसका सम्बन्ध है क्योकि द्रव्य मन तो सारे शरीर में व्याप्त है पर उसका सचालन भाव मन से होता है। भाव मन, यह आत्मा की शक्ति है। उस शक्ति मे अनेक तरह की विकृतिया है। अनादि काल से आत्मा इन पर पदार्थों के साथ रमण कर रही है। ये जितने भौतिक तत्त्व दिख रहे हैं उनको आत्मा अपना मान कर चल रही है और उन तत्त्वों के पीछे अपनी समग्र शक्तियों को लगा रही है। उसके परिणामस्वरूप भौतिक तत्त्व के सस्कार जिन्हें हम कर्म कह सकते हैं आत्मा के साथ सम्बद्ध हो जाते है ? शास्त्रीय परिभाषा से कर्म सज्ञा एक प्रकार के पुद्गल-मेटर की ली गई है। वे कर्म भौतिक तत्त्वों के बने हुए हैं। आत्मा के असख्य प्रदेशों पर जब उस सूक्ष्म कर्म रज का आवरण आ जाता है तो आत्मा की समग्र शक्तियां आच्छादित हो जाती है पर उनमे से कुछ न कुछ पुरुषार्थ रूप आत्मिक प्रकाश बाहर आता ही रहता है। इसे एक उदाहरण द्वारा आप और स्पष्ट कर ले:—

एक हजार पावर का बल्ब प्रकाश युक्त है। वह किसी स्थल पर पडा हुआ हो और उसके ऊपर एक लाल कपडा ढक दिया जाय। उस लाल कपडे के ढकने से वल्ब के उस प्रकाश की शक्ति का हनन तो नही होगा। वह शक्ति नष्ट तो नही होगी लेकिन कपडे के आवरण से दब जायेगी। कपडे में से छन कर कुछ प्रकाश की शक्ति बाहर आएगी। तो उस लाल कपडे से छन कर जो रोशनी बाहर आ रही है और वह किसी दीवार पर गिर रही है। मान लीजिये वह दीवार श्वेत वर्ण की है किन्तु उस पर रोशनी की किरण गिर रही है तो वह दीवार कैसी दिखेगी ? आपने कभी अनुभव किया होगा ? लाल दिखेगी। क्या प्रकाश की किरणे लाल है ? प्रकाश की किरणे मूल में तो श्वेत हैं लेकिन उस लाल कपडे के आवरण से लाल-लाल दिखने लगी और जिस किसी पदार्थ पर पड़ती है तो वे लालिमा ही उपस्थित करती है यह एक देशीय उदाहरण है।

इस उदाहरण के माध्यम से हमे उस आवृत्त आत्मशक्ति को समझना है। हमारी आत्मा की शक्ति वह हजारो पावर के बल्ब से भी बढकर है उसके पावर का कोई नाप नही कर सकता है। अनेको सूर्यो का प्रकाश भी पूर्ण विकसित आत्मा के प्रकाश के तुल्य नही हो सकता। जैसा कि मानतु गाचार्य प्रभु ऋषभदेव की स्तुति करते हुए कहते हैं— "सूर्यातिशायि महिमाऽसि मुनीन्द्रलोके" हे प्रभु आपकी महिमा सूर्यातिशायि है, अर्थात् सूर्य के साथ भी आपके प्रकाश को तुलना नही की जा सकती क्योकि सूर्य के प्रकाश मे ताप है, उष्णता है, और वह उष्णता ग्रीष्म ऋतु मे मनुष्य को नग कर देती है, लेकिन आपके प्रकाश मे वह उष्णता नही है। सूर्य का प्रकाश सीमित है, लेकिन आपका प्रकाश असीम है। सूर्य मे गति है लेकिन आपका प्रकाश अटल है। सूर्य की स्थिति के साथ आपके ज्ञान शक्ति के प्रकाश की तुलना नही की जा सकती क्योकि उसका सीमित प्रकाश है। दो सूर्य की उपमा दी जाय, तीन सूर्य की उपमा दी जाय, चार की दी जाय, अनन्त सूर्य की उपमा दी जाय तो भी अनन्त सूर्यों का प्रकाश एक तरफ और आपकी शक्ति का, जो आन्तरिक ज्ञान-प्रकाश है वह एक तरफ, उस ज्ञान प्रकाश की तुलना अनन्त सूर्यों के प्रकाश से भी नही दी जा सकती ऐसी अनन्त शक्ति का पुञ्ज परमात्म-रूप है। और जैसी परमात्मा की शक्ति है वैसी की वैसी शक्ति प्रत्येक भव्य आत्मा की है। वह आत्मा सर्वत्र है। वह आत्मा यहाँ भी है। यहाँ पर भी जितने भाई-बहिने बैठी हुई हैं उन सब मे वह शक्ति है, लेकिन अन्तर यह पड रहा है कि उस शक्ति के ऊपर लाल वर्ण के कपडे की तरह मोह की लालिमा छाई हुई है, हमारी आत्मा पर मोह का रग इतना गहरा चढा हुआ है कि वे किरणे उस मोहरूपी कपडे मे से फूटकर बाहर तो आती है लेकिन मोह की जाति के द्रव्यो से उसी रग की दिखती है। आत्मा के उस प्रकाश स्वरूप श्वेत वर्ण पर वह मोह रूपी लाल वस्त्र के पडने के कारण आत्मा अपने स्वरूप तत्त्व को ठीक तरह से नही देख पाती है, उसकी दृष्टि पुद्गलो पर लगी रहती है, उन बाह्य तत्त्वो मे वह इतनी अधिक आशक्त हो रही है और यही सोचती है कि ये मेरे स्वरुप है और मे इसकी हूँ। यह कैसी विषम स्थिति इस आत्मा के साथ चल रही है। वह आत्मा इस जीवन का निर्णय नही कर पा रही। वह आत्मा स्वयदृष्टा है, स्वयं के अन्दर महत्त्वपूर्ण होते हुए भी स्वय की स्थिति का निर्णय करने मे समर्थ नही हो पा रही है। उस असमर्थता को दूर करने के लिए

भगवान का अवलबन लेते है और भगवान को याद करते हैं कि भगवान जैसा हमारा इस मोह के कपडे से रहित निखालिस स्वरूप है, वह निखालिस स्वरूप मेरे हृदय का बन जाय, अर्थात मेरा भाव मन भी उस मोह की लालिमा से दूर हो जाय। इस दृष्टि से मै आपको अपने हृदय मे बसाना चाहता हूँ। क्या है तैयारी, परमात्मा को हृदय में बसाने की ? आप मेरे साथ गाने के लिए थोडा तैयार तो हो गये है पर इस पर थौडा चिन्तन करे और स्वर के साथ स्वर मिलाने का प्रयास करे, "धर्म जिनेश्वर मुझ हिवडे बसो प्यारो प्राण समान" हे ! धर्मनाथ भगवान आप उन अनन्त सूर्यों के प्रकाश को भी मात करने वाले हैं आप मेरे हृदय में बसो, आप मेरे हृदय में विराजमान हो जाओ तो यह सारी मोहजनित लालिमा दूर हट जायगी, मेरा हृदय पवित्र हो जायगा, और मेरी आत्मिक शक्ति इस शरीर मे रहते हुए भी प्रबुद्ध हो जायगी। इस दृष्टि से आप भगवान का स्मरण करके उन्हे हृदय मे बसाना चाहते हैं पर इतने कथन या स्वरमात्र से यह होने वाला नही है। कविता मे तो यह बात सरल मालूम पडती है, लेकिन देखा जाय तो यह इतनी सरल नही है। इसके अन्दर गूढ रहस्य भरा हुआ है। आगे के शब्दो पर ध्यान देगे और इन शब्दो के अर्थों का अनुसन्धान करेगे तो मोह के सम्पूर्ण परदे को हटाने की शक्ति का इसमे निर्देश है। कवि कह रहा है धर्म जिनेश्वर मुझ हिवडे बसो, प्यारा प्राण समान। प्राण के समान मेरे हृदय मे बसो। प्राण आपको कितने प्यारे है ? प्राण आप जानते हैं ? शास्त्रीय दृष्टि से यदि आप इस जीवन के स्वरूप को समझे और इसका निर्णय करे तो प्राण का भी कुछ ज्ञान हो जाय।

बूंद-बूंद से सागर भरता

जो शास्त्रीय थोकडो का ज्ञान रखते हैं और शास्त्र का वाचन करते है उनको तो मालूम है कि प्राण कितने है ? १० प्राण है। किन्तु अधिकाश व्यक्ति इन विपयो को नही जानते है। मैं समझता हूँ कि जयपुर के अन्दर मोहनलालजी मूथा का जो संयोग मिला है वह वहुत ही अच्छा सुयोग है। वे वहुत से थोकडे जानते है और उनमे सिखाने की लगन भी है लेकिन सीखने वालो की कुछ कमी है। यहा का युवक वर्ग धर्म-ध्यान मे तो रुचि रखता है लेकिन अस्थाईरूप से अमुक टाइम मे तो कुछ धर्माराधन किया और

फिर चला जाता है जवाहरात का व्यापार करने के लिए। वह भी उनके जीवन के साथ सम्बन्धित है, लेकिन जितने समय आते हैं उस अवधि मे अन्दर भी यदि एक-एक वोल भी लें तो एक-एक वोल करते हुए भी कई वोल सग्रहीत हो सकते हैं। और धीरे-धीरे जीवन के वास्तविक स्वरूप को भी समझ सकते हैं। लेकिन यह प्रयास वहुत कम देखने मे आ रहा है। कुछ युवक थोडा सा धर्मकार्य करते हैं लेकिन अपना नियमित रूप से जो जीवन वना रखा है उतना सा करके वे इस कार्य की इतिश्री समझ लेते हैं कि हमने तो कर लिया है और उससे ही तुष्टि पा लेते हैं, लेकिन तुष्टि पा लेने से ही काम चलने वाला नही है । यदि हमे प्रभु को हृदय मे वसाना है तो प्राणो को भी समझना होगा, भगवान को हृदय मे वसाने का तात्पर्य यह है जो हमारे १० प्राण है उनको हम कभी भूलते हैं क्या ? उठते वैठते अपने प्राणो को याद रखते हैं। बड रूप से श्रवण वल प्राण अर्थात् जो श्रवण करने की शक्ति है वह प्राण है। चक्षु वल प्राण अर्थात् चक्षुओ के अन्दर जो देखने की शक्ति है वह प्राण है, नाक की जो सूघने की जो शक्ति है वह प्राण है, जीभ की चखने की शक्ति प्राण है, स्पर्श की शक्ति स्पर्श वल प्राण है आप जिस मन के लिए सकेत करना चाहते हैं वह प्राण है, वाचिक शक्ति भी प्राण है, इसी प्रकार काया है, श्वासोच्छ्वास हैं एव आयुष्य प्राण है। इन १० प्राणो मे आप जीवन की आशा को लेकर चल रहे हैं। इसको कभी भी आप याद नही करते हैं। कोई हाथ मे माला लेकर प्राण प्राण की माला फेरता नजर नही आता है। क्या कोई फेरता है ? नही। फिर भी इन प्राणो को भूलते हैं क्या ? मै समझता हूँ कि प्राण प्रत्येक को प्यारे है । आप उनको याद नही करते हैं लेकिन फिर भी उनको भूलते नही हैं। रात-दिन उनका ध्यान रखते हैं। नींद मे अनायास यदि कोई चीटी काटती है तो गाढ निद्रा वालो की वात छोड दें वाकी जो थोडा सा भी जागृत है वह चीटी को हटा देगा और नीद मे ही खुजल लेगा। शरीर की चेष्टाएं करके उसको ठीक तरह से कर लेगा। स्वप्न मे भी और सोते हुए भी अपने प्राणो का ध्यान रखते हैं। जैसे उन प्राणो का ध्यान इन्सान को है उसी तरह से परमात्मा के शिव स्वरूप का ध्यान करना है ताकि मन से राग की स्थिति हट जाय और जव राग दूर हो गया तो हम वीतराग वन सकते है। लेकिन उस दशा को प्राप्त करने के लिए, भगवान के मार्ग पर चलते हुए भगवान धर्मनाथ को याद करते हैं। उनके अन्दर जो प्रकाश शक्ति है वह अखण्ड शक्ति है, अजर–

भगवान का अवलबन लेते है और भगवान को याद करते हैं कि भगवान जैसा हमारा इस मोह के कपडे से रहित निखालिस स्वरूप है, वह निखालिस स्वरूप मेरे हृदय का बन जाय, अर्थात मेरा भाव मन भी उस मोह की लालिमा से दूर हो जाय। इस दृष्टि से मै आपको अपने हृदय मे बसाना चाहता हूँ। क्या है तैयारी, परमात्मा को हृदय मे बसाने की ? आप मेरे साथ गाने के लिए थोडा तैयार तो हो गये है पर इस पर थोडा चिन्तन करे और स्वर के साथ स्वर मिलाने का प्रयास करे, "धर्म जिनेश्वर मुझ हिवडे बसो प्यारो प्राण समान" हे ! धर्मनाथ भगवान आप उन अनन्त सूर्यो के प्रकाश को भी मात करने वाले है आप मेरे हृदय में बसो, आप मेरे हृदय में बिराजमान हो जाओ तो यह सारी मोहजनित लालिमा दूर हट जायगी, मेरा हृदय पवित्र हो जायगा, और मेरी आत्मिक शक्ति इस शरीर मे रहते हुए भी प्रबुद्ध हो जायगी। इस दृष्टि से आप भगवान का स्मरण करके उन्हे हृदय मे बसाना चाहते हैं पर इतने कथन या स्वरमात्र से यह होने वाला नही है। कविता मे तो यह बात सरल मालूम पडती है, लेकिन देखा जाय तो यह इतनी सरल नही है। इसके अन्दर गूढ रहस्य भरा हुआ है। आगे के शब्दों पर ध्यान देगे और इन शब्दो के अर्थों का अनुसन्धान करेंगे तो मोह के सम्पूर्ण परदे को हटाने की शक्ति का इसमे निर्देश है। कवि कह रहा है धर्म जिनेश्वर मुझ हिवडे बसो, प्यारा प्राण समान। प्राण के समान मेरे हृदय में बसो। प्राण आपको कितने प्यारे हैं ? प्राण आप जानते हैं ? शास्त्रीय दृष्टि से यदि आप इस जीवन के स्वरूप को समझे और इसका निर्णय करे तो प्राण का भी कुछ ज्ञान हो जाय।

बूंद-बूंद से सागर भरता

जो शास्त्रीय थोकडो का ज्ञान रखते हैं और शास्त्र का वाचन करते है उनको तो मालूम है कि प्राण कितने है ? १० प्राणहै। किन्तु अधिकाश व्यक्ति इन विषयो को नही जानते है। मैंसमझता हूँ कि जयपुर के अन्दर मोहनलालजी मूथा का जो संयोग मिला है वह बहुत ही अच्छा सुयोग है। वे बहुत से थोकडे जानते है और उनमे सिखाने की लगन भी है लेकिन सीखने वालो की कुछ कमी है। यहा का युवक वर्ग धर्म-ध्यान मे तो रुचि रखता है लेकिन अस्थाईरूप से अमुक टाइम मे तो कुछ धर्माराधन किया और

फिर चला जाता है जवाहरात का व्यापार करने के लिए। वह भी उनके जीवन के साथ सम्बन्धित है, लेकिन जितने समय आते हैं उस अवधि में अन्दर भी यदि एक-एक बोल भी लें तो एक-एक बोल करते हुए भी कई बोल सग्रहीत हो सकते है। और धीरे-धीरे जीवन के वास्तविक स्वरूप को भी समझ सकते हैं। लेकिन यह प्रयास बहुत कम देखने मे आ रहा है। कुछ युवक थोडा सा धर्मकार्य करते हैं लेकिन अपना नियमित रूप से जो जीवन बना रखा है उतना सा करके वे इस कार्य की इतिश्री समझ लेते है कि हमने तो कर लिया है और उससे ही तुष्टि पा लेते हैं, लेकिन तुष्टि पा लेने से ही काम चलने वाला नही है। यदि हमे प्रभु को हृदय मे बसाना है तो प्राणो को भी समझना होगा, भगवान को हृदय मे बसाने का तात्पर्य यह है जो हमारे १० प्राण है उनको हम कभी भूलते हैं क्या ? उठते बैठते अपने प्राणो को याद रखते है। बडे रूप से श्रवण बल प्राण अर्थात् जो श्रवण करने की शक्ति है वह प्राण है। चक्षु बल प्राण अर्थात् चक्षुओ के अन्दर जो देखने की शक्ति है वह प्राण है, नाक की जो सू घने की जो शक्ति है वह प्राण है, जीभ की चखने की शक्ति प्राण है, स्पर्श की शक्ति स्पर्श बल प्राण है आप जिस मन के लिए सकेत करना चाहते हैं वह प्राण है, वाचिक शक्ति भी प्राण है, इसी प्रकार काया है, श्वासोच्छ्वास हैं एव आयुष्य प्राण है। इन १० प्राणो मे आप जीवन की आशा को लेकर चल रहे है। इसको कभी भी आप याद नही करते हैं। कोई हाथ मे माला लेकर प्राण प्राण की माला फेरता नजर नही आता है। क्या कोई फेरता है ? नही। फिर भी इन प्राणो को भूलते है क्या ? मै समझता हूं कि प्राण प्रत्येक को प्यारे है। आप उनको याद नही करते हैं लेकिन फिर भी उनको भूलते नही हैं। रात-दिन उनका ध्यान रखते हैं। नींद मे अनायास यदि कोई चीटी काटती है तो गाढ निद्रा वालो की बात छोड दे बाकी जो थोडा सा भी जागृत है वह चीटी को हटा देगा और नीद मे ही खुजल लेगा। शरीर की चेष्टाए करके उसको ठीक तरह से कर लेगा। स्वप्न मे भी और सोते हुए भी अपने प्राणो का ध्यान रखते हैं। जैसे उन प्राणो का ध्यान इन्सान को है उसी तरह से परमात्मा के शिव स्वरूप का ध्यान करना है ताकि मन से राग की स्थिति हट जाय और जब राग दूर हो गया तो हम वीतराग बन सकते है। लेकिन उस दशा को प्राप्त करने के लिए, भगवान के मार्ग पर चलते हुए भगवान धर्मनाथ को याद करते हैं। उनके अन्दर जो प्रकाश शक्ति है वह अखण्ड शक्ति है, अजर–

अमर शक्ति है, उनकी मृत्यु कभी नही होती है। वह स्वयं एक स्थाई शक्ति है, उस स्थाई शक्ति के प्रकाश को अपने हृदय मे स्थान दे और उनको आमन्त्रण देकर बिठा दे तो हमारी शक्ति भी स्थाई रूप मे परिणित हो सकती है, लेकिन इस स्थाई शक्ति को समझने मे कभी कुछ बाधक तत्त्व सामने आते हैं, और वे बाधक तत्त्व किन की ओर से आते हैं ? जो अधूरे व्यक्ति है, अपूर्ण व्यक्ति है, जिन्होने जीवन के स्वरूप को समग्र रूप से नही समझा है, जो केवल अपनी बुद्धि के लिए और सिद्धान्त बना कर जन साधारण के सामने रख दिये। वे कहते हैं, देखो भाई, जीवन तो है लेकिन जीवन को क्षणिक समझो। वह क्षण क्षण के अन्दर नष्ट होने वाला है। उन्होने जीवन की परिभाषा यह कर दी कि यह जीवन प्रति क्षण नष्ट होने वाला है, वह प्रति क्षण नष्ट हो रहा हैं। यदि मान लिया जाय तो जीवन की परिभाषा ही कौन समझे और किं जीवनम् ? यह जीवन क्या है इस प्रश्न का हल भी कौन करेगा ? प्रश्न करने मे पहले समय लगेगा, पहले समय में प्रश्न किया और दूसरे समय मे वह स्वय प्रश्न करने वाला तो रहा नही क्योकि क्षण क्षण नष्ट हो रहा है तो प्रश्न करने वाला तो पहले समय मे ही नष्ट हो गया, दूसरे समय मे उत्तर आया तो उत्तर पाने वाला कोई दूसरा व्यक्ति पैदा हो गया और वह उत्तर देते हुए तीसरा हो गया। तो इस तरह से न जीवन की परिभाषा बनती है और न जीवन ही रह पाता है, अतः यह जीवन क्षण २ मे नष्ट होने वाला नही है, जो साधारण जनता को बड़े रूप मे यह बतलाया जाता है, कि यह तुम्हारा जो शरीर है क्षण २ मे नष्ट हो रहा है। लेकिन सोचता यह है कि शरीर मात्र जीवन नही है। जीवन कुछ और है। जीवन की शक्ति सम्यक् निर्णायक शक्ति है, वह शक्ति क्षण २ मे नष्ट नही होगी, क्योकि जो शक्ति पहले क्षण में मौजूद थी, वही शक्ति दूसरे तीसरे समय में मौजूद रहेगी तो वह दूसरे आदि समयों मे कार्य का निर्णय कर पायेगी।

आप क्षणिक नहीं नित्य हैं

बाहरी निर्णायक के रूप में निर्णय (फैसले) करने वाले न्यायाधीश होते हैं। वे न्यायाधीश पूर्व मे जैसे थे वैसे ही आज है। न्यायाधीश की निर्णायक शक्ति जो कि पाच वर्ष पहले थी वही निर्णायक शक्ति आज है। आप यदि उदाहरण के रूप मे बालक की आत्मा की शक्ति को लेकर निर्णायक शक्ति का निर्णय करेगे तो जो निर्णायक शक्ति पांच वर्ष पहले थी वही निर्णायक शक्ति पाच वर्ष बाद भी है बल्कि और परिपक्व हो गई है। आप उस

न्यायाधीश को छोडिए। आपने अपने इस जीवन मे वचपन की अवस्था से जिस समय होश सम्भाला उस समय आपके सामने कोई ऐसा आकर्षण या कोई ऐसी स्थिति अथवा तत्त्व आया कि जिसको आपने अच्छी तरह से निर्णय करके मस्तिष्क मे बैठा लिया तो वचपन मे आपने जो निर्णय करके अपने मस्तिष्क मे लिया आपकी वह निर्णायक शक्ति जितनी वचपन मे थी युवावस्था मे उससे अधिक आई कि नही ? आप जवाहरात की दृष्टि से देखिए, परीक्षण करने की दृष्टि से जो वचपन के अन्दर जिस नगीने को पहचानने की निर्णायक शक्ति पैदा की उस नगीने को पहचानने की निर्णायक शक्ति आपकी तरुणाई मे वढी कि घटी ? निरन्तर आप अभ्यास कर रहे हैं तो वचपन मे जिस मात्रा मे जिस नगीने का निर्णय कर पाते थे उससे जवानी मे कुछ अधिक स्पष्ट निर्णय कर पा रहे है। जैसे-जैसे जवानी आगे की ओर वढी और वृद्धावस्था भी आ गई और आपकी निर्णायक शक्ति मे परिवर्तन हुआ तो उसमें वृद्धि हुई या वह ह्रास की ओर गई, इसका अनुभव आप वतायेंगे। सम्भव है, मेरे भाई इसका अनुभव करे या न करे, लेकिन यह सत्य तत्त्व है कि इस प्रकार सही रूप मे निर्णायक शक्ति जो आती है वह दिन प्रतिदिन वढती जाती है। शरीर के अवयव क्षीण हो सकते है। वचपन का शरीर जवानी मे नही रहेगा और जवानी का शरीर वृद्धावस्था मे नही रहेगा लेकिन निर्णायक शक्ति परिवर्तित हो जाती है पर नष्ट नही होती। और जो दस वर्ष पहले आपके विचार वने, आपने जो कार्य किया, उस कार्य की स्थिति का जव प्रसग आता है तो आज भी याद कर लेते हैं। कब और कहाँ। महाराज आपने चौमासा किया था, कितने वर्ष हो गए- २२-२३ वर्ष पहले की वात को आज भी याद कर रहे हैं, तो इतने समय तक उसके सस्कार अपने मन मे लगातार मौजूद है तभी याद कर रहे हैं। तो हम कैसे मान ले कि निर्णायक तत्त्व निरन्तर नष्ट हो रहा है ? क्षण-क्षण नष्ट होने वाली वात २२ वर्ष के वाद कैसे याद रह सकती है। यदि इस सिद्धान्त को नही माना जाए तो फिर कल की वात को भी भूल सकते हैं। कल की वात भी याद नही कर सकते। दस वर्ष वाद सगे सम्वन्धी से मिलें तो उनको भी नही पहचान पायेगे। दस वर्ष वाद पिता पुत्र या सगे सम्वन्धी मिलेगे तो परिचय देते हैं कि वह यही हैं। आप दस वर्ष पहले इस स्थान पर मिले थे। अरे यह वही है। तो यह जो निर्णायक तत्व है, उस तत्त्व को दुनिया भूल रही है। उस तत्त्व का प्रतिपादन करने मे ऐसी विचारधारा काम कर रही है। जो इस आत्म तत्त्व, आतरिक तत्त्व को क्षण-क्षण मिटने वाला घोषित कर

रही है किन्तु क्षणवाद सर्वथा मानने योग्य नही है। ऐसे प्रसग भी आते हैं जिनमे इस क्षणिक वाद का समुचित उत्तर दिया गया है। उत्तर किस ढंग से दिया गया है इसका भी एक रोचक प्रसंग है।

एक व्यक्ति कर्जा लेने की दृष्टि से सेठ सा० के पास पहुँचा, वहाँ से दस हजार रु० का कर्जा लिया और अपने कार्य को आगे बढाया। उसने सोचा कि अब इस दस हजार के कर्ज को चुकाने मे कितना कष्ट का अनुभव करना पड़ेगा। क्या ही अच्छा हो, दस हजार के कर्जे को दबा कर बैठ जावे लेकिन ऐसे दबा नही सकेगे। ऐसे दबाने के लिए जाऊंगा तो लोग कहेगे कि यह बेईमान है, अनैतिक जीवन वाला है। दूसरे तरीके से पेश आऊंगा तो लोग कहेगे कि यह झूठ बोलता है। मुझे दस हजार को दबाने के लिए धार्मिक तरीका अपना लेना चाहिए। उसकी दृष्टि दौडी और वह सोचने लगा कि कौन से धर्म के अन्दर ऐसा तरीका है जिस तरीके से मैं दस हजार को हजम कर जाऊ। तो सोचते-सोचते उसका मस्तिष्क वहा क्षणिक वाद के सिद्धान्त की ओर घूम गया, और यह सिद्धान्त उसने मस्तिष्क मे जमा लिया कि क्षण-क्षण आत्मा नष्ट होती है, इस बात को लेकर उसने सारा प्लान बना लिया। अब वह सेठ रुपया मागने के लिए आया तो सीधा सा उत्तर दे दिया कि भाई तुम्हारे रुपये मैंने नही लिये। लेने वाला तो उसी समय मर गया। यह ससार तो क्षण-क्षण नष्ट हो रहा है, हमारा सिद्धान्त तो यही है। रुपयो को हजम करने का तरीका उसने सुन्दर ढूंढ लिया। सेठ ने पूछा कि भाई दस हजार रुपया लौटाओ। उसने झट से उत्तर दिया कि आप किस मे मागते हैं दस हजार रुपये। सेठ ने कहा कि आप मे। मुझे आपने कब दिए? भाई आपको दिए, अमुक तिथि को दिए, आपसे लिखापढी भी करवाई और आपके हस्ताक्षर मौजूद हैं। उसने कहा कि वह मेरे हस्ताक्षर है ही नही। मैंने जो धर्म सिद्धान्त सीखा है उसके अनुसार हमारी आत्मा और हमारा जीवन क्षण-क्षण नष्ट होता है। जिस समय हस्ताक्षर किए थे वह आत्मा और वह जीवन तो अब रहा नही, उतने समय मे तो न मालूम कितने जीवन और पैदा हो गए। इस सिद्धान्त के अनुसार मैंने हस्ताक्षर नही किए और इसी सिद्धान्त की दृष्टि से मैं कह रहा हूँ। सेठ हैरान हुआ, क्या करना चाहिए। उसने दावा कर दिया और वकील लगा दिया। न्यायाधीश के सामने निर्णायक शक्ति का प्रश्न आया। न्यायाधीश ने जब उसे पेशी पर बुलाया और कहा कि ये तुम्हारे हस्ताक्षर है और हस्ताक्षर के बारे मे

ऐसा है कि वैज्ञानिक दृष्टि से पाच सौ साल या पाच हजार वर्ष पूर्व के हस्ताक्षर भी वैज्ञानिक तरीके से पहचाने जा सकते है तो ये हस्ताक्षर कैसे झुटलाए जा सकते हैं। क्या ये आपके हस्ताक्षर नही है उसने कहा कि नही। क्योकि उस समय जो हस्ताक्षर करने वाली आत्मा थी वह तो मर चुकी है और इसलिए अब कर्जा चकाने की आवश्यकता नही है। न्यायाधीश के दिमाग मे भी इस तरह से जमाने का प्रयास किया। लेकिन न्यायाधीश की वुद्धि निर्णायक थी, वह तटस्थ दृष्टि से निर्णय करने मे सक्षम था। उसने कहा कि आपने जो कुछ कहा वह वहुत ठीक। मैं समझा कि आपका सिद्धान्त क्षणिक वाद का है क्षण-क्षण तत्त्व नष्ट होने वाला है, आप यही वात कह रहे हैं ? हां यही वात है। तो बहुत अच्छी वात है। मैं उसी वात से निर्णय देता हूँ कि जिस समय कर्जा लिया उसी समय आपकी आत्मा तो नष्ट हो गई। अत अमुक नम्बर की जो हवेली पर सरकारी कब्जा कर लिया जावे और उसको नीलामी मे वेच कर के उस सेठ का कर्जा चुका दिया जावे। जव ये शव्द आए तो वह कहने लगा कि साहव वह हवेली तो मेरी है आप हवेली पर अधिकार कैसे कर सकते हैं क्योकि हवेली का मालिक मौजूद है। तो न्यायाधीश ने कहा अरे भाई तुम्हारी हवेली कहा से आई। तुम तो प्रथम समय मे ही मर गए। यह हवेली तो कितने वर्ष पहले वनी थी, अत· जो इसको वनाने वाला था वह तो कभी का मर गया, फिर हवेली आपकी कैसे रह गई। आपके सिद्धान्त के अनुसार एक क्षण पहले आप दूसरे थे और ये तीसरे और फिर चौथे हो रहे हैं अतः स्पष्ट है कि इस क्षणिक वाद के सिद्धान्त के अनुसार यह हवेली आपकी नही है, यह तो अव सरकार की होगी। नीलामी के वाद कर्जा चुकाया जायेगा। तव उस क्षणिक वादी ने सोचा कि दस हजार के पीछे पचास हजार की हवेली जा रही है तो कहने लगा कि नही ऐसा निर्णय मत करिए। मैं अपनी गल्ती महसूस करता हूँ। मैंने कर्जा लिया और हस्ताक्षर भी मैंने ही किए। ये मेरे ही हस्ताक्षर हैं मैं क्षणिक वादी नही हूँ। मैं दस हजार रुपये देने को तैयार हूँ, पचास हजार की हवेली नीलाम करा कर सरकार के अधीन मत कराइए।

वन्धुओ, क्षणिकवाद के सिद्धान्त के रूप मे ऐसे अनेक उदाहरण आते हैं यदि इस सिद्धान्त को मान लें तो जीवन के प्रत्येक क्षण की गतिविधि मे अटकाव आ सकते हैं। अतः ऐसे सिद्धान्त का सरक्षण निर्णायक शक्ति के लिए हितावह नही है। ऐसे सिद्धान्त से जीवन का

निर्णय नही हो पाता, जीवन को समझ नही सकते। इसलिए जीवन को समझने के लिए इस प्रकार के निरन्वय क्षणिकवाद से नहीं चल सकते। सही निर्णायक शक्ति के लिए सान्वय क्षणिकवाद के साथ ही चल सकते है। उस शक्ति के अनुसार ही मनुष्य अनुसधान करता है और तभी जाकर वर्तमान जीवन मे विशुद्धता और भावी जीवन में उज्ज्वलता आ सकती है। यह स्थिति आध्यात्मिक दृष्टि से भी है जिसे जीवन के निर्णायक तत्त्व के रूप मे कुछ दिनो से रख रहा हूँ। इसके साथ-साथ स्थूल दृष्टि से चारित्र भाग भी चल रहा है। जिस माता की कुक्षि में जिस सतान का प्रसग है, उस सतान के लिए माता अपने जीवन को त्याग मय रख रही है, इसका तात्पर्य यह है कि माता यह समझ रही है कि जिस सतान का मेरी कुक्षी मे पालन हो रहा है, मै उसको सुंदरतम् सस्कार दूं। यदि माता यह समझ ले कि कुक्षी मे आने वाला जीवन तो क्षणभंगुर है और नष्ट होने वाला है तो कैसे वह उसको सस्कार दे पाती। वह माता उस ढग से सोच रही है कि यह जीवन पर्याय दृष्टि से अस्थायी है पर जीवन का तत्त्व स्थाई है। मैं तो जीवन की शुद्धि के अन्दर निमित्त वन रही हूँ और निर्णायक शक्ति भी अपने अन्दर ढूढ रही हू और दूसरे जीवन को भी निर्णायक शक्ति की योग्यता दिला रही हू। इस भावना के साथ इस कथा का प्रसग चलता है।

महारानी के गर्भ की धीरे-धीरे वृद्धि होने लगी। जैसे-जैसे उस गर्भ के अन्दर वृद्धि के भाव वढने लगे वैसे-वैसे उससे अनेक संकेत प्रस्फुटित होने लगे और वे जीवन के सकेत विविध रूप मे माता के हृदय मे आने लगे, अर्थात् उस गर्भवती महारानी के मन मे दो हृद (दोहले) उत्पन्न होने लगे, माता तथा गर्भस्थ शिशु दोनो की मिली जुली इच्छा को दोहद कहते है। तो माता के मन मे कुछ अभिलाषाएं होने लगी। वे अभिलाषाए माता की स्वय की ही नही थी, लेकिन गर्भस्थ वच्चो की भावनाओ का परिणाम था। माता कभी मन मे चिन्तन करती कि मै एक क्षत्राणी वीरागंना हूं। मेरे जीवन मे क्षात्र-तेज व्यक्त हो रहा है। मेरा जीवन लोगो की रक्षा करने के लिए है। कभी महारानी तलवार को म्यान मे से निकाल कर उसकी चमक के अन्दर अपनी आकृति देखती और मानो तलवार को सम्बोधित करके कहती है, कि तलवार तू जैसी चमक रही है उसी तरह से मेरी सन्तान चमके। तू दोनो काम आ सकती है। तेरे से सहार भी किया जा सकता है और तेरे से रक्षण भी किया जा सकता है, लेकिन तू मेरी सन्तान को सहार की ओर मत ले जाना, तू मेरी सन्तान को रक्षण की

ओर ले जाना। इस प्रकार की सन्तान की भावनाओ का परिणाम महारानी के मन से व्यक्त होता है। महारानी कभी यह चाहती है कि मुझे अमुक तरह से दान देने की खुली परवानगी दी जाय। महाराजा सोचते हैं कि दान की भावना इतनी तेज रूप मे महारानी की नही वन सकती है। जो गर्भ के अन्दर सन्तान है उस महापुरुष की भावनाओ का प्रभाव पड रहा है। महाराजा उसको पूर्ति करते हैं। इसी तरह से विचार करती है। कभी वह साचती है जीवन का समग्र रूप से निर्णय करना है। सोचती है कि मुझे सारे जगत के जीवन का सरक्षण करना है। इस प्रकार की भावनाएं महारानी के हृदय मे होती थी। और इस प्रकार वह जीवन के अन्दर प्रमुदित हो कर रहा करती थी। यह सारी वाते सन्तान की स्थिति का ज्ञान कराती है।

योग्य समय मे पुत्र रत्न हुआ सूर्य तेज को धार।
अन्धकार को दूर हटाता तेजपुज के लार।

महारानी के गर्भ की स्थिति जैसे-जैसे तेजस्वी वनती जा रही थी वैसे-वैसे महारानी का शरीर चमकने लगा। वन्धुओ, जव उत्तम आत्मा जन्म लेती हैं तो उस उत्तम आत्मा के कारण माता की भावना भी उत्तम वन जाती हैं, लेकिन अधम आत्मा माता की कुक्षि मे आती है तो वह उस माता को भी अधम वनाये विना नही रहती है। कस की माता का भी वर्णन आता है—कि कस जव गर्भ मे था तव माता की भावना वनी कि अपने पतिदेव के कलेजे का मास खाऊं। ऐसी दुष्ट आत्मा जव माता के गर्भ मे आती है तो माता की भावना को भी मलिन कर देती है। आज के युग मे भी देखा जाता है कि कभी-कभी कोई गर्भवती माता रोती ही रोती है। कही पर ऐसा भी सुनने मे आता है कि गर्भ मे जव वच्चा होता है तो माता मिट्टी खाती है। शायद शहरो मे ऐसा नही होता हो, लेकिन गावो मे ऐसा पाया जाता है कि कभी-कभी गर्भवती माताए कोयला खाती हैं। तो यह स्पष्ट वात है कि यह माता का स्वभाव नही होता है, लेकिन जैसी आत्मा उसकी कुक्षि के अन्दर आती है उसका प्रभाव माता के मस्तिष्क पर होता है। महारानी को इस प्रकार से सयम, शील, तप आदि की आराधना करते हुए नौ, सवा नौ महीने का समय वीतता है तो उसकी कुक्षि से पुत्र-रत्न का जन्म होता है।

जैसे ही पुत्र का जन्म हुआ वैसे ही सुमुखी नाम की दासी राजभवन से निकल कर जहा महाराजा अपने शयनकक्ष मे थे वहा पहुँची। महाराजा

को सम्बोधित किया, नाथ, आज आपके कुल का दीपक तेजस्वी पुत्र इस राजभवन में अवतरित हुआ है। आपको मै यह शुभ सन्देश देती हूँ। दासी के मुँह से यह शुभ सन्देश सुनकर महाराजा प्रफुल्लित हुए और दासी को पुरस्कृत किया। उनके पास शृंगार की जितनी सामग्री थी वह सब इनाम मे दे दी और बडे हर्ष के साथ परिवार के सम्बन्धियो को लेकर राजभवन की ओर पहुँचने लगे—

उत्सव कैसे मनायें ?

बन्धुओं, प्राचीन काल की जो पद्धति थी, वहा का जो रीति-रिवाज था उसका जरा अवलोकन करे। वहा पर पुत्र जन्म का प्रसग आया और उत्सव का प्रसंग भी आया। वहा उत्सव मनाने की दृष्टि से महाराजा ने कैसे उत्सव मनाया और आज आप किस तरह से उत्सव मनाते है। मै पहले आपके उत्सव का जिक्र करू या पहले महाराजा के उत्सव का जिक्र करू ? आपका तो आप जानते ही है। न मालूम कितनी रोशनी करते होगे, बिजली के वल्ब जलाते होगे जिन पर बेचारे हजारों जीव मर जाते होगे, दूसरे व्यर्थ के आडम्बरो मे, व्यर्थ की चीजो मे समय और धन का अपव्यय करते होगे, लेकिन महाराज ने इस तरह उत्सव नही मनाया। उन्होने सबसे पहले वन्दी जनो की ओर ध्यान दिया जो कि कैद मे पडे हुए थे। जो योग्य व्यक्ति अपने जीवन का परिमार्जन कर सकते थे उनको बन्दी जीवन से छुट्टी दे दी। साथ ही साथ जो गरीब जन थे, दु खी जन थे उनको देखा। वे दुःखी जन पुत्र-रत्न के पैदा होते हुए भी सुखी नही बनते है तो इस पुत्र जन्म से क्या लाभ। उनका दु ख-निवारण करने के लिए एक मार्ग निकाला। नगर की जनता का जीवन ऊ चा कैसे उठे, इसके लिये योग्य रीति से दान का प्रदर्शन लगा लिया और योग्य स्थल पर दान देने लगे। दान देने का भी तरीका होता है। एक तरफ तो अनावश्यक उदारता कर देते है और दूसरी तरफ जहाँ उदारता की आवश्यकता होती है वहा कुछ नही करते हैं। कही पर तो इतनी वर्षा कर दी जाय कि अतिवृष्टि से एक भी दाना न उगे और जहा खेतो मे पानी की आवश्यकता है वहाँ पर पानी उपलब्ध ही न हो। इसी तरह से ज्ञान-शक्ति रूपी पानी को लेकर बादल चल रहे हैं उनको देखना है कि उनकी वर्षा किधर हो रही है ? कही वर्षा ऐसी जगह पर तो नही बरस रही है, जहा पर कुछ न उगे। जहा पर धरती कठोर है वहाँ बरस रहा है तो व्यर्थ है, वहा पर तो बीज

की भी कमाई होने वाली नही है। जहां पर वास्तविक रूप से जीवन की निर्णायक शक्ति का लाभ हो सकता है, या हो रहा है, उसकी तरफ इन वादलो का ध्यान जाय या नही ? यह अपने आप चिन्तन करे। लेकिन महाराजा अपने योग्य तरीके से कार्य कर रहे थे—

महाराज ने जो कर लगा रखे थे उनका अवलोकन किया और जो गरीब जन कर देने मे असमर्थ थे उन सब का कर माफ कर दिया। यह किस प्रसग मे हुआ ? पुत्र जन्म के उत्सव के प्रसंग मे। क्या कभी आपके यहा भी ऐसा प्रसग आता है कि घर मे किसी पुण्यवान पुरुष का जन्म हुआ और किसी गरीब पर आपने कोर्ट मे मुकदमा चला रखा हो, उसकी झोपडी आदि के नीलाम करने का प्रसग आ रहा हो आप उसे माफ करने के लिये तत्पर हो ? मैं सोचता हूँ विरले ही कोई होगे जो गरीब पर मुकदमा नही करके उसे माफ करने की सोचे। पुत्र उत्सव की स्थिति तो बहुत दूर है, लेकिन एक गरीब की झोपडी नीलाम करवाये, और जब उसकी उस समय की दुर्दशा का चित्र सामने आता है तो रौंगटे खडे हो जाते हैं। लेकिन आज इस जनतन्त्र मे भी शासन का दुरुपयोग कर गरीबो के साथ खिलवाड की जाती है। ग्राम पचायतो के चुनाव होते हैं, और ग्राम पचायतो के चुनावो मे इस प्रकार के प्रसग आते हैं।

करुणा भी सिसक उठी

मै उडीसा का जिक्र कर रहा हूँ वहाँ पर ग्राम पचायत के चुनाव मे एक प्रसग आया कि एक गरीब व्यक्ति भी प्रतिनिधि के रूप मे चुना गया, क्योकि आज के जनतन्त्र मे गरीब भी चुनाव मे खडा हो सकता है। जो सरपच बनने वाला था उसने उस गरीब से कहा कि देख सरपच के लिए तू मुझे वोट देगा तो तुझे बीस रुपये दूंगा। वह गरीब भी गरीबी से तंग आ रहा था, बीस रुपये ले लिए और कहा कि आपको वोट दूंगा। लेकिन उसके बाद दूसरा उम्मीदवार पहुंचा और उसने कहा कि भाई अगर वोट मुझे देगा तो मै चालीस रुपये दूंगा। आजकल तो वोट भी बिकते हैं। आजकल जनतन्त्र का दुरुपयोग कैसे हो रहा है इस विषय को सम्भवत. आप अच्छी तरह जानते हैं, यह ज्यादा बतलाने की बात नही है। उसने लालच मे आकर चालीस रुपये वाले को वोट दे दिया। यह बात जब बीस रुपये वाले को मालूम हुई तो उसके गाठ पड गई। उसने सोचा कि मेरे बीस रुपये लेकर वोट मुझे नहीं दिया। उसने बीस रुपये का ब्याज

कटवा मिति से जोडा और थोडे दिनों मे सौ रुपये कर दिये। सौ रुपयों का दावा करके कुड़की करवा ली और कुडकी लेकर उसके घर पर पहुँच गया। उस गरीब के पास खाने के लिए विशेष सामग्री भी नही थी। घर में उसकी पत्नी के बच्चा जन्मा था। देश जब बच्चे का जन्म होता है तो माता को खाना खिलाने के लिए एक अलग धान होता है। वह विशेष तरह का धान उस माता को खिलाने के लिए पाच सात सेर घर मे पडा हुआ था। उसके साथ मे पुलिस थी उसने घर के सारे सामान को इकट्ठा करके ले लिया और उसके साथ जो जापे वाली को खिलाने का पाच सात सेर धान था वह भी ले लिया। तब उस गरीब ने गिडगिडा कर कहा कि महरबानी करके आप इस धान को छोड दीजिये मैं इस जापे वाली को क्या खिलाऊगा। लेकिन उसके दिल में कोई दया नही आई, उसने उस धान को भी उठा लिया। उसके कच्चे मकान की छत पर जो कवेलू थे वह भी उतरवाने लगा लेकिन सयोग की बात थी कि मजदूर नही मिले इसलिए कवेलू तो रह गये, बाकी घर का सफाया कर दिया। अब आप सोचिये कि उस गरीब की क्या दशा बनी। उसको अत्यन्त दुःख हुआ। उसने सोचा कि मै तो बिना मौत मारा गया। आज मेरे घर में कुछ भी नही है। अब नए बच्चे की माता को क्या खिलाऊगा। उसने सोचा अब मरना ही श्रेय-स्कर है। घर में से डण्डा उठाया और पत्नी से कहा कि अब मैं बदला लेने के लिए जा रहा हूँ। बीस रुपये लेने के लिए उसने इस तरह का अत्याचार किया है, अब मैं मर मिटूंगा। अब मेरी इन्तजार मत करना। डण्डा लेकर पहुँचा। वह महाशय अपने साथियो के साथ बाजार मे बाते कर रहे थे। हा हा बीस रुपये लेकर वोट नही दिया तो कैसा मजा चखा दिया। इस भावना के साथ वह हर्षित हो रहा था कि गुस्से मे वह व्यक्ति पहुँचा और आकर डण्डा सिर पर दिया। उसके जोरो से चोट आई और मुर्छा छा गई। लेकिन जव मुर्छा मिटी तो उसके साथ उसके मियाँ मिट्ठू लोग थे उन्होने उस गरीब के हाथ से डण्डा छीन कर उसके हाथ मे पकडा दिया और इस प्रकार गरीब की पिटाई की कि वह गरीव इतना घायल होगया कि जीवन से हाथ धो बैठा। वह पैसे वाला तो अस्पताल पहुँच कर इलाज करा-कर बच गया लेकिन वह गरीब आदमी मर गया। इस प्रसंग मे उसके भी लेने के देने पड गए। इस मुकदमे बाजी का इतना मामला चला कि जिन लोगो ने डण्डा छीना था उनके भी वीस-वीस हजार रुपये खर्च हो गये और स्वय का भी कितना ही खर्चा होगया और जेल में गये सो अलग। इस

प्रकार के प्रसग देखने मे आते हैं जब मनुष्य कितना क्रूर हो जाता है। फलस्वरूप उसे ही अनेक प्रकार के कष्ट उठाने पडते हैं।

तो मैं आपके सामने जीवन के दृष्टिकोण को समझाने के लिए, जीवन के स्वरूप को समझाने के लिए, जीवन के स्थाई तत्त्व को आपके सामने रख रहा हूँ। कही महारानी ने सोचा होता कि जीवन क्षण भंगुर है, वह स्थाई रहने वाला नही है और इसी दृष्टि से उसने बच्चे का पालन पोषण किया होता तो क्या वह उसमे ऐसे सस्कार पैदा कर सकती। लेकिन महारानी ने जीवन के मर्म को समझकर उसका पालन किया। राजा ने भी बच्चे के जन्म के बाद गरीब जनता पर कर की छूट दे दी। उसने बच्चे के जन्म के मगलमय उत्सव के अवसर पर सदा के लिए याद रहे ऐसी भावना से जो महाराजा का एक नवीन भवन बन रहा था उसको धर्म ध्यान के लिए भेट कर दिया। आप भी बहुत से भवन बनाते हैं लेकिन वे उसी राग के लिए, मोह के रंग से रंजित करने के लिए तैयार कराते हैं, किन्तु यदि उनको धर्मध्यान के लिए दे दें तो कैसे, क्या आपकी कीर्ति होती है। आज आप जिस भवन मे बैठे हुए हैं वह भवन भी कहा से प्राप्त हुआ है। लाल बहिन का नाम मैंने सुना है। यह बहुत बडा धर्म स्थान आज जिस बहिन ने दिया है उस बहिन का नाम भी रोशन है। कितने ही प्राणियो को यहा बैठकर आत्म कल्याण का प्रसग मिल रहा है। लेकिन मोह के अन्दर आकर मकान तो बना लिए और कभी उनको छोडकर जाना पडा, पीछे वालो ने उसको किसी कसाई या वेश्या को बेच दिया तो उनके हाथो मे पाप का कितना प्रसग उपस्थित हो सकता है। इस प्रकार जीवन के अन्दर होश हवास मे मोह का त्याग करने की बात विरलो के ही मन मे आती है। महाराज के किस तरह से इस मगलमय अवसर की याद स्थायी रखने के लिए अपने नवीन भवन को धर्मध्यान के लिए दे दिया। जब बालक के नामकरण का प्रसंग आया तो महाराजा ने कहा कि मुझे ज्योतिष और शास्त्र को देखकर नामकरण नही करना है। यह बच्चा तो अपना ज्योतिष अपने साथ लेकर आया है। इसने गर्भ मे आते ही माता को कमल युक्त सरोवर का स्वप्न दिखाया तो बच्चे का नामकरण भी कमलसेन कर देना चाहिए। कमल के अन्दर जैसे सुगन्ध रहती है और कमल को देखने से ही जिस प्रफुल्लता का अनुभव होता है, उसी दृष्टि से उसने पुत्र का नाम रख दिया कमलसेन। अब वह बालक कमलसेन के नाम से पुकारा जाने लगा और कमलसेन आगे जाकर कैसे तरक्की करता है और कैसे

शान्ति की खोज

प्रार्थना

विश्व सैन नृप "अचला" पटराणी, तस सुत गुण सिणगार हो सौभागी।
जनमत शाति करी निज देश मे, मरी मार निवार हो सौभागी॥
शाति जिनेश्वर साहिब सोलहमा॥

आज भगवान श्री शाति नाथजी की प्रार्थना की जा रही है। नामो का परिवर्तन होते होते दुनिया के इष्ट और प्रिय नाम वाले भगवान का भी प्रसंग आ गया। मानव शान्ति का बहुत पिपासु है। मानव ही नही देव भी शान्ति की चाह करते हैं। नरक और तिर्यञ्च-पशु भी शान्ति की अभिलाषा अपने हृदय मे रखते है लेकिन वह शान्ति मिल नही पारही है। शान्ति की भूख लगने पर भी खुराक नही मिल पा रही है और शान्ति की प्यास लगने पर भी पानी नही मिल रहा है। सारा ससार इस शान्ति की पिपासा मे इधर से उधर घूम रहा है। एक दृष्टि से देखा जाय तो समग्र प्राणियो का प्रयास शान्ति की दिशा मे है। यह बात दूसरी है कि शान्ति का मार्ग सही मिला या गलत मिला। जिस प्राणी को जिस प्रकार शान्ति का उपाय सूझा, जिसने जैसा मार्ग बताया अथवा जिसने जैसी कल्पना की उसी को शान्ति का उपाय समझा और वह उन्ही रास्तो और उपायो को लेकर चल पडा। वह मार्ग चाहे सही था या विपरीत। इस जीवन मे शान्ति की नितान्त आवश्यकता है। अशान्ति जीवन को तपाती है और शान्ति जीवन को सुख देती है। अशान्ति एक जहर है और शान्ति अमृत है। अशान्ति इस जीवन के अन्दर अत्यधिक वेदना पैदा करती है और शान्ति जीवन के प्रत्येक अणु को प्रफुल्लित करती है। उस शान्ति के नाम से कोई पदार्थ आ जाता है तो मानव उसके पीछे दौडता है तो फिर भगवान का नाम ही "शान्ति" आ जाय तो कहना ही क्या! दूसरे नाम याद करें या न करें लेकिन शान्ति नाथ भगवान को सबसे पहले याद करते हैं। जरासा

कोई सन्तप्त वायु मण्डल बना कि शान्ति-नाथ भगवान को याद कर लिया जाता है।

वे शान्ति नाथ भगवान आकाश से अवतरित नही हुये थे और नही पाताल से निकले थे। मानव प्रक्रिया के अनुसार मानव के रूप में जैसा अन्य प्राणियो का जन्म होता है उसी तरह उनका भी हुआ लेकिन उनके जन्म के प्रसग से ही ससार मे शान्ति का संचार हुआ इसीलिये उनका नाम शान्ति नाथ रखा गया। यद्यपि वे चक्रवर्ति भी हुये और तीर्थंकर पद भी पाया। दोनो पदो का सौभाग्य उनको मिला। चक्रवर्ती का पद सर्वभौम सम्राट का पद है—६ खण्ड का आधिपत्य जिनके चरणो मे हो। ६ खण्ड के अन्दर रहने वाला प्राणी जिनकी आज्ञा को सिरोधार्य करके चले। जिधर दृष्टि पड जाय उधर लाखो-लाख हाथ उठ जाय। जिधर इशारा हो वहा झुण्ड के झुण्ड नर नारी दौड पडे। संसार के उत्कृष्ट मानवीय भौतिक सुखो की उपलब्धि जिसमे हो, ऐसे वायुमण्डल मे रहने वाले वे शान्ति नाथ भगवान उन भौतिक सुखो मे ही तल्लीन नही रहे यद्यपि वे उस अवस्था में रहते हुये शान्ति का उपदेश अत्यधिक दे सकते थे लेकिन राज्य तख्त पर बैठकर जो उपदेश दिया जाता है वह जनता मे उतना हृदयग्राही नही होता जितना कि राज्य तख्त को छोडकर जनता के सम्पर्क मे आकर और जनता की उपस्थिति में साधना मार्ग को प्रशस्त बनाकर दिया जाय। इसलिये शास्त्रो का कथन है—चदत्ताभारहवास चक्कवट्टिमहड्ढिओ संति सति करे लोए पत्तोगइ मणुत्तर ॥ उ०

उन्होने उस ६ खण्ड के राज्य को ऋद्धि और वैभव को नाक के श्लेष्म की तरह परित्याग किया और सोचा कि शान्ति का स्वरूप त्याग की स्थिति मे ही अभिव्यक्त किया जा सकता है। जब तक मनुष्य पराश्रित है और वाह्य पदार्थो मे शान्ति ढूढता है तब तक वह शान्ति का वास्तविक दर्शन नही कर पाता। शान्ति स्व-आश्रित है। जो पर पदार्थों के सम्पर्क से शान्ति का अनुभव होता है अर्थात् स्वयं से भिन्न पदार्थों के सयोग से जो कुछ भी शान्ति का आभास पाता है वह वस्तुतः शान्ति नही है। शान्ति तो स्वय से व्यक्त की जाती है, शान्ति पर आया हुआ आवरण पर पदार्थो के ममत्व के हटने पर हटता हैं। जो मानव भौतिक पदार्थों को सब समझकर चलता है और उन्ही मे सुख और शान्ति ढूंढता है वह इन्सान उन पदार्थो की उपलब्धि पर क्षणिक शान्ति का अनुभव

कर सकता है किन्तु अन्ततोगत्वा वह दुख मे ही झूलता है। शास्त्रकारो ने शान्ति के अनेक भेद किये है उनमे ये चार मुख्य हैं। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। वस्तुत इन चार मे शान्ति का सही रूप नही है। द्रव्य की दृष्टि से अच्छा-सुन्दर मकान मिल गया और उस मकान के अन्दर वह शान्ति का अनुभव करने लगता है लेकिन मकान के जब छूटने का प्रसग आता है तब अशान्ति पल्ले पडती है। बहुत वडा द्रव्य-भवन विवशता से जब छूटता है तो वह अत्यधिक अशान्ति का अनुभव करता है। पर पदार्थ एक वक्त छूटते ही है चाहे स्वेच्छा से छोडे जाय, चाहे परतन्त्रता से छोडे जाय। मकान कभी मनुष्य के साथ नही गया। कोई आत्मा उसे परलोक मे नही ले गई। इन मकानो को यही छोड गये चाहे कितनी ही वडी हवेली हो, चाहे कितना ही भव्य भवन हो और चाहे घास फूस की झोपडी ही क्यो न हो। उसे भी छोड़ना पडता है और भव्य भवनो को भी छोडना पडता है। यद्यपि अज्ञानी आत्मा के लिये भव्य भवन को छोडना तो दूर रहा वह घास फूस की झोपडी को भी छोडना पसन्द नही करता। जिसके पास कोई ऋद्धि नही जिसकी झोपडी कोई मूल्य नही रखती लेकिन फिर भी उसके अन्दर ममत्व इतना रहता है कि वह छोडना पसन्द नही करता। और तो दूर रहा जहा एक काटो मे रहने वाला कीडा काटो की थैली को घर कह सकते है उन काटो को भी छोडना वह पसन्द नही करता। तो क्या भव्य भवन छोडना पसन्द कर सकता है ? लेकिन जिन्दगी मे एक क्षण ऐसा आता है जब उसकी पसन्दगी काम नही आती है, और वह भवन जबरन छूट जाता है और वह हाय हाय करता हुआ चला जाता हैं। तो देखिये वह द्रव्य सापेक्ष शान्ति उसके जीवन को शान्ति नही दे पाई वल्कि अत्यधिक दुख दे गई। जिसके पास हवेली नही है और जिसके पास घास फूस की झोपडी भी नही है वह उस शरीर को छोडने की कोशिश करेगा और शरीर छूटेगा तब उसको दुख होगा। क्या आप देखते है सन्त महापुरुष जहा भी रहते है कभी भव्य भवन मे जाते है तो कभी उनको घास फूस की झोपडी मिलती है और कभी ऐसा अवसर भी आता है जिसमें सेठिया लोग बैठना पसन्द नही करे ऐसे स्थान मे रहना पडता है। छत्तीसगढ़ में जब हम गये वहा मार्ग मे घरो की वस्ती कुछ नही थी। मजदूर सडक पर जो डामर डालने का काम करते थे उन डामर की कोठियो को खडी करके उन पर घास की टाटिया डाल देते है और उन्ही को घर मानते हैं तो वहां रहना भी पसन्द आया और रात्रि को सन्त लोग वहीं शयन कर प्रातः काल चले वहा मूलचन्दजी देशलेहरा जो मध्य प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष

रह चुके है, दर्शन करने आये तो कहने लगे महाराज आप इस झोंपडी मे कैसे रहे मुझे तो यहां बैठना भी अच्छा नही लगता। सन्तो ने कहा आपको तो यह अच्छा नही लगता लेकिन सन्तो के लिये यह भी अच्छा है। वहा ऐसी भी झोपडी मिल गई नही तो झाड के नीचे ही शयन कर लेते। जहा केवल ट्रक पडी हुई थी वहां भी सन्तो ने रात्रि विताई है तो सन्तो का जीवन द्रव्य पदार्थो की अपेक्षा नही रखता है। अगर सन्त द्रव्य पदार्थो की अपेक्षा करें तो शान्ति नही मिल सकती है। सन्त जीवन मे हाय तोबा नही चलती है और द्रव्य पदार्थ नही मिलने से दुख नही होता है। जिनके पास द्रव्य पदार्थ आध्यात्मिक शक्ति के रूप मे है वे ही पुरुप अपने आपमे शान्ति का अनुभव करते है। जिनके पास द्रव्य पदार्थ आध्यात्मिक रूप मे नही है और जब कभी वाह्य द्रव्य पदार्थ का प्रसग आता है तो दुख अनुभव करते है इसलिये द्रव्य सापेक्ष जो शान्ति है यह शान्ति नही है। क्षेत्र की दृष्टि से मनुष्य चिन्तन करता है कि यह मेरा देश है, यह मेरा गाव है और जब वह उस देश या गांव में रहता है तो उसको अच्छा लगता है लेकिन वह दूसरे देश या गॉव में जाता है तो उसको अच्छा नही लगता है। यह अच्छा लगना क्षेत्र की दृष्टि से है, पर क्षेत्र कौन सा अच्छा, कौन सा बुरा है ? क्षेत्र सव समान हैं। लेकिन मनुष्य ने क्षेत्र को भी पकड़ लिया। उसके साथ ममत्व भाव पैदा कर लिया। ममत्व भाव के कारण क्षेत्र सम्बन्धी शान्ति भी नही मिलती है। वह भी दुख का कारण है।

सभी काल सुखदायक हो सकते हैं

काल की दृष्टि से कौनसा काल शातिदायक है। मुख्य तौर पर काल की तीन अवस्थाये परिवर्तित होती है—चातुर्मास का काल, शीत का काल, ग्रीष्म काल—इनमें कौनसा काल शातिदायक है ? क्या चातुर्मास को शातिदायक मानते हैं ? ग्रीष्म ऋतु को ? या शीत काल को ? मनुष्य अलग-अलग कल्पना करके चलता है। जव गर्मी होती है तव वह अभिलाषा करता है कि वर्षा का समय आ जाय, वह शातिदायक होगा। वर्षा की स्थिति जव वनती है और कभी-कभी अत्यधिक वर्षा हो जाती है तो वह सोचता है, अरे ! यह समय अच्छा नही, यह तो अशातिदायक होगा। शीत काल की वह अभिलाषा करता है। जव अत्यधिक ठण्ड पडती है तो वह घवरा कर गर्मी की अभिलाषा करता है। तो काल की दृष्टि से, काल

को अभिलाषा से शांति का अनुभव नही होता है। अत: काल जो सापेक्ष शांति है वह भी वास्तविक शांति नही है। भावो की दृष्टि से, भाव मनुष्य को प्राय: विकारी दिशा मे बहाते हैं। एक दृश्य से कोई शांति अनुभव करता है, वह दृश्य हटता है तो सयोग-वियोग की स्थिति बनती है तो हाय-हाय करके जिन्दगी बीताता है। ज्ञानीजन का कथन है, शांति के विषय मे द्रव्य, क्षेत्र, काल, और भाव सापेक्ष जो शान्ति का अनुभव है वह वास्तविक शांति नही है। इनसे निरपेक्ष शांति मिल सकती है। यदि सदा के लिए शांति अनुभव करनी है तो उस त्याग के मार्ग पर चलना होगा जो वीतराग भगवान ने दर्शाया है। वह त्याग का मार्ग ही शाश्वत शान्ति का मार्ग है।

जो छ: खण्ड ऋद्धि का परित्याग करे—यह कोई आसान बात है? आज एक हाथ जमीन का परित्याग करना मुश्किल होता है। उसके लिए झगडा करेंगे, मुकदमा करेंगे, कितना ही रुपया खर्च कर देंगे। जो जमीन की कीमत है उससे अधिक पैसा अपनी सम्पत्ति मे से व्यय कर देंगे। लेकिन हाथ भर जमीन को भी छोडने के लिए तैयार नही होंगे। हाथ भर जमीन के लिए भी लडाई झगडा करने तक ही सीमित नही रहते, अपने सम्बन्धियो का कत्ल करने को तैयार हो जाते हैं। मुझे सासारिक अवस्थाओ के कुछ अनुभव हैं इस समय एक स्मृति मे भी आ रहा है। काका और भतीजे के बीच मे द्वन्द्व हुआ, एक हाथ भर जमीन पर। काका जी कहने लगे, भाई, तू यह दीवार बना रहा है, लेकिन इसको एक हाथ हटा कर बना। यह मेरा हक है। भतीजा कहने लगा, नही-नही, मैं तो यहाँ नीव लगाऊंगा। दोनो मे टकराव हुआ तो भतीजे ने काका का गला पकडा और पत्थर से काका का सिर फोडने को तैयार हो गया। वहा कुछ छुडाने वाले मिल गये तब जाकर उनका छुटकारा हुआ। मैंने जब आखो से यह दृश्य देखा उस समय स्थिति और थी। आज मैं चिन्तन करता हूँ ऐसे प्राणियो का, जो एक ही परिवार मे जन्म लेने वाले और एक हाथ भर जमीन के लिए एक दूसरे का जीवन नष्ट करने की तैयारी करने वाले हैं उन मनुष्यो को यहा शांति मिलने वाली है। इस प्रकार जिनमे त्याग भावना नही, ऐसे मनुष्य शांति अनुभव नही कर सकते। चक्रवर्ती ने ऋद्धि कैसे त्यागी, किस रूप मे त्यागी, उस त्याग का स्वरूप चिन्तन मे आता है तो मनुष्य का दिल दहल जाता है। यह तो दूर की चीज है, किन्तु जब कभी कोई भव्य आत्मा दीक्षा लेने की तैयारी करती है, उस वक्त दीक्षा लेने वाला तो लेता है और उसका परिवार दीक्षा भी दिलाता है लेकिन जो परिवार

के नही हैं उनको दुःख होता है, अरे ! अरे ! अभी से संसार त्याग कर साधु बन रहा है। अभी तो इसे साधु नही बनना चाहिए। इस विषय मे उन्हे चिन्ता और दु:ख हो जाता है। इसके विपरीत यदि आवारा बन जाय, उद्दण्ड बन कर परिवार को कलक लगाने की तैयारी कर ले तो उस वक्त किसी को कुछ रंज नही होता बल्कि वह उसे सहते रहते हैं। इस त्याग की स्थिति की तरफ उनका आकर्षण नही है तो वे जीवन के अन्दर शाति का अनुभव नही कर सकते। शांतिनाथ भगवान ने छ खण्ड ऋद्धि का त्याग किया, यह कम त्याग नही था और त्याग करके साधना करने मे लगे, जीवन की खोज करने मे लगे। जितने तीर्थंकर हुए उन तीर्थंकरो ने जीवन के स्वरूप को समझने के पूर्व उपदेश नही दिया। समग्र जीवन को उन्होने पहले समझा है—मेरा जीवन क्या है और ससार क्या है। उन्होने इस खोज के साथ मे अपने जीवन को समझा और केवल ज्ञान प्राप्त किया। उस केवल ज्ञान के साथ जीवन का समग्र स्वरूप ज्ञात हुआ। जो एक को सम्पूर्ण रूप मे जान लेता है वह सबको सम्पूर्ण रूप से जान सकता है और जो एक को सम्पूर्ण रूप मे नही जान सकता है वह समग्र को नही जान सकता है। शास्त्रकारो ने कहा है "जो एग जाणइ से सव्व जाणइ, जे सव्व जाणइ स एग जाणइ"। आचा० यह ऐसी वाक्यावली है जिसके द्वारा सारी सृष्टि के रहने वाले प्राणियो का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है।

शान्ति अपने भीतर ही है

मै अभी शाति के विषय मे चर्चा कर रहा था वह शाति जीवन के धरातल पर हैं, वह शाति जीवन का स्वरूप है लेकिन उसको अभिव्यक्त करने की कला हमारे अन्दर आनी चाहिए। अभी अभिव्यक्ति करना तो दूर रहा लेकिन अन्तर के स्वरूप को भी नही समझ पा रहे है तो शाति की अभिव्यक्ति कैसे हो पायेगी। जिस इन्सान को रत्न और ककर का ज्ञान नही उस मनुष्य को रत्न और ककर की राशि के बीच मे छोडकर कहा जाय, लो, इस ढेर के बीच में घुल मिलकर ककर और रत्न सब पड़े हुए है, इनमे से तुम बहुमूल्य रत्न को उठा लो तो तुम्हारे जीवन के अन्दर शाति का अनुभव होगा। वह व्यक्ति उस ककर और रत्न के ढेर मे से ढूढने के लिए जाय तो क्या वह वहा से बहुमूल्य रत्न प्राप्त कर सकता है ? वह भटकेगा लेकिन उसमे से कुछ प्राप्त कर सकता ? ज्यादा से ज्यादा अज्ञानतावश बुद्धि का प्रयोग करेगा तो जो काच का टुकडा अधिक चमकता है इसलिए शायद वह उसे रत्न समझेगा। अज्ञानी मनुष्य रत्न और ककर

के ढेर मे से रत्न की परीक्षा नही कर सकता, वह शांति का अनुभव भी नही कर सकता, चाहे वह व्यापारी क्षेत्र मे हो या धार्मिक क्षेत्र मे हो। कभी-कभी इस विषयक स्थिति मे मनुष्य अपने आपको बहुत बडा धोखा दे सकता है। दो साथी कमाने की दृष्टि से एक स्थान पर पहुँचे। एक साथी ने बहुत कमाई करके धन सचय कर लिया। दूसरे ने उसके साथ रहकर भी कुछ प्राप्त नही किया। जिसको धन प्राप्त नही हुआ वह घर लौटने लगा। उसने अपने साथी से कहा, मैं देश जा रहा हूँ, तुम भी चलो। उसके दोस्त ने कहा मैंने तो व्यापार का फैलाव कर लिया है, मैं तुम्हारे साथ नही चल सकता। तुम जाओ। कुछ मेरी पत्नी के लिए लेते जाओ। उसने कहा, अच्छा! आप कुछ दे दीजिये। उस व्यापारी ने एक बहुमूल्य रत्न अपने मित्र के हाथ मे दे दिया और कहा, यह मेरी पत्नी को ले जाकर देना। वह उस रत्न को लेकर चला। मार्ग मे उसने सोचा इस रत्न से मेरा जीवन सुखी बन जायगा। मैंने बहुतेरा प्रयास किया लेकिन कुछ उपलब्धि नही हुई। अब सहज मे यह रत्न मिल गया तो इस रत्न को हजम करने का सीधा तरीका है, क्योकि इसके पीछे न तो कोई साक्षी है, न लिखा पढी है। मित्र ने दे दिया, मैंने ले लिया। अब हजम कर जाता हूँ तो भी मुकदमेबाजी का प्रसग नही आता है। इस रीति से उस रत्न को हजम करने की उसने कोशिश की। अपने स्थान पर आकर चुपचाप उस रत्न को दबा कर बैठ गया। मित्र की पत्नी को उसने कुछ भी नही कहा, जब मित्र की पत्नी को ज्ञात हुआ कि मेरे पतिदेव के मित्र आ गये है और मेरे पतिदेव नही आये है तो उसने आकर पूछा, कोई कुशलता का समाचार भेजा है। उसने कुछ उपेक्षा भाव से उत्तर दे दिया। वह चुपचाप चली गई। कालान्तर मे जब उसके दोस्त का सारा व्यापार काबू मे आ गया तो वह वहाँ से चल कर अपने स्थान पर पहुचा। मकान मे प्रवेश करते ही पत्नी से पूछा, क्या तुम आनन्द मे तो हो? स्त्री ने कहा, आपकी तरफ से कुछ भी हो, हम आनन्द मे है या दुःख मे है, आप तो जब से विदेश गये तब से हमारी खबर ही नही ली, न कोई पत्र दिया, न कुछ मेरे लिए भेजा। मैं अपने जीवन के साथ चल रही हूँ। उसने कहा, अरे! तुम्हारे लिये तो मैंने बहुमूल्य रत्न भेजा था। क्या मित्र ने तुमको नही दिया है। उसने कहा, कुछ भी नही। दोस्त को अफसोस हुआ, मेरा बाल गोटिया मित्र, बचपन मे हम इस स्थिति मे रहे कि दो शरीर और एक जीव और आज बहुमूल्य रत्न के पीछे उसने मेरे साथ इस प्रकार का धोखा किया। वह अपने दोस्त के पास पहुचा, और कहा, मित्र मैंने आपको बहु-

मूल्य रत्न दिया था न ? उसने कहा, हां दिया था आपने । फिर तुमने क्या किया ? उसने कहा, मैंने आकर के आपकी पत्नी के हाथ मे दे दिया । मित्र कहने लगा, हाय, हाय बडा भारी धोखा है । इतने समय तक सोचता था, जैसा आपका जीवन पवित्र है वैसा ही आपकी पत्नी का जीवन पवित्र होगा । लेकिन जब वह इन्कार कर रही है और कह रही है कि मुझे कुछ भी नही दिया तो मुझे सन्देह है कि उसका जीवन किसी दूसरे के साथ लगा हुआ है । उसने वह बहुमूल्य रत्न किसी को दे दिया होगा । मैंने उनके हाथ में दिया । मित्र हैरान हो गया । आश्चर्य करने लगा, मेरी पत्नी आज दिन तक झूंठ नही बोली, और आज यह कैसे कह रहा है । मित्र ने कहा, अरे भाई, तुमने किसकी साक्षी में वह दिया है । उसने कहा, चार व्यक्तियो के सामने मैंने दिया है । बडा अफसोस हुआ, चार व्यक्तियो से पूछा गया । वह उस गांव के प्रतिष्ठित कहलाने वाले व्यक्ति थे । उन्होने कहा, हा साहब, हमारे सामने उनके हाथ मे दिया है । इधर पाच व्यक्ति हो जाते हैं और उधर अकेली बेचारी उसकी पत्नी । बडा दुःखी होकर वह न्यायाधीश के पास पहुंचा । उसने कहा, मेरे साथ ऐसी बात हो रही है । मेरा बहुमूल्य रत्न गया तो गया साथ ही मेरी पत्नी का जीवन भी लाछित हो रहा है, उसके जीवन पर कलक आ रहा है । मैं सोचता हूँ, मेरी पत्नी ऐसी नही है । आप न्यायाधीश है । आप इस विषय मे कुछ इन्साफ कर सके तो बहुत ही अच्छा रहेगा । न्यायाधीश ने कहा, कुछ लिखा-पढी है ? कुछ भी नही है । सिर्फ मेरा मित्र इतना बोलता है, हा, वह रत्न आपने दिया है मैंने आपकी पत्नी को दे दिया है । न्यायाधीश वह व्यक्ति था जो जीवन की परीक्षा करने वाला और चतुर था । उसने उसके मित्र को बुलवाया और उससे पूछा, क्या तुमको विदेश से आते वक्त तुम्हारे मित्र ने बहुमूल्य रत्न दिया था ? हा साहब, दिया था । फिर आपने क्या किया ? उसने कहा, मैंने आते ही मेरे मित्र की पत्नी को दे दिया । साक्षी के लिए चार व्यक्ति है । न्यायाधीश ने सोचा, कानून की दृष्टि से यह मामला इसके पक्ष मे जा रहा है । जो इसका मित्र है, जिसके जीवन को मैं जानता हूँ, वह इतना मलिन नही है कि व्यर्थ ही इसके बारे मे कुछ कह दिया जाय । न्यायाधीश ने कहा, अच्छा भाई ठीक है । उसको एक तरफ बैठा दिया । प्राचीन काल मे न्यायाधीश कुछ न्याय भी करते थे, लेकिन उस समय साधन कुछ और थे । वे कुछ तथ्य को ढूंढने की कौशिश करते थे । उसने एक कमरे के अन्दर बहुतेरे पत्थर, कुछ छोटे कुछ बडे, एकत्रित कर रखे थे, जो चार व्यक्ति गवाही देने वाले थे, उनको सबको अलग-अलग

रखा । एक गवाही देने वाले व्यक्ति को न्यायाधीश साथ मे लेकर उस कमरे मे पहुँचा और कहने लगा, आपके सामने जो रत्न उस वहिन को दिया गया, वह कितना बडा था ? यह इतने छोटे मोटे पत्थर पडे हुए हैं इनमे मे आप किसी पत्थर को उठा कर बताओ । उस गवाह देने वाले व्यक्ति ने अपनी जिन्दगी मे कभी रत्न नही देखा था तो वह सोचने लगा आखिर बहुमूल्य रत्न था तो बडा होना चाहिये, उसकी कल्पना दौडी और बडा सारा पत्थर उठाकर न्यायाधीश के हाथ मे देता है कि इतना बडा रत्न था । न्यायाधीश ने उस पत्थर को लेकर एक तरफ रख दिया और उसको एक कमरे मे बैठा दिया । दूसरा गवाह देने वाला था उसको बुलाया और इसी तरह प्रश्न किया । उसने भी जिन्दगी मे कभी रत्न नही देखा था । उसने भी यही सोचा कोई बहुमूल्य रत्न था तो बडा होना चाहिये और बडा सारा पत्थर उठाकर दे दिया । वैसे ही तीसरे और चौथे ने कार्य किया । न्यायाधीश ने चारो पत्थरो को एक साथ रखकर उस व्यक्ति को जिसने रत्न दबाया था, बुलाया और उससे कहा बोलो भाई तुम्हारे मित्र ने तुम्हे रत्न दिया था वह कितना बडा था तो उसने उस रत्न को देखा था और दबा रखा था इसलिये उस आकार का पत्थर उठाकर न्यायाधीश के हाथ मे दे दिया । तब न्यायाधीश ने पूछा ऐसे और भी रत्न तुम्हारे पास हैं ? और रत्न तो उसके पास थे नही । वही रत्न था लाकर बता दिया और कहने लगा और रत्न नही हैं । तो न्यायाधीश ने देखा इतने बडे बहुमूल्य रत्न को रखने वाले के पास और भी रत्न होने चाहिये । उसको पास मे रखकर न्यायाधीश ने कहा भाई तुमने धोखा किया और वह धोखा तुम्हारे मित्र के साथ ही नही है, अपने जीवन के साथ भी धोखा है । तब उसने कहा ऐसा कैसे हो सकता है । चार जनो की साक्षी मे दिया है— चार जने इसके साक्षी हैं । तो न्यायाधीश ने कहा ये चार आदमी तो रत्न को जानते भी नही है । ये जो चार पत्थर लाकर इन्होने दिये हैं, इससे साबित होता है कि इन्होने तो रत्न को देखा तक भी नही है । ये जो चार पत्थर रखे हैं इन्हे देख लो । फिर उस मित्र मे परिवर्तन आया और पश्चाताप के साथ कहने लगा मेरी भूल हो गई । मैने तो यह कार्य किया लेकिन उन चार आदमियो को धोखा दिया । न्यायाधीश ने उस रत्न को वापिस लौटा दिया । यह [illegible] स्पष्ट है । आज इसमे क्या उपस्थित हो रहा है धोखा देने और चोरी करने वाले की कैसी हालत हो गई । यह इसीलिये कहा है कि मनुष्य इस जीवन मे सभी तरह की स्थिति के साथ गुजरता है । इसे सिद्ध करता जो पहचान नही होती तब तक उन चार व्यक्तियो की तरह

अटकल बाजी लगाया करता है। जीवन की परीक्षा करना है और जीवन को देखना है तो जो ज्ञान मार्ग भगवान महावीर ने बताया है वह यह है कि इन चीजों का परित्याग करके जीवन को निखालिस बनाकर देखे कि हमारा जीवन कैसे चल रहा है, जीवन की कैसी परिस्थित चल रही है। इस जीवन को समझने वाला वह उन पदार्थों का भी परित्याग कर देता है। अपने जीवन के स्वरूप को निखार कर लेता है चाहे वे किसी भी स्थिति मे क्यो न रहते हो। इसी बात को सरलीकरण के साथ समझाने के लिए मैं कमलसेन की कथा रख रहा हूँ। कमलसेन का बचपन का जीवन बड़े विचित्र ढग से चल रहा है—

विकास की पहली सीढ़ी

कमलसेन का नामकरण हो गया, उसकी स्थिति शुक्ल पक्ष केचन्द्रमा के समान बढ़ने लगी और जब योग्य अवस्था पर पहुँचा तो स्कूल मे शिक्षण के लिए भेजा गया। आजकल की तरह कोमल अवस्था मे स्कूल मे प्रवेश नही कराया गया। आजकल तो कोमल अवस्था में ही उनको स्कूल मे भरती करा दिया जाता है, उनका जीवन पहले ही मुर्झा जाता है। आज अपने बच्चो को स्कूल मे भेजने की बडी जल्दी कोशिश करते है, बच्चे के वय का कोई ध्यान नही करते है और यह सोचते है बच्चा पढ लिखकर होशियार हो जाय तो पैसा कमाने की एक मशीन तैयार हो जाय। क्योंकि मनुष्यो ने पैसा कमाने की मशीन समझ रखी है। बच्चो के जीवन के महत्त्व के प्रश्न को नही समझते है जब स्कूल मे बच्चो के प्रवेश का प्रसंग आता आता है और सरकार की तरफ से यह आज्ञा हो कि स्कूल में भरती होने वाला बच्चा पाच वर्ष का होना चाहिए तो झूंठ बोलकर और कृत्रिम सर्टिफिकेट देकर बच्चे को स्कूल मे भरती करा दिया जाता है। इसका परिणाम क्या हो रहा है छोटे बच्चे को ही पुस्तको का बहुतेरा भार लग जाता है और उसका कोमल मस्तिष्क अतिभार से मुरझा जाता है। वे बच्चे जैसे होनहार होने चाहिए वैसे नही बन पाते और अपने जीवन मे कोई विशेप उन्नति नही कर सकते हैं। आज आप अनेक डिग्री प्राप्त छात्रो की दशा देखेगे, वे डिग्री भले ही प्राप्त करले किन्तु उनकी बुद्धि और व्यवहार उतने कुशल नही है जितना प्राचीन काल का मानव जो डिग्री प्राप्त नही है और सीधा सादा है वह व्यवहार कुशल और बुद्धि वाला होता है। कुछ विरले छात्र ही ऐसे होते है जो अपनी बुद्धि कोशल को

दिखा सकते हैं। इसका कारण प्रारम्भिक रूप से शिक्षा का भार है जो छोटे बच्चो पर डाल दिया जाता है लेकिन प्राचीन काल मे ऐसा नही था।

अतः कमलसेन को स्कूल मे कुछ योग्य अवस्था हुई तब भेजा गया। उस समय पढाई का भार दिमाग पर नही पड़ता था। सहज तरीके से ज्ञान-विज्ञान सीख लेते थे। राजा के घर मे कई दास-दासो रहते थे, वे अपने अपने देश की भाषा बोलते थे राजा का बच्चा कई भाषाओं का ज्ञान सहज ही प्राप्त कर लेता था। कमलसेन ने अपने बचपन की अवस्था मे ही कई तरह की कला सीख ली। उसमे धार्मिक कला का भी सुन्दर समावेश था। धार्मिक कला सीख ली जाय तो व्यक्ति के जीवन का स्वरूप चमक उठता है। जिसने धार्मिक कला नही सीखी वह जीवन को नही समझ पाता है। वह जीवन को मिट्टी के ढेले की तरह कि वा यन्त्र की तरह समझ कर उसका प्रयोग करने लगता है, जीवन की तरफ से उदासीन होने लग जाता है। कमलसेन सोचने समझने लगा कि यह जीवन मिला है, इस जीवन को संसार के विषयो मे लगाना उपयुक्त नही है। इस जीवन मे मुझे तत्व की खोज करनी है, मेरा स्वरूप क्या है मैं जीवन के उस स्वरूप की खोज मे लग जाऊ। इस भावना का प्रादुर्भाव बचपन मे हो गया।

चिता और चिंता

जिसने जीवन का थोडा तथ्य समझा है, जीवन के स्वरूप की कुछ उपलब्धि की है वह व्यक्ति इस जीवन को व्यर्थ के काम मे नष्ट नही करता है। कमल सेन अपनी तरुणाई मे प्रसन्न मुद्रा के साथ अपने जीवन का उत्थान कर रहा था। उसने शोक और चिन्तायें दूर फेंक दी। जब तक बचपन की जिन्दगी होती है उस वक्त तक बच्चा प्रफुल्लित होता है। वह तरुणाई मे प्रवेश करता है तो बहुत सी चिन्ता उन पर सवार हो जाती हैं। चिन्ता जिस तरुण पर सवार हो गई, मान लीजिये, उनके लिए वह, आग हो गई। चिन्ता और चिता – इनमे ज्यादा अन्तर नही पडता है। कितना अन्तर पड़ता है? बिन्दी का? लेकिन चिता किनको जलाती है? चिन्ता जीते मनुष्य को जलाती है। मनुष्य का सीधे तरीके से विकास होने वाला है, लेकिन चिंता रूपी अग्नि के अन्दर वह जलने लग जाता है। स्थिति बदल जाती है। कमल सेन अपना जीवन ऐसे जलाने के लिए तैयार नही था। उसके मन मे न ईर्ष्या थी, न द्वेष। वह अपने साथी को रटते हुए देख

कर प्रमुदित होता और सोचता, मैं भी आगे बढूं। यह ईर्ष्या नही है, यह जिज्ञासा है, प्रतिस्पर्द्धा है। प्रतिस्पर्द्धा होनी चाहिए लेकिन जीवन के साथ ईर्ष्या हो तो वह जीवन को पतित बनाने वाली होती है। ईर्ष्या करने वाला व्यक्ति सोचता है, मेरा जीवन बन जाय लेकिन पडौसी का जीवन नष्ट हो जाय। वह इतना बड़ा क्यो हो गया, वह इतना क्यो बढ गया, उसकी स्थिति यह क्यो हो गई। मेरी स्थिति उससे बढकर बने, उसकी स्थिति खराब हो जाय। यह ईर्ष्या-राक्षसी होती है, इसका जिसके मन पर असर हो जाता है, वह जीवन के स्वरूप को बिल्कुल नही देख पाता। वह जीवन का अपव्यय करके उसे नष्ट कर डालता है। कमल सेन अपने हृदय से इन चीजो को दूर हटा कर निर्मलता के साथ अपनी जिन्दगी को चलाने लगा :

वह सोच रहा था कि मुझे इस बहुमूल्य जीवन मे अन्तर तत्त्व की खोज करना है, मुझे व्यर्थ वाद विवाद मे नही उतरना है। व्यर्थ के वाद-विवाद से जीवन शक्ति नष्ट होती है और तथ्य कुछ भी नही निकलता। जो व्यर्थ के वाद-विवाद मे नही पडता है वह अपनी शक्ति को सचित करता है और वही शक्ति जीवन के खोज मे अच्छी तरह लग जाय तो उसके जीवन का वास्तविक रूप निखर जाय। आज का मनुष्य व्यर्थ के वाद-विवाद की ओर जा रहा हैं। काल्पनिक चित्र को उपस्थित करके शक्ति को नष्ट कर डालता है और तो दूर रहा पत्र पढते हैं– दैनिक पत्र पढकर अपनी अपनी अटकले लगाते है। यह ऐसा है, वह ऐसा है। यह पार्टी ऐसी है। वह पार्टी ऐसी है। दोनो पार्टियो को ले कर के खडे हो जाते है और विवाद करके अपने आप में दुश्मनी वान्ध लेते है पर हाथ मे कुछ नही आता है। आज कुछ ऐसी ही स्थिति बन रही है। तरुणों की स्थिति भी इसी प्रकार बनती जा रही है। ऐसी अवस्था मे वे जीवन के स्वरूप को कैसे समझे और कैसे वास्तविक शान्ति का अनुभव हो। उस कमल सेन ने वाद-विवाद को छोडा और उसके साथ ही साथ क्रोध का भी परित्याग किया। क्रोध का जहा प्रसग आया, उसको टाल दिया। अपने जीवन मे स्वीकृति नही दी। क्रोध को भी स्वीकार किया जाता है तो वह दु ख देने वाला बनता है अन्यथा नही। वह आता कहा से है। अन्दर से उठता है। निमित्त बनने पर अपने अन्दर की ज्वाला को भड़कने न दे। क्रोध को कभी स्वीकृति न दे।

दृष्टि में सृष्टि

एक यग मेन—तरुण जो रास्ते से जा रहा था। उसने मार्ग मे एक

साधु को देखा, उसके मन मे अशान्ति उत्पन्न हो गई, वह जोर से बोलने लगा ये साधु लोग व्यर्थ मे इधर उधर फिरते हैं। कुछ भी काम नही करते। ऐसे लोगो को जिन्दा रहने का अधिकार नही है। समाज के अन्दर ये भार भूत है। ऐसी बहुत बाते बोल गया। महात्मा उसकी बात को सुनते रहे और चुपचाप खडे रहे। जब तरुण बोलना बन्द करता है उस वक्त महात्मा छोटा सा प्रश्न करते हैं कि भाई तुमने अपनी बुद्धि का विकास किया है तो साथ मे अपने जीवन का भी विकास किया होगा ? मैं एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ उसका उत्तर दे पाओगे ? तो उसने कहा उत्तर हम नही देगे तो कौन देगा ? कहो, कहो तुम्हारा क्या प्रश्न है ? महात्मा ने कहा एक दातार अपना माल दुकान मे फैलाकर बैठता है और जोर जोर से चिल्लाता है जो कोई लेना चाहे ले जाय, मैं दान देता हूँ। उस मार्ग से बहुतेरे निकलते हैं लेकिन कोई व्यक्ति उसको ग्रहण नही करता तो वे वस्तुए किसकी रहती है ? तरुण ने कहा अरे इतना भी नही समझते। वह दातार देना चाहता है और कोई लेना नही चाहे, उसके दान को स्वीकार नहीं करे तो उसकी ही रहेगी। सन्त बोला भाई तुम भी उस दातार की तरह ही हो। तुमने कह दिया लेकिन किसी ने ग्रहण नही किया। किसी ने उसका स्वीकार नही किया तो ये सारी चीजे किसकी रहेगी ? तरुण समझ गया। वह सोचने लगा इसमे मेरी व्यर्थ की शक्ति नष्ट हुई है। उसके ज्ञान की पिपासा भी जागृत हो जाती है। वह महात्मा के चरणो मे अपने जीवन का स्वरूप समझता है। बन्धुओ बहुतेर जीवन मे उत्तेजना देने वाले मिल सकते है लेकिन उनको आप कतई स्वीकार न करे जिससे आपके जीवन की शक्ति नष्ट न हो। मनुष्य के अपने विचार जैसे होते हैं, उनकी दृष्टि भी वैसी ही होती है। हमारा देखने का ढग उसी प्रकार का होता है। अच्छे पुरुष सभी मे से अच्छाई ही ग्रहण करते हैं। बुराई की ओर उनका ध्यान ही नही जाता। इसीलिए तो कहा गया है कि दृष्टि मे सृष्टि बसी है। आप भी इस रूपक से एव तरुण कमल सेन के जीवन से कुछ शिक्षा ग्रहण करके चलेगे तो आपका जीवन शान्तिनाथ प्रभु की परम शान्ति को प्राप्त कर सकेगा।

लाल भवन
१-८-७२

जीवन की परख

प्रार्थना

कुन्थु जिनराज तू ऐसो, नही कोई देव तो जैसो ।
त्रिलोकीनाथ तू कहिये, हमारी बाँह दृढ गहिये ।।

बन्धुओ !

यह प्रभु कुन्थुनाथ की प्रार्थना है । ये प्रार्थना की पक्तिया आधुनिक कवि की नही हैं । यह प्राचीन काल के कवि की कविता है । इसमें शब्द उसी भाषा के अनुरूप रखे गये है । लेकिन शब्द उतने महत्वपूर्ण नही है जितने शब्दो के पीछे रहने वाले भाव । शब्द तो अन्दर के विचारो के वाहक हैं । विचार शब्दो पर आरूढ़ होकर बाहर आते है । कवि के मन मे जो कुछ विचार पैदा होते हैं उन कल्पनाओ की ओर विचारों को शब्दो के माध्यम से बाहर व्यक्त करते है । शब्द कैसे ही हो, वाहन का महत्व नही है, महत्व सवार का है ।

उस शब्द रूपी वाहन पर विचार रूपी सवार कैसे आ रहा है ? इस तरफ दृष्टिपात यदि किया जावे तो उन विचारो का ही महत्व सामने आता है । परमात्मा कुंथुनाथ के चरणो मे कवि विनयचन्दजी ने कहा कि :—"हमारी बाँह दृढ गहिये ।"

"प्रभु ! आप मेरी बाँह को अब दृढता से पकड़ ले । यहाँ बॉह को पकड़ने का तात्पर्य इस भौतिक शरीर की बाँह को नही, लेकिन जीवन की जो बाँहे हैं उनमे से एक को तो पकड लो । अर्थात् इस संसार रूपी समुद्र के अन्दर यह आत्मा गोते खा रहा है, इसको उबार दो, तार दो और पार लगा दो । ये भावनाएँ इस कविता की पक्तियो मे से झलक रही है । लेकिन देखना यह है कि क्या प्रभु इस प्रकार बाँह पकडकर तारते है कि अगर इस तरीके से परमात्मा तारने लगे तो इस ससार के अन्दर जितने

भी दुखी प्राणी है, जो इस संसार समुद्र के अन्दर बुरी तरह से भटक रहे हैं, उन सबका उद्धार हो जाए। प्रभु दयालु है दयालु को तो दया का पात्र चाहिए। पर क्या वे ऐसा कर रहे हैं? जब वे ऐसा कर सकते हैं तो फिर क्यों नहीं दुखी व्यक्तियो का उद्धार कर रहे हैं? यह एक दृष्टि सामने आती है, एक प्रश्न बनकर सामने खड़ा हो जाता है। लेकिन अगर गहराई से चिन्तन किया जाय तो यह कथन केवल उपचार मात्र है। स्वय की अभिमान की भावना को तिलांजलि देना मात्र है। व्यक्ति अपने जीवन पर, अपने यौवन पर, अपनी शक्ति और सम्पन्नशीलता पर एव अपने शरीर पर अभिमान करता है। मैं ऐसा कर रहा हूँ मेरे अन्दर ऐसी शक्ति आ गई है। इस प्रकार की अहं वृत्ति जब आत्मा पर छा जाती है तो वह आत्मा अपने विकास को अवरुद्ध कर डालती है। इस अहं वृत्ति का परित्याग करने के लिए अपने आपको साधारण व्यक्ति बताने के लिए कवि कुछ संकेत दे रहा है कि आप मुझे पार उतारो। अहंकार की वृत्ति दो तरह से प्रकट हो सकती है अर्थात् अहं की शक्ति का प्रयोग दो तरह से हो सकता है। एक तो दूसरे को नीचा दिखाने की दृष्टि से अहं वृत्ति के साथ शब्दो का प्रयोग करता है "मैं ऐसा हूँ" और दूसरा मात्र वस्तु स्वरूप का कथन करने की दृष्टि से अपनी वास्तविक शक्ति को किसी के सामने रखता है कि मैंने कुछ किया है और यह मैं कर रहा हूँ। उसमे भी मैं शब्द का प्रयोग है। पर वस्तु स्वरूप का निरूपण करने की दृष्टि से जो मैं शब्द का प्रयोग किया गया है वह घातक नहीं है। वह तो विकास की ओर ले जाने वाला है क्योंकि उसके द्वारा वस्तुस्थिति का प्रतिपादन करते समय शब्द का प्रयोग होना स्वाभाविक है। पर जो दूसरो को कमजोर बताने के लिये या नीचा दिखाने के लिए या अन्य तरह से प्रयोग करते हैं वह हितावह नहीं है।

प्रत्येक व्यक्ति को यह सोचना है कि मेरे जीवन का उत्थान मेरे हाथ में है। प्रभु मुझे हाथ पकड़ कर ले जाने वाले नहीं है। यह जो कुछ भी प्रभु के चरणो में निवेदन है वह एक अपनी लघुता की दृष्टि से है। भगवान तो दयालु हैं पर दयालुता के साथ ही उनमे तटस्थ भाव भी विद्यमान है। उनके सामने कैसा भी दृश्य हो लेकिन वे उस दृश्य को तटस्थ दृष्टि से रूप से देखते हैं। वे उसमे हस्तक्षेप नहीं करते। जितनी भावनाएँ ऊँची उठ जाती हैं उतनी ही वे साधारण स्थितियो में हस्तक्षेप नहीं करतीं। आपने व्यावहारिक जीवन में भी देखा होगा। जब बच्चे के

तब बच्चों के खेलो मे भाग लेते थे। उसमे जय पराजय की भावना थी और दो बच्चो के बीच मे अपने खिलौनो को लेकर झगडे होते थे तो ताकत की दृष्टि से आप बच्चो मे हस्तक्षेप करते थे। पर वह बचपन की स्थिति चली गई और जीवन मे आगे बढे, यौवन मे आये और यौवन के बाद प्रौढता आई और जब मनुष्य के सामने अन्य महत्वपूर्ण कार्य आ गये तब वह इन दो बच्चो के झगडे को देखता है उनके खेलने के साधनो को देखता है लेकिन क्या अब वह उनमे रुचि लेता है ? उन बच्चो के बीच मे हस्तक्षेप करता है ? आप अपने ऊपर ही ले लीजिये आप बैठे हुए हैं और दो बच्चे अपने मिट्टी के खिलोनो से खेल रहे है। कभी वह उसे पटक रहा है कभी वह पटक रहा है पर आप इसमे कुछ भी भाग नही लेंगे, इधर ध्यान भी नही देंगे। आप यही सोचेगे कि इधर क्या देखना है, यह तो बच्चो का खेल है। इसमें क्या हार और क्या जीत। ये अपने आपकी छोटी वृत्ति से दुखित हो रहे है और एक क्षण अगर जीत गये तो सुखी हो रहे हैं। एक एक क्षण मे सुख और दुख का अनुभव करते है। इसमे मेरा क्या लेना देना है। जिस तरह से यह तटस्थ वृत्ति आप मे भी आ रही है। इसी तरह से जिन आत्माओ का चरम विकास हो गया है जिनमे रागद्वेष की कल्पना नही रही वे सब तरह से तटस्थ बन जाते हैं। ससार मे रहे हुए प्राणियो की तरह जो क्षणे रुष्टा क्षणे तुष्टा है, कभी किसी को कुछ कह दिया तो दुखी हो गया और उसने कही कुछ कह दिया तो वह सुखी हो गया, क्या यह भी उन चरम छोर के विकास को प्राप्त-प्रभु के लिये बच्चो का खिलोना नही है ? ज्ञानियो की दृष्टि मे यह भी खिलोना जैसा ही है। वे बच्चे उन कम कीमत के खिलोने से खेलते है तो आप अधिक कीमत वाले खिलोने से खेलते है। ये सोने चादी और जावाहरात क्या है। आप इन्हे चाहे कितना ही महत्व दे। ये अधिक कीमत वाली कितनी ही हों। उनको एक व्यक्ति पकडता है, दूसरा कचोटता है, तीसरे के हाथ से निकल जाती है, तो इसको उनको कुछ दुख सुख होता रहता है तो ज्ञानी इस सब खेल को देखकर समझते है "यह तो बच्चो का खेल है। इसमें भाग लेने की आवश्यकता नही। ये सब वस्तुएं तो मोह की कारण भूत हैं। इनको जितना जितना छोडेगे उतनी उतनी वास्तविक सुख की दिशा में प्रगति करेंगे। इसलिये इस आत्मा को अपना मार्ग अपने आप तय करना हैं न कि भगवान के भरोसे बैठे रहना है। हमे अपने स्वरूप का निर्माण करना हैं स्वय को ही करना है और जो निर्णायक शक्ति

छिपी है शरीर मे दबी हुई है, उसको प्रकट करना है उसमे निखार लाना है।

मूल प्रश्न, जीवन क्या है ?

जयपुर मे आने के पश्चात् कुछ प्रश्न आपके सामने रख गया और उसके आगे कुछ उसकी व्याख्या चल रही है। वह आपको याद होगा ही।

प्रश्न है, किं जीवनम् ?

जीवन क्या है। इस प्रश्न के उत्तर मे कुछ परिभाषाओं का रूप लेकर मैं उस बात पर चल रहा हू कि—

"सम्यग् निर्णायक समतामयं च यत् तज्जीवनम्"

इसमे जो निर्णायक शब्द है। वह मूल शब्द है और मूल की व्याख्या बनती है तो फिर विशेषणो की व्याख्या आती है। मनुष्य है तो फिर वह मनुष्य कैसा है किस टाइप का है। कैसी वृत्ति रखता है ये विशेषण पीछे लगते है। इसलिये विशेषण के पूर्व मूल जो विशेष्य है उसका ठीक तरह से बोध कर लेना चाहिये।

जीवन की परिभाषा के अन्तर्गत निर्णायक शब्द अपेक्षा से विशेष्य के रूप मे लिया जा सकता है। इसकी व्याख्या यदि हमारे समझ मे आ गई तो हम इस शब्द के साथ लगने वाले सम्यग् विशेषण पर भी विचार कर सकते है। वह निर्णायक शक्ति, प्रत्येक मानव के अन्दर विद्यमान है और उस निर्णायक शक्ति का जो कर्ता है वह भी इसमे बैठा हुआ है। आज निर्णायक शक्ति के कार्य को देखा जा रहा है लेकिन कर्ता का अवलोकन नही किया जा रहा है। फव्वारे छूट रहे है, फव्वारो को हम देख रहे है, पर वह फव्वारा कौन छोड़ रहा है उसको नही समझ पा रहे है। कार भाग रही है, और मनुष्य की दृष्टि उस पर लगी हुई है। वह कार बहुत तीव्र गति से जा रही है लेकिन कार के चलाने वाले को दौड़ता हुआ देख नही पाते। कार को चलाने वाला दौड़ता नही है। वह बैठा रहता है, कार मे।

इसमे वह कार चलाने की निर्णायक शक्ति रहती है, कहा मोड़ कौन कैसा मोड़ दिया जावे यह उसमे विज्ञान है।

वैसे ही इस जीवन रूपी कार की निर्णायक शक्ति का रूप [illegible] अवलोकन

करे। यह शरीर रूपी कार इस भूमण्डल के रंग मच पर कब से दौड रही है, कौन दौडा रहा है, इसका कार्य तो दृष्टिगत हो रहा है लेकिन इसका सचालक ड्राइवर कहा है और वह मूल तत्त्व किस मे रहा हुआ है इसका जब तक सही विज्ञान हमे नही होगा तब तक इस शरीर को देख देखकर हम भूलावे मे ही पड़े रहेगे। लोग अपने शरीर की सुन्दर छवि को देखकर फूले नही समाते है। आज इस शरीर के पीछे क्या स्थिति बनी हुई है, इसको किस तरह से बनाव तथा शृंगारो से सजाया जा रहा है, इसका किस तरह से प्रदर्शन किया जा रहा है, यह हम सबके देखने में आ रहा है। यह सब प्रदर्शन उस विज्ञान के नही जानने के कारण हो रहा है और जो आज की स्थिति बन रही है वह भी उस विज्ञान के अभाव मे बन रही है अधिकांश के जीवन इसके पीछे व्यर्थ जा रहे है। तरुण और तरुणियां आज अपने इस शरीर को देख देखकर फूले नही समाते। मन में समझते है कि अहो, हमारा यह शरीर कैसा सुन्दर है। बचपन की अवस्था मे अपने आपको शरीर की सुन्दर आकृति को देखकर मुग्ध बने फिरते है, तरुणाई मे कुछ और दृश्य रहता है पर वृद्धावस्था मे पहुँचते है तो रौनक और बदल जाती हैं।

उस अवस्था में मानसिक उत्साह शिथिल पड़ जाता है लेकिन यह नही सोच पाते कि यह वृद्धावस्था क्यो आई। इसका कारण क्या बना, इसके पीछे मूल स्रोत क्या है यह वे नही समझ पाते क्योकि यह समझने की शक्ति नही रही तो उसको देख-देख कर दुखित होते हुए इस ससार से रवाना होजाते है। इसीलिए वीतराग देव ने गौतम गणधर को सम्बोधन करके कहा :

"परिजुरइ ते शरीरं
कैसा पण्डुरया हवन्तिते
से सोयबलेयहायइ
समय गोयम ! माप्पमायए ।। ३०
"परिजुरइ ते शरीरं
कैसा पण्डुरया हवन्तिते
से चक्खु बलेयहायइ
समयं गोयम ! माप्पमायए।

हे गौतम ! जिस शरीर के ऊपर तुम मुग्ध होते जा रहे हो, जिस शरीर की प्रक्रियाओ को देखकर फुलावट बढ रही है, इन प्रक्रियाओं के

अन्दर ही सीमित मत रहो, यह तो रंग बदलने वाली है और जीर्ण शीर्ण बनने वाली है इसके केस श्वेत (पाण्डु) रंग के बन जायेंगे उस वक्त कुछ भी नही कर पावेगा। अभी जो तुम्हे वास्तविक तत्त्व देखने का है उसे देखो, जिसका निर्णय करना है उसका निर्णय करो लेकिन शरीर जो चमडी और हाडमास का पुतला है उस पर मुग्ध मत बनो। इस वीतराग वाणी मे अनन्त आशय रहा हुआ है उस अनन्त आशय की दृष्टि से वीतराग देव के जो वचन हैं उनमे से जितने लिये जायें उतने कम है। आप इस वीतराग वाणी को अपने जीवन के साथ देखिये जब आप मे भौतिक दृश्यो को देखने के साथ-साथ मूल तत्त्व को समझने की शक्ति विद्यमान है और आप अच्छी तरह से समझ सकते है। उस वक्त यदि आपने उस मूल तत्त्व को नही देखा और केवल टहनी और पत्तियो को देखते रहे और जब शरीर की दुर्दशा होगी, मानसिक शक्ति कमजोर होगी तब कुछ भी नही देख पाओगे। इसीलिए जीवन के निर्णायक स्वरूप मूल तत्त्व जो आपके इस शरीर के मध्य विद्यमान है और अपना सारा कार्य कर रहा है। उस निर्णायक स्वरूप को ठीक तरह से हम समझ ले तो परिभाषा का एक-एक शब्द हमारी समझ मे ठीक तरह से आ सकता है।

यथाशक्ति सभी निर्णायक है ?

प्रत्येक आत्मा मे वह निर्णायक शक्ति रही हुई है। केवल मानव ही उस निर्णायक शक्ति को ले कर चल रहा हो ऐसी बात नही है। पशुओ के पास भी वह निर्णायक शक्ति है। पशुओ मे पचेन्द्री है सो तो है लेकिन जहां चार इन्द्रीय वाले प्राणी है, तीन इन्द्रियो वाले प्राणी है, दो इन्द्रियो वाले प्राणी है और एक इन्द्रिय वाले प्राणी है उनमे भी निर्णायक शक्ति तो है लेकिन उनके जो निर्णय करने के साधन (माध्यम) है वे विकसित नही है। जहा एकेन्द्रीयादि जीव है जब उनको क्षुधा लगती है तो वे भी भोजन के लिए निर्णय कर पाते है और भोजन ग्रहण करके अपने आप मे तृप्ति का अनुभव करते है। वनस्पति के अन्दर भी यही बात है। आप कहेंगे कि भोजन करने की निर्णायक शक्ति वनस्पति मे कैसे मानी जाय। वनस्पति का नाम इसलिए मैं ले रहा हूँ कि यह हर मानव के मस्तिष्क मे जल्दी आ सकती है। कुछ समय पहले जब कभी यह कहा जाता कि वनस्पति के अन्दर भी यह तत्त्व है जो कि भोजन का निर्णय करने वाला है जिसको हम आत्मा की सज्ञा दे सकते है तो कोई स्वीकार करने के लिए तैयार नही होता। वे कहते कि वनस्पति जो चलती फिरती नही है उसमे

जीव कैसे हो सकता है ? लेकिन जब वैज्ञानिक दृष्टिकोण कुछ पैना बना और आज यद्यपि विज्ञान चरम सीमा पर नही पहुँचा है फिर भी जितनी मात्रा मे विज्ञान का प्रदर्शन दुनिया के सामने व्यक्त हुआ उसमे मानव को कई तरह की उपलब्धिया हुई है उनमे वनस्पति मे जीवत्व सिद्धि की भी एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है और उससे यह सिद्ध किया गया है कि वनस्पति मे भी हमारे जैसी एक निर्णायक शक्ति रही हुई है। जगदीशचन्द्र वसु ने जिस समय वनस्पति में जीव सिद्धि का प्रयोग दर्शकों के सामने रखा वहा बडे-बडे दूरवीक्षणयंत्र रख दिये गये जैसा कि श्रवण करने को मिला कि एक व्यक्ति का ४० रुपया टिकट का रखा गया फिर भी इतने दर्शक थे कि सभी को स्थान नही मिल सका उस वक्त जगदीशचन्द्र वसु ने वनस्पति की प्रशसा की तो वनस्पति प्रफुल्लित और विकसित होती हुई दृष्टिगत हुई। आप सोचिये कि जैसे मनुष्य अपनी प्रशसा को सुनकर अपने अन्दर निर्णय करता है कि यह मेरी प्रशसा हो रही है, ओहो मैं ऐसा हूँ और झट से उसमे प्रफुल्लता आ जाती है वैसे ही वनस्पति के साथ जब सुन्दर शब्दो का प्रयोग हुआ तो वनस्पति के अन्दर प्रफुल्लता आई तो उसको देखकर आप अनुमान लगा सकते है कि उसके अन्दर हमारी तरह की निर्णायक शक्ति रही हुई है जिसने समझा कि मेरी तारीफ हो रही है, और जब दूसरे शब्दो मे उसकी निन्दा की गई तो वह कुमलाती हुई दिखाई दी। यह दोनो दृश्य जैसे विकसित मनुष्यो के अन्दर देखे जाते है उसी तरह से उसमे भी देखे गये। इससे यह परिभाषा सिद्ध हो गयी कि वनस्पति कहलाने वाली एकेन्द्रीय मे भी वह निर्णायक तत्त्व विद्यमान है लेकिन वह वनस्पति स्वय उस निर्णायक तत्त्व को समझने मे अक्षम है। उसका विकास सिर्फ एक शरीर तक ही है। आगे की इन्द्रियो का विकास नही है लेकिन जैसे ही वह आत्मा-निर्णायक तत्त्व वनस्पति को छोड करके कुछ विकास क्षेत्र मे आगे आती है और दो इन्द्रिय प्राप्त करती है तब कुछ उसमे और इसमे कुछ अन्तर आ जाता है। एक जिह्वा और बढ जाती है और वही आत्मा कालान्तर मे और विकास के क्षेत्र मे आगे बढती है तो अगले जन्म मे तीन इन्द्रियां प्राप्त कर सकती है। आप इस विकासवाद को आध्यात्मिक विज्ञानवाद के साथ समझेंगे तो यह विकासवाद आपको वस्तु स्थिति का सही निर्णय देने वाला होगा। यद्यपि दार्शनिक एव वैज्ञानिक क्षेत्र में भी विकासवाद का प्रयोग चला और उसमे डार्विन का विकासवाद मुख्य था किन्तु उसे विकासवाद को आधुनिक वैज्ञानिको ने कुछ कमजोर बना दिया और उसका उतना तथ्य वर्तमान वैज्ञानिको के मस्तिष्क मे अब नही

रहा है। लेकिन इस आध्यात्मिक विज्ञान के क्षेत्र में, इस विज्ञान की प्रक्रिया का ठीक तरह से विश्लेषण किया जाये तो इस निर्णायक शक्ति का विकास कैसे बनता है और साथ ही उसका परिणाम इस शरीर के विकास के साथ कैसे सम्बद्ध होता है यह बहुत ही शानदार विषय हर मानव के मस्तिष्क में आ सकता है। जब उसका अधिक विकास हुआ और कुछ साधन उपलब्ध हुए तो दूसरे जन्म में तीन इन्द्रिय शरीर जिह्वा और नासिका मिल गई। नासिका जिसको प्राप्त है जैसे चींटी, मकोड़े आदि वे भी अपनी निर्णायक शक्ति को अधिक नहीं समझते। वे उतना पूरा नहीं समझ पाते किन्तु उनकी घ्राण इन्द्रियां मानव की घ्राण इन्द्रियों से कुछ तीक्ष्ण बन जाती है।

यहां एक शक्कर का दाना पड़ा हुआ है, आप इस शक्कर के दाने के साथ नाक लगा दें तो आपको सुगन्ध स्पष्ट नहीं आयेगी लेकिन चींटी बिल में रह रही है उसकी नासिका इतनी तीव्र है कि बिल में से ही वह निर्णय करती है कि बाहर कोई सुगन्धित पदार्थ है और वह वहां से निकल कर के कभी इधर टक्कर खायेगी कभी उधर टक्कर खायेगी। क्योंकि उसके दृष्टि नहीं है, फिर भी शक्कर के दाने का जायका लेने के लिए पहुंच जायेगी। आप देखिये यह भी निर्णायक शक्ति तो है और वह निर्णायक शक्ति कुछ विकास की ओर है किन्तु इससे जब आत्मा विकास के प्रसंग पर और आगे बढ़ती है तो उसको अगले जन्म में चार इन्द्रियों का प्रसंग भी आ सकता है जिसमें तीन तो पूर्व वाली हैं और चौथे नेत्र आ सकते हैं। वे प्राणी मक्खी आदि नेत्र के माध्यम से सुख दुःख की स्थिति का वर्तमान जीवन के साथ अनुभव करते हैं लेकिन दीर्घकालीन निर्णायक शक्ति उनमें भी नहीं होती। जब तक पतंगा बल्ब को देखता है तो उसका निर्णय करता है कि यह तो बहुत ही आकर्षक तत्त्व है मुझे इसको पकड़ लेना चाहिए। इस भावना से पतंगा उस पर आघात करता है और उसका ताप लगने से वह नीचे गिर जाता है, उसको मूर्छा आ जाती है लेकिन जब भी उसकी मूर्छा टूटती है तब फिर उसी पर जाता है लेकिन उसमें यह निर्णय करने की क्षमता नहीं आई कि यह जो दिखने वाला प्रकाश सिद्ध है वह इसे भस्म करने वाला है तो मैं पुनः आघात न करूं, अगर करूंगा तो पुनः मूर्छा खाकर गिरूंगा। यह निर्णय करने की ताकत उसमें नहीं है क्योंकि वह निर्णायक शक्ति उसमें परिपूर्ण विकसित नहीं है इसलिए पुनः उस पर आघात करता है और फिर गिरता है, फिर आघात करता है

ग्रौर फिर गिरता है ग्रौर ऐसा करते-करते वह प्राणों की ग्राहुति दे देता है। लेकिन वही जीव जब विकास की दृष्टि से ग्रागे बढता है तो पांच इन्द्रिया प्राप्त हो जाती है उसमें कान विशेष ग्रा जाता है। पशु ग्रौर मानव की स्थिति ग्रा जाती है। यह विकास का क्रम जो इस ग्रात्मा के साथ चला उसमे निर्णायिक शक्ति भी चल रही है। इस बात को समझने की योग्यता विशेष कर मानव मे ही है। यदि ग्राज का मानव उस मूल तत्त्व को ढू ढना चाहे कि वह निर्णायिक शक्ति कौनसी है जो कि हमारे जीवन की परिभाषा के साथ लागू हो रही है तो वह उसको ढूंढ सकता है। यह साधन और योग्यता मानव के ग्रन्दर है ग्रवश्य है लेकिन मानव ग्राज ग्रपनी योग्यता को भुला कर के पतगा का साथी बन रहा है, यह कहां तक चल सकेगा। मेरा यह कथन ग्रधिकांश प्राणियों के लिए है। ग्रपवाद सर्वत्र हैं। आज का मानव क्या है ? किस के ऊपर ग्रपने जीवन को न्यौछावर कर रहा है ? क्या पतंगा जैसे रूप को देखकर मुग्ध बनता है ? उसी तरह से मानव किसी पिण्ड को देखकर मुग्ध तो नही बन रहा है ग्रौर उससे कितने ग्राघात लग रहे है ग्रौर कितनी मूर्छा आ रही है उसका कुछ भी ग्रवलोकन कर पा रहा है क्या ?

चल-चित्रों की धूम

बहुत ग्रच्छे विज्ञापन ग्रा रहे है। ग्रब उस सिनेमाघर में ग्रमुक चित्र ग्राया है जोअपूर्व है ग्रौर ऐसा अपूर्व है कि जो कभी नही देखा। ऐसी ग्रावाज जब कर्णगोचर हो तो किसका मन नही मचलेगा। ग्रधिकाश प्राणी तिल-मिलाने लगेगे कि ऐसा चित्र तो जरूर देखना है। कोई बिरला ग्रादमी ही ऐसा होगा जो कि इसका त्याग कर सकता हो। किन्तु जिसका मन ललचा गया है वह तो जायेगा सो जायेगा अपने बाल-बच्चो को भी साथ ले जायेगा, ग्रपनी पत्नी को भी साथ ले जायेगा। वहां क्या देखेगा ? क्या अपूर्व चीज है वहा ? अपूर्व चीज मानव के लिए देव की हो सकती है लेकिन वहां सिनेमा के अन्दर कोई ग्रपूर्व चीज नहीं है। है क्या ? ज्यादा से ज्यादा नायक-नायिकाग्रो के दृश्य ग्रौर उसमें किसी का सुन्दर रूप निखार रखा है ग्रौर उसी रूप के पतग बनकर वे देखने वाले व्यक्ति वहा पर पहुँच जाते है। वे ग्रपनी शक्ति को कितनी मात्रा में ग्रपव्यय के रूप मे बर्बाद कर देते है, कुछ भी नही सोच पाते। ग्रपने नेत्रो की जो महत्त्व-पूर्ण शक्ति है उसको नष्ट करने वे वहाँ ग्रॉखे फाड-फाड कर बैठ जाते है और सोचते हैं कि यह चित्र हमारे सामने से नही जाये ग्रौर उसके साथ

ही साथ मानसिक शक्ति भी प्रवाह के साथ बहती जाती है। उसमें वह चित्र के वे संस्कार आते है जिनमें मुग्ध बनकर व्यक्ति मूर्छित सा बन जाता है। इससे शारीरिक स्वास्थ्य को तो वह बर्बाद करता ही है पर आर्थिक दृष्टि से भी अपव्यय होता है। वहां से निकल कर जब वह घर पहुँचता होगा तो जो चिन्तन की शक्ति उसमें आनी चाहिये थी, उसके स्थान पर अपनी शक्ति की क्षीणता का और थकान का अनुभव करता होगा। यह मैं अनुमान से कह रहा हूँ। सही अनुभव तो आप देखने वाले बता सकते हैं। ऐसी स्थिति बनती है कि नहीं ?

आप देखिये यह भी एक तरह की मूर्च्छा है। फिर भी मानव नहीं समझ पाता कि यह मैं क्या कर रहा हूँ। मानव का कर्त्तव्य तो यह है कि यदि उसे अनुभव करना है, कुछ देखना ही है तो अपने जीवन का चित्र देखे। यह अपूर्व सिनेमा है। जीवन के अन्दर डुबकी लगाकर, मूल रूप में निर्णायक तत्त्व क्या है इसको देखने का प्रयत्न करे।

यदि उस ओर आपका ध्यान आकर्षित होगा तो आप अपने वर्तमान जीवन को प्रकाशपुञ्ज बनाकर सारे मानव समुदाय में अपूर्व उल्लास का दृश्य उपस्थित कर सकेंगे पर आज के मानव के सामने इस प्रकार की स्थिति बहुत कम है वह शब्द रूप, गन्ध रस और स्पर्श इन पांच इन्द्रियों सम्बन्धी विषयों में ही आसक्त हो, इनकी प्राप्ति को ही सब कुछ समझकर उनकी प्राप्ति में ही अपनी समस्त शक्ति का क्षय करके हतोत्साहित होकर मूर्च्छित बना वह प्राणी खाली हाथ चला जाता है। वह इस जीवन में कुछ भी नहीं समझ पाता।

अपने आपको समझिये

मैं आपको बार-बार इस दृष्टि से सम्बोधन कर रहा हूँ कि आपने अपनी निर्णायक शक्ति को ठीक तरह से समझने का प्रयास किया तो आप उस निर्णायक शक्ति का जो केन्द्र माध्यम है उसका सदुपयोग अवश्य कर पावेंगे।

तो मूल चीज लीजिये निर्णायक शक्ति का केन्द्र सब प्राणियों में रहा हुआ है। यह तो विशेष्य है। पर जो इसका विशेषण दिया है कि

सम्यक् निर्णायक

इसकी व्याख्या जिसके साथ जुड़ती है उस विषय को भी समझना है और इसका प्रसंग भी धीरे-धीरे सामने आ रहा है।

पर अभी फिलहाल एक तरुण की स्थिति का प्रसग जो आपके सामने आ रहा है वह अपनी तरुणाई को आज के तरुणो की तरह ही लेकर चल रहा था। पर उसकी तरुणाई और थी और आज के तरुणो की तरुणाई कुछ और है।

जिसने अपने निज गुण का महत्त्व समझा है वह उन गुणों के महत्त्व के पीछे आतमराम को ध्याता है। जानते हो आतमराम को ?

रमते योगिनो यस्मिन् स रामः

जिसमें योगी लोग रमण करे। अर्थात् योगी लोग योग साधना मे मन को बाह्य इन्द्रिय जन्य पौद्गलिक पदार्थो से हटाकर अन्दर के जीवन की तरफ मोडते है और अन्तर मे जो वह एक निर्णायक तत्त्व है उसमें रमण करने की कोशिश करते है। योग के भेदो मे और उसकी प्रक्रिया मे अन्तर हो सकता है, पर योग शब्द का अर्थ यही है तो निज गुण का कामी अपने आत्माराम मे रमण करता है।

यह कमलसेन नामक तरुण जब अपनी तरुण अवस्था मे पहुँचा तो उसके सारे अगो का विकास हुआ। जब तक अगों का विकास नही होता है तब तक इस शरीर का व्यवहार कुछ और होता है और जब तरुणाई मे व्यक्ति पहुँचता है तो अगो के विकास के साथ उसकी मानसिक क्रियाएं भी वदल जाती है और जीवन के अन्दर जो एक आधी और तूफान आता है उस तूफान और आधी से ओत-प्रोत उस तरुणाई पर काबू पाना सव लोगो के लिये सहज नही है। ऐसी स्थिति मे स्वय मे रही हुई निर्णायक शक्ति अगर सुपुप्तावस्था मे है, उसे किसी ने जागृत नही किया है तो वह तरुणाई की आँधी उस शरीर रूपी कार को कहाँ ले जाकर गिरा (ढकेल) देती है इसका भी पता नही लगता।

समाचार पत्रो मे आये दिन आप लोग भी पढते रहते है और कभी-कभी मुझे भी सुनने को मिलता है कि आज के तरुण और तरुणिया इस जीवन रूपी कार को कहा ले जाकर पटक रहे है। वे कैसी-कैसी औषधियो का और नशीली वस्तुओ का सेवन करते है जिनके नाम भी सम्भवत: आप कइयों ने नही सुने होंगे और उन परिस्थितियो मे पडकर वे अपने जीवन को किधर ले जा रहे है इसकी कल्पना करने मात्र से रोमाच हो जाता है। सरक्षक माता-पिता तो यह समझते है कि हमारे वच्चे-वच्चिया कालेजों में अध्ययन करने जा रहे है वे वहा कुछ ज्ञान-विज्ञान की वाते सीखकर

अपने जीवन का निर्माण करेंगे पर वे आज उल्टी दिशा मे बहे जा रहे है। माता-पिता उनके बारे मे बहुत थोडी जानकारी रखते होंगे, वे शायद महसूस भी नही करते कि हमे इस विषय मे आगे क्या करना है। वे ११ से लेकर ५ बजे तक कालेजो मे पढते हैं। साधारण घरो के बच्चो मे तो शायद यह प्रवृत्ति नही होगी, पर जो अमीर घरो के बच्चे है वे क्या क्या वहाँ करते हैं। तो आज यह सब क्या चल रहा है। इस जीवन रूपी कार को किधर धक्का दिया जा रहा है वह बिना ब्रेक की कार किसी खड्डे मे तो नही गिर जावेगी। ड्राइवर के हाथो मे से ब्रेक की स्थिति कमजोर बन जाती है तो उसकी दशा क्या बन सकती है इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है।

उसके जीवन के साथ भी सभी तरह की जीवन सामग्री थी। अपने समय का राजकुमार था। पर उस तरुणाई मे आज की तरह के तूफान का प्रसंग नही आया। वह विकारो मे जीवन पर कन्ट्रोल रखकर निर्णायक शक्ति की ओर झुक रहा है। जब कभी इस राजकुमार को शादी विवाह का प्रसंग आता तो यह कहता कि यह आप क्या कर रहे हैं। क्या इस मनुष्य जीवन को किसी एकाध व्यक्ति के साथ सम्बन्धित करके समाप्त करना है? मैं अपने जीवन की इतनी कम कीमत नही करता। मैं इसका बहुत बडा मूल्यांकन कर रहा हूँ। इसलिये आप मेरे लिये इसकी ताकीद न करे कि मेरा किसी कन्या के साथ विवाह हो। यह चर्चा ही न करे। पुत्र की बात को सुनकर पिता और माता का चित्त प्रसन्न नही होता था, ऐसी बात नही थी, वे भी प्रसन्न होते थे, क्योकि उन दोनो का जीवन भी धार्मिक था और माता ने तो प्रारम्भिक अवस्था से ही अपने पुत्र मे संस्कार ही ऐसे डालने की कोशिश की थी।

जिन माता-पिताओ के धार्मिक संस्कार होते है वे पुत्र की ऐसी बातो को सुनकर प्रसन्नता प्रकट करेंगे और जिन माता-पिताओ के धार्मिक संस्कार नही होंगे, वे उदास होंगे और कभी-कभी तो कहेंगे कि मेरा बच्चा इस प्रकार की बाते करने लग गया। कदाचित् संतो के पास पहुँचकर फिर ऐसी बाते कर दे तो फिर वे संतो के पास भी जाने दे या नही। फिर अपने पुत्र को कहेंगे कि नही महाराज के पास नही जाओ नही तो महाराज जी तुमको साधु बना देंगे। इस प्रकार की बाते बन जाती हैं लेकिन सोचना यह है कि इस प्रकार से यदि साधु बनने लगे तो शायद सब के सब साधु बन जावे। किन्तु जिसकी पुण्यवानी होती है वही साधु बनता है, हर एक नही।

बन्धुओ, महारानी और महाराजा प्रसन्नता का अनुभव करते थे और उस बच्चे को देखकर मन में सुन्दर कल्पना करते थे। उस बच्चे का भी जीवन परम शुद्ध था और वह कहता था कि माता-पिता मेरा जीवन शुद्ध और पवित्र कैसे बने आदि अनेक प्रकार की बाते करके माता के उल्हास को बढाता रहता था।

उस तरुणाई के अन्दर शात रहना और इन्द्रियों का दमन करना यह कोई सहज बात नही है। चमचमाते हुए लोहे के गोले को हाथ में पकडना—जैसा दुश्वार है उसी तरह से तरुणाई की उस आग की स्थिति में इन्द्रियो के ऊपर काबू रखना भी उतना ही कठिन कार्य है। लेकिन यह सद्भाग्य वाले मनुष्य के जीवन में कभी-कभी बना करता है वैसी स्थिति मे गम्भीरता और अंकुश के अन्दर उनका जीवन था और उनकी दृष्टि नीची का तात्पर्य यह है कि उसी दृष्टि का उपयोग हमेशा अपना रास्ता देखने में था न कि इधर-उधर पतगो की तरह रूप देखने में। जो व्यक्ति अपनी दृष्टि पर काबू पा सकता है वह धीरे-धीरे दूसरी इन्द्रियो पर भी काबू पा सकता है और जब बोलने का प्रसंग आता है तो कोई असत्य बात नही करता। आजकल तो बिना मतलब का असत्य कितना बोला जाता है और वह भी कालेज के प्रवाह मे बहने वाले कई तरुणो का ऐसा किस्सा सुनने को मिलता है कि कहा-कहा तक वे चार सौ बीसी सीख जाते है। लेकिन वह सत्यवचन बोलता। उसका जीवन परोपकार प्रिय हुआ बना था, दान देने की भावना थी और साथ ही साथ वह शूर वीरता भी उसके जीवन की विशेषता थी। इस प्रकार की उसकी स्थिति को देखकर माता-पिता के मन मे न मालूम कैसे विचार आते होगे और कैसी-कैसी कल्पनाएं चलती होगी यह माता पिता ही सोच सकते है। आज के माता-पिता अपनी सन्तान के लिए कल्पना करने जायेगे तो वे दुखी हो या आनन्द का अनुभव करेगे इसे आप ही जाने। ऐसे विरले ही माता-पिता होगे जो अपने पुत्र की ऐसी स्थिति को देखकर अपने जीवन मे कुछ आनन्द का अनुभव करते हों और दुखित नही होते हों।

चिन्तन की कुछ बातें

डॉ० नन्दलाल जी बोर्दिया अभी शायद इन्दौर होंगे, पहले दिल्ली मे थे, टी० बी० के स्पेशलिस्ट थे उनके इकलौते पुत्र श्री अशोक कुमार जिन्होने आधुनिक डाक्टरी की शिक्षा ग्रहण की और कालेज के अन्दर जैसे कि संस्कार उनको मिल रहे थे वे भी संस्कार उन्होंने लिए और तरुणाई के

अदर पहुँचे, लेकिन उनकी वृत्ति बाह्य विषयो की तरफ नही होकर आन्तरिक विषयो की तरफ मुड गयी और तरुणाई के अन्दर आत्मचिन्तन और ध्यान लीन करने लगे। उनको ऐसा सहवास मिला उसमे भी वे अपने आपको अखण्ड बनाकर चलने लगे। जब मेरा इन्दौर चातुर्मास हुआ तो वे वहा पर आए और कुछ बाते की और जब मै रायपुर पहुँचा तो वहा तो उन्होने बहुत सारे प्रश्न मेरे सम्मुख प्रस्तुत किये और मानसिक चिन्तन मे क्या-क्या परिस्थितिया आती है, तरुणाई की स्थिति मे भी इन्सान के साथ क्या क्या बीतती है, उसके साथ ही साथ जितने ढग के फ्राइड के सिद्धान्त है और शिक्षित लोगो के अन्दर क्या-क्या भावनाये पैदा हो जाती हैं उन सब बातो को उन्होने मुझ से पूछा और उनका समाधान लिया। यह भावना डाक्टर साहब के सामने भी आई और उनकी पत्नी के सामने भी आई लेकिन डाक्टर साहब ने कोई रन्ज नही किया और उनकी पत्नी ने भी कोई हाय आहि नही मचाई।

आज के युग मे यह विषय चिन्तनीय है। नही तो जिनके एक ही पुत्र हो और वह ऐसी बाते करे तो न मालूम माता रो रो कर घर मे कैसा वातावरण बना दे। लेकिन वह माता जो कि डाक्टर साहब की पत्नी थी दुर्ग के अन्दर जब आये और बीच मे भी मिले थे उनमे प्रसन्नता ही देखी। प्राय. साल मे एक चक्कर इधर उधर लग ही जाता है। डाक्टर साहब दुर्ग मे मुझे कहने लगे कि महाराज अशोक कुमार जा रहा है वहा मुझे पूर्ण सन्तोष नही है किन्तु यदि वह आपके पास दीक्षा ले तो मैं इसके लिए तैयार हूँ। यह अशोक कुमार कुछ साधुचर्या के नियमो का जितना चाहिए उतना पालन करने मे सक्षम नही होने की वजह से अभी उसकी स्थिति वैसी ही चल रही है। वह डाक्टर भी बन गया और सरकार से तनख्वाह भी पर्याप्त मात्रा मे मिलती है लेकिन वह अपनी आवश्यकता के अनुसार काम मे लेता और बाकी पैसा गरीबो मे बाट देता। यह वहा का उसका जीवन है। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि जैसे मैं कमलसेन के माता-पिता का जिक्र कर रहा हूँ, आप सोचेगे कि यह महाभारत के समय की पुरानी बात है लेकिन आज के युग मे भी ऐसी माताएँ नमूने के तौर पर हैं। इस दौर मे भी आपको अपने जीवन का थोड़ा अवलोकन करना है और इसी जीवन का अवलोकन करने के लिए जीवन की परिभाषा आपके सामने रख रहा हूँ। लेकिन उस परिभाषा को समझने के लिए ध्यान दूर पारलौकिक बातो पर। तमाम समस्याएँ जो आज हमारे सामने है सांसारिक जीवन

सम्बन्धी, राष्ट्रीय चरित्रहीनता की समस्यायें और अन्य समस्यायें ये सब की सब धीरे-धीरे स्वतः ही समाप्त हो जायेगी और इस प्रकार मूल को नही पकडा गया और टहनी पत्तियो की तरफ चले गये तो मूल समस्या और बढती जायेगी, जिसका मूल हाथ में नही आयेगा फिर चाहे कोई भी उपाय करे कुछ नही होने वाला है।

वही डाक्टर कुशल है जो रोग का पहले निदान करता है कि इसको कौनसा रोग हैं, और किस कारण से है ? जो रोग का निदान ठीक करके फिर उपचार करता है वह जल्दी सफल होता है और यदि रोग का निदान न करके केवल दवाइयों का प्रयोग करता रहता है। वहां उस मनुष्य के जीवन की प्रयोगशाला बना दी जाती है तो डाक्टर जितना कामयाब होना चाहिए नही हो पाता।

बन्धुओ, आप अपने जीवन की डाक्टरी सीख जावे ... का मूल तत्त्व क्या है, सारे रोगो का निदान क्या है इसे ढूंढ ... स अन्वेषण मे सफल होगये तो जीवन का विकास ... रहेगा।

इस गरमी की मौसम मे भी बहनों की शक्ति ... है। यह प्रभू महावीर के तप का प्रभाव है। नही तो उपवास करना भी दुश्वार है। एक समय भी भोज... तो आदमी ठण्डा हो जाता है। दिन मे दो तीन ... स्थिति मे आज जो बहन नौ की तपस्या पच्चख रही ... ही बनता है। और भी भाई बहन तपस्या कर ... साहस और इस प्रकार की प्रवृत्ति एक दृष्टि से ... साथ जीवन विकास की प्रेरणा भी दे रही ... अनुकरण करते हुए अपने-अप... आपके जीवन मे भी चार चाँद ... बना सकते हैं। इस समय इतना ही ...

॥

२-८-७२
लाल भवन

सम्बन्धी, राष्ट्रीय चरित्रहीनता की समस्याये और अन्य समस्यायें ये सब की सब धीरे-धीरे स्वतः ही समाप्त हो जायेगी और इस प्रकार मूल को नही पकडा गया और टहनी पत्तियो की तरफ चले गये तो मूल समस्या और बढ़ती जायेगी, जिसका मूल हाथ मे नही आयेगा फिर चाहे कोई भी उपाय करे कुछ नही होने वाला है।

वही डाक्टर कुशल है जो रोग का पहले निदान करता है कि इसको कौनसा रोग हैं, और किस कारण से है ? जो रोग का निदान ठीक करके फिर उपचार करता है वह जल्दी सफल होता है और यदि रोग का निदान न करके केवल दवाइयों का प्रयोग करता रहता है। वहां उस मनुष्य के जीवन की प्रयोगशाला बना दी जाती है तो डाक्टर जितना कामयाब होना चाहिए नही हो पाता।

बन्धुओ, आप अपने जीवन की डाक्टरी सीख जावे और जीवन का मूल तत्त्व क्या है, सारे रोगों का निदान क्या है इसे ढूंढना चाहे और इस अन्वेषण मे सफल होगये तो जीवन का विकास हर हालत मे होकर रहेगा।

इस गरमी की मौसम मे भी बहनों की शक्ति तप की ओर लग रही है। यह प्रभू महावीर के तप का प्रभाव है। नही तो आज के युग मे तो उपवास करना भी दुश्वार है। एक समय भी भोजन के लिए कहा जाता है तो आदमी ठण्डा हो जाता है। दिन मे दो तीन बार खाया जाता है। ऐसी स्थिति मे आज जो बहन नौ की तपस्या पच्ख रही हैं तो इससे तो रूपक और ही बनता है। और भी भाई बहन तपस्या कर रहे है। इन बहनो का यह साहस और इस प्रकार की प्रवृत्ति एक दृष्टि से प्रशसनीय है और साथ ही साथ जीवन विकास की प्रेरणा भी दे रही है। यदि आप भी इनका अनुकरण करते हुए अपने-अपने जीवन को माजने का प्रयास करेगे तो आपके जीवन मे भी चार चाँद लग सकते है। आप अपना जीवन सफल बना सकते हैं। इस समय इतना ही कहकर विश्राम लेता हूं।

॥ इति ॥

२-८-७२
लाल भवन



सम्बन्धी, राष्ट्रीय चरित्रहीनता की समस्यायें और अन्य समस्यायें ये सब की सब धीरे-धीरे स्वतः ही समाप्त हो जायेगी और इस प्रकार मूल को नही पकडा गया और टहनी पत्तियो की तरफ चले गये तो मूल समस्या और बढती जायेगी, जिसका मूल हाथ मे नही आयेगा फिर चाहे कोई भी उपाय करे कुछ नही होने वाला है।

वही डाक्टर कुशल है जो रोग का पहले निदान करता है कि इसको कौनसा रोग हैं, और किस कारण से है ? जो रोग का निदान ठीक करके फिर उपचार करता है वह जल्दी सफल होता है और यदि रोग का निदान न करके केवल दवाइयों का प्रयोग करता रहता है। वहा उस मनुष्य के जीवन की प्रयोगशाला बना दी जाती है तो डाक्टर जितना कामयाब होना चाहिए नही हो पाता।

बन्धुओ, आप अपने जीवन की डाक्टरी सीख जावे और जीवन का मूल तत्त्व क्या है, सारे रोगो का निदान क्या है इसे ढूंढना चाहे और इस अन्वेषण में सफल होगये तो जीवन का विकास हर हालत मे होकर रहेगा।

इस गरमी की मौसम मे भी बहनों की शक्ति तप की ओर लग रही है। यह प्रभू महावीर के तप का प्रभाव है। नही तो आज के युग मे तो उपवास करना भी दुश्वार है। एक समय भी भोजन के लिए कहा जाता है तो आदमी ठण्डा हो जाता है। दिन मे दो तीन बार खाया जाता है। ऐसी स्थिति मे आज जो बहन नौ की तपस्या पच्चख रही है तो इससे तो रूपक और ही बनता है। और भी भाई बहन तपस्या कर रहे है। इन बहनो का यह साहस और इस प्रकार की प्रवृत्ति एक दृष्टि से प्रशसनीय है और साथ ही साथ जीवन विकास की प्रेरणा भी दे रही है। यदि आप भी इनका अनुकरण करते हुए अपने-अपने जीवन को माजने का प्रयास करेगे तो आपके जीवन में भी चार चाँद लग सकते है। आप अपना जीवन सफल बना सकते हैं। इस समय इतना ही कहकर विश्राम लेता हूँ।

॥ इति ॥

२-८-७२
लाल भवन



सम्बन्धी, राष्ट्रीय चरित्रहीनता की समस्यायें और अन्य सम
सब की सब धीरे-धीरे स्वतः ही समाप्त हो जायेगी और इस प्रश्न
को नही पकडा गया और टहनी पत्तियो की तरफ चले गये तो मूल
और बढती जायेगी, जिसका मूल हाथ मे नही आयेगा फिर चाहे
उपाय करे कुछ नही होने वाला है।

वही डाक्टर कुशल है जो रोग का पहले निदान करता है
कौनसा रोग हैं, और किस कारण से है ? जो रोग का निदान ठी
फिर उपचार करता है वह जल्दी सफल होता है और यदि रोग
न करके केवल दवाइयो का प्रयोग करता रहता है। वहां उस
जीवन की प्रयोगशाला बना दी जाती है तो डाक्टर जितना काम
चाहिए नही हो पाता।

बन्धुओ, आप अपने जीवन की डाक्टरी सीख जावे और
मूल तत्त्व क्या है, सारे रोगो का निदान क्या है इसे ढूंढना चा
अन्वेषण मे सफल होगये तो जीवन का विकास हर हाल
रहेगा।

इस गरमी की मौसम में भी वहनो की शक्ति तप की ओ
है। यह प्रभू महावीर के तप का प्रभाव है। नही तो आज के
उपवास करना भी दुश्वार है। एक समय भी भोजन के लिए
तो आदमी ठण्डा हो जाता है। दिन में दो तीन बार खाया ज
स्थिति मे आज जो बहन नौ की तपस्या पच्ख रही हैं तो इससे
ही बनता है। और भी भाई वहन तपस्या कर रहे हैं। इन
साहस और इस प्रकार की प्रवृत्ति एक दृष्टि से प्रशसनीय है
साथ जीवन विकास की प्रेरणा भी दे रही है। यदि
अनुकरण करते हुए अपने-अपने जीवन को माजने का
आपके जीवन मे भी चार चाँद लग सकते है। आप अ
बना सकते हैं। इस समय इतना ही कहकर विश्राम लेता हूँ

॥ इति ॥

२-८-७२
लाल भवन



तरह खोज के प्रवाह में बहता गया और बहते बहते आज दुनिया के सामने कुछ विचित्र से दृश्य उपस्थित कर दिये। पानी जिधर जाता है उधर वही अपना रास्ता बना लेता है लेकिन उसकी गति उधर ही ज्यादा होती है जिधर कि उसको सुगमता से जाने का मार्ग मिलता हो। बडी चट्टान आती है तो वह रुकता जरूर है लेकिन रुक कर भी चट्टान को गीली करके मार्ग ढूढ लेता है। अमुक तरफ चट्टान पोली है तो आगे मार्ग बना कर गति कर लेता है।

मनुष्य आज पानी के प्रवाह की तरह बढ रहा है, उसे जिधर मार्ग मिला वह खोज के मार्ग को सुगम बनाता गया और बढते बढ़ते न जाने वह कहा से कहा तक पहुँच गया। आदियुग के मनुष्य, शास्त्रीय दृष्टि से जुगलिया मनुष्यो मे और आज के मनुष्य मे बहुत गहरा अन्तर है। क्योकि आदियुग का मनुष्य आग के स्वरूप को नही समझता था, जब आग का विकास हुआ तो वह आश्चर्य करने लगा। किन्तु आज का मानव उन लघुतम उपलब्धियो से आश्चर्य नही करता है। आज के मानव की तीव्र रफ्तार से इस ओर गति हो रही है। विज्ञान मे दौड लग रही है, आगे बढने की कोशिश हो रही है। फिर भी वह सुगन्ध के गहनतम रहस्यो का पता नही कर पा रहा है। उस का कारण है कि जिस विज्ञान की धारा को लेकर चला जा रहा है—वह पूर्ण सही विज्ञान नही है। वास्तविक ज्ञान और विज्ञान जिससे गूढतम रहस्यो को जाना जाए, अरहनाथ किवा वीतराग सिद्धान्तों मे ही उपलब्ध हो सकता है। अरहनाथ विमल विज्ञान विलासी थे, उन्हे सम्पूर्ण गूढ रहस्यो का ज्ञान था किन्तु वे आज के वैज्ञानिक की तरह से देखने की कोशिश नही करते हैं। आज का वैज्ञानिक यन्त्रों के द्वारा देखने का प्रयास करता है। आज के इस मशीनरी युग में अपोलो, रोकेट आदि दूर दूर तक भेज कर भी अनुमान ही लेकर चलता है, लेकिन भगवान अरहनाथ ने इन साधनो का कुछ भी प्रयोग नही किया, उन्होंने अपनी साधनो मे पुनर्जन्म की पुन्यवानी से जो सहज साधन उपलब्ध हुए उनको ही यथास्थान प्रयोग किया।

कौन से साधन उपलब्ध हुए ? मनुष्य का तन मनुष्य शरीर भी अपने आप में एक बहुत बडा वैज्ञानिक साधन है। मनुष्य शरीर के साथ पाच इन्द्रिया और मन है। ये साधन भगवान को उपलब्ध थे, वे इन साधनो को जितना चाहिये उतना उपयोग विमल विज्ञान को प्राप्ति मे करते थे। प्रारम्भ मे साधना क्षेत्र मे राज्य और परिवार को छोड कर जंगल में चले

भटकना नही पड़ेगा। पहाड की चोटियों पर और हवाईजहाज मे उड कर अमेरिका और इ ग्लैन्ड भी नही जाना पड़ेगा। यहां बैठे बैठे ही विमल विज्ञान को प्राप्त किया जा सकेगा लेकिन अभी इस वर्तमान काल मे तो ऐसा विज्ञान प्राप्त नही कर सकते। अवधिज्ञान प्राप्त कर सकते है, उसका विच्छेद नही हुआ है। यदि यह ज्ञान भी प्राप्त कर ले तो रूपी पदार्थों को तो देख ही सकते है।

विमल विलासी बनना है, अरहनाथ के चरणो मे पहुँचना है और अन्तः की स्थिति से विमल विज्ञान जिसे कहा जा रहा है उसको ढूढ निकालना है इसलिये मैं आपके सामने जीवन के प्रश्न को रख रहा हूँ और उसको हल करने के लिये कुछ दिनो से व्याख्या कर रहा हूँ।

जीवन कहा है ? जीवन क्या है? आपके सामने निर्णायक स्थिति का वर्णन किया। जो निर्णायक है और समता मय है वही जीवन है, वह जीवन की परिभाषा के साथ जुडा हुआ है। निर्णायक शक्ति प्रत्येक प्राणी मे है। यह बात अलग है कि किसी मे कम और किसी मे अधिक। निर्णायक के साथ विशेषण जुडा हुआ है। 'सम्यक् निर्णायकम्'। सम्यक् का दूसरा अर्थ है मल रहित। स्फटिक की तरह स्वच्छ। सम्यक् यह निर्णायक शब्द का विशेषण है और वह सस्कारित जीवन की परिभाषा मे जुडा हुआ है अतः हमे सस्कारित जीवन को समझना है।

उसको स्पष्ट करने के लिये यह सम्यक् विशेषण लगाया गया है। जिसके साथ यह विशेषण लग जाता हैं वह मल दोष से रहित हो जाता है। सैद्धान्तिक अथवा दार्शनिक दृष्टि से जिस "ज्ञान' शब्द के साथ सम्यग् विशेषण लग जाता है वह ज्ञान सद्ज्ञान अथवा सम्यग् सुन्दर ज्ञान कहलाता है और जिसके साथ सम्यग् विशेषण नही उसे मिथ्या ज्ञान कहा जाता है। चाहे वह मति-श्रुत या अवधि ही क्यो न हो उक्त विशेषण के अभाव में उसे अज्ञान किंवा मिथ्या ज्ञान ही कहा जाएगा।

विपरीत या मिथ्या का तात्पर्य यह नही है कि मनुष्य इस ज्ञान में उलटा ही देखे। मनुष्य के पैर और हाथ जैसे हैं वैसा नही देखे, सिर नीचे की ओर देखे और पैर ऊपर की ओर देखे। इस विभग-मिथ्या अवधि ज्ञान का तात्पर्य यह है कि जो तत्त्व जिस रूप मे है उस तत्त्व को उस रूप मे न देख उसके कारण स्वरूप तथा सम्बन्ध आदि को विपरीत रूप से देखना। उदाहरण के लिए आत्मा को ही ले, मिथ्या ज्ञानी आत्मा को एकान्तिक

और दूसरी उसी जाति की लकडी का यह पाटा बना हुआ है, इस लकडी को आप इस स्थिति मे देख रहे है और वह लकडी उस स्थिति में पडी हुई है। दोनो की स्थिति में कितना अन्तर है, यह अन्तर आप देख रहे है। एक कुछ काम मे आने वाला नही है लेकिन उसका परिमार्जन हो जाये तो वह मनुष्य के काम मे आने वाली वन जाय। इसी तरह से निर्णायक शक्ति का प्रसंग है। एक निर्णायक शक्ति शुष्क काष्ठ के समान है। तात्पर्य यह है कि जो रात दिन सुख और ऐश्वर्य मे मशगूल रहे, भव्य भवनो के अन्दर रहे और उसे ही सब कुछ समझने लगे कि इससे बढकर और कोई सुख नही है, यह जीवन मे नही मिला तो जीवन क्या ? जव उसको मोक्ष की वात कहते है, परमात्मा की बात कहते है। वह यह जानना चाहता है कि मोक्ष मे कैसा खाना मिलता है, कैसे मकान है, रहने की स्थिति क्या है, क्या वहा पर सुनने को मिलता है, क्या देखने को मिलता है। भद्र पुरुप ये प्रश्न करते है कि वहा खाने को क्या मिलता है, देखने को क्या मिलता है ? और क्या वहा पर रहने आदि के लिए भव्य भवन है। यदि ऐसा है, तब तो मोक्ष अच्छा है, यह नही है तो वह मोक्ष नही है। भद्रिक व्यक्ति इस प्रकार सोचते है तो मैं कल्पना करता हूँ कि इनको कैसे इनके जीवन का लक्ष्य समझाया जाये ? मोक्षकी परिभापा वे इसमे मानते हैं कि इन पाच इन्द्रियो का उपयोग, उपभोग के लिए वहा कितने विपय उपलब्ध है, कितना उसका उपभोग कर सकते है। यह दृष्टिकोण जीवन का वन गया है। इससे ऊपर उठकर त्याग और तपस्या थोडी सी वढ गई तो मेरा सुख छीन जायगा, मेरी मृत्यु हो जायगी, मैं इन सुखो से वचित रह जाऊगा। किन्तु सम्यग् निर्णायक शक्ति का यह निर्णय नही है। सम्यक् निर्णायक से रहित शक्ति का यह निर्णय है। मनुष्य जीवन के सही स्वरूप को समझने के लिए सम्यक् निर्णायक स्थिति का अवलोकन करे, सम्यक् शब्द के महत्त्व का प्रतिपादन करके यह वतलाया गया है कि सम्यक् धरातल की स्थिति नही है तो व्यक्ति अन्धकार मे है। व्यक्ति अपने जीवन मे तपश्चर्या करके कृश काय हो जाये, आराधना मे शरीर को सुखाने वाला तपस्वी अपने सारे जीवन के अन्दर यदि सम्यक् विशेपण से रहित है, तो उसके जीवन मे वह निर्णायक शक्ति नही है। उसकी इतनी कठोर साधना वाछित फल देने वाली नही होगी उसका ज्ञान अज्ञान रूप माना जायगा और यदि वह सम्यग् विशेपण से युक्त है तो उसकी साधना गुण युक्त होगी। उसका मति ज्ञान और श्रुत ज्ञान विमल रूप मे होगा। यहा सम्यक् निर्णायक शब्द के साथ सम्बन्ध जोडने की दृष्टि से मैं बता रहा हूँ कि यदि सही संस्कारित जीवन को लेना चाहे तो

अलौकिक रूप सामने आएगा। जम्बू कुमार का जीवन आप सुनते हैं जिसकी ८ रमणिया प्रथम रात्रि के समय विवाह कर के पलग के चारों ओर खडी है और उस पलग पर एक तरुण बैठा है। ये ८ तरुणिया भिन्न-भिन्न तर्कों के साथ, उस तरुण को समझाने का प्रयास कर रही है, वे शृंगार रस से परिपूर्ण थी, पाचो इन्द्रियो को उल्लसित करने वाला शृ गार उन्होंने कर रखा था और ऐसे-ऐसे प्रसग उपस्थित कर रही थी जो जीवन को लुभाने वाले होते है। परन्तु उनका उस तरुण पर जरा भी असर नही हुआ। जैसे स्फटिक मणि के पास कोई वस्त्र रखा जाये, स्फटिक मणि पर भले ही उसकी परछाया पड जाये परन्तु मणि के अन्दर उसके रग का असर नही होता है वैसे ही जम्बू कुमार का जीवन मणि के समान निर्मल और पवित्र बन गया था वह सम्यक् निर्णयक शक्ति को लेकर चल रहा था। अत शृ गारिक रसो के प्रदर्शन का उस पर कोई असर नही हुआ। आप यह सोचेगे कि यह बात कुछ अधिक पुरानी हो गई है। आप अपनी पैनी दृष्टि से इसका अवलोकन करेगे तो आज के युग मे भी कई व्यक्ति ऐसे मिल सकते हैं। जो भोग की साधना सामग्री के उपलब्ध होते हुए भी उसका परित्याग करते है। आप जिन सन्तो को अपने समक्ष देख रहे हैं ये वर्तमान के उदाहरण है ये भी प्राप्त या प्राप्त होने वाली सामग्री का परित्याग करके आए है। इसी संदर्भ मे मैं एक तरुण कमल सेन की बात कह रहा हूँ। उसकी स्थिति किस तरह से सामने आ रही है—

वनस्पति और हमारा जीवन

कमलसेन राजकुमार का यह प्रसंग आ रहा है। किंसुक बगीचे मे वृक्षो की झुरमूट, और बसन्त ऋतु जहा अपना सर्वस्व उडेलती हुई खिलकर बगीचे की शोभा बढा रही थी, ऐसा बगीचा हर व्यक्ति के मन को लुभायमान करने वाला होता है। उस बगीचे मे झूने लगे हुए हैं जहा व्यक्ति पहुँच-पहुंच कर उस बगीचे की शोभा को द्विगुणित कर रहे थे।

यह वर्णन कथा में किस प्रकार आया है। अधिकाश शास्त्रो मे मनुष्य के जीवन का जहाँ सम्बन्ध है वहाँ बगीचो की शोभा का वर्णन आता है। प्रायः सभी शास्त्रो मे यह वर्णन मिलता है। कथाओ मे तो है ही। उत्तराध्ययन सूत्र में जहाँ अनाथी मुनि का वर्णन आया है वहाँ बगीचे का भी वर्णन आया है। जहाँ वैराग्य भावना का दिग्दर्शन कराया गया है वहाँ

काटना। यह कर्मादान महापाप की श्रेणी में माना गया है। दिखता छोटा है। जगल कट गये, ओक्सिजन हवा दूर-दूर तक समाप्त हो जाती है और उसके कारण मनुष्यो मे रोगो की उत्पत्ति होकर संहार का अवसर उपलब्ध हो जाता है। इस वन कम्मे का भगवान् ने तीन करण तीन योग से त्याग वतलाया है। इसका मानव जीवन के साथ गहरा सम्वन्ध है क्योकि यदि सारे वन कट गये तो मानव का इस धरातल पर जीवन सुरक्षित नही रह सकता। इसलिये इसको पन्द्रह कर्मादान मे लिया गया है और वनस्पति के सहार को इस दृष्टि से महापाप बताया है।

मैं आपके सामने बता रहा हूँ कि प्राचीन काल मे राजा महाराजाओ के ये बगीचे होते थे जिनका वर्णन शास्त्रों मे किया गया है। ये मनुष्य के जीवन के साथ जुडे हुए है तो उस बगीचे में भो भूले लगे हुए थे जो उसकी शोभा बढा रहे थे। कमल सेन के मित्र भी कहने लगे, 'प्रिय मित्र, बसन्त के दिन है। एक शान्त भवन मे कैसे बैठे हो। वगीचे मे चल कर मनोहर दृश्यो का आनन्द लो और जीवन को विकसित करो। साथी लोग प्रायः ससार के विषयो मे रमण करने वाले थे इसलिये उन सब लोगो ने उसी ढग से प्रलोभन दिये लेकिन कमलसेन अपने निज गुणो का कामी था। उसने जीवन का सम्यक् निर्णय कर लिया था इसलिये वह सोचता है कि दुनिया की बसत ऋतु आती रहती है, मुझे तो जीवन की वसत ऋतु को प्राप्त करना है। वह आयेगी तभी मैं अलौकिक आनन्द को प्राप्त कर पाऊंगा और जीवन का निर्माण कर पाऊगा। इस रूप मे वह सोच रहा है लेकिन साथी लोग उसको छोडने वाले नही थे। मनुष्य जिन आदमियो के साथ रहता है उनका असर उस पर कभी किसी न किसी रूप मे पड बिना नही रहता है। जो वलवान आत्मायें हैं उनके स्वच्छ जीवन पर उसका कोई असर नही होता है। कमलसेन के साथी पाच इन्द्रियो के विपयो पर जोर दे रहे थे और बगीचे मे अनेक साधन रखे हुए थे। साथी आग्रह करने लगे। वह सायियो के आग्रह को नही टाल सका। अपने सायियो के साथ-साथ वह भी उस बाग मे पहुंचा जिसके अन्दर काम का प्रदर्शन फैला हुआ था। सव तरह की भोग्य सामग्री वहा पर उपलब्ध थी। अगर सहसा कोई निर्विकारी व्यक्ति भी वहाँ पहुच जाये तो उसमे भी काम विकार उत्पन्न हो जाये, वह भी उन भावो मे वह सकता है, ऐसा रमणीय दृश्य वहाँ पर था। वहा यह कमलसेन राजकुमार पहुचा लेकिन वह इन सव दृश्यो को तटस्थ भाव से देखता रहा। यह पुद्गलो का स्वभाव है। यह कभी अच्छा वनता है, कभी वुरा वनता है, कभी अधिक वढ़ जाता है,

समाजवाद का शुद्ध रूप

प्रार्थना

(४) मल्लि जिन बाल ब्रह्मचारी,
कुम्भ पिता परभावती
मइया तिनकी कुमारी ॥ मल्लि जिन० ॥
मा नी कूख कन्दरा,
माहि उपना अवतारी ।
मालती कुसुम मालानी वाछा,
जननी उर धारी ॥ मल्लि जिन० ॥ १ ॥

बन्धुओ,

आज मल्लिनाथ भगवान् की प्रार्थना का प्रसंग है। विनयचन्द चौबीसी की प्रार्थनाएं, एक एक करके कुछ समय से आ रही है। प्रार्थना के अन्दर प्रभु के नाम का परिवर्तन है, और साथ ही साथ प्रार्थना की कड़ियो का भी। लेकिन आज का नाम कुछ आश्चर्यजनक है। जहां इतने समय तक तीर्थंकर पद के अधिकारी (अवतारी) पुरुष रूप मे उपस्थित हुए वहा आज तीर्थंकर पद के रूप में एक महिला का प्रसग आ रहा है। अब तक जितने भी तीर्थंकर महापुरुषों के नाम आपके सामने आये हैं। वे सब पुरुष के रूप मे ही आये है, किन्तु आज जिनका प्रसग आपके समक्ष रखा जा रहा है। वे महापुरुष शारीरिक दृष्टि से स्त्री लिङ्गी माने गये है। जैन दर्शन एक मौलिक दर्शन है। आत्मा का दर्शन है। आत्मिक दृष्टि से तीर्थंकर पद प्राप्त करने का सभी को समान अधिकार है। जाति और लिंग की बाधकता को जैन धर्म स्वीकार नही करता। आत्मीय समानता मे आप यहा वास्तविक समता का दर्शन कर सकते है।

जब कि मानव का मस्तिष्क कुछ शताब्दियो पूर्व महिलाओं को बहुत कर तिरस्कार और घृणा की दृष्टि से देखता था। किन्तु जैसे जैसे

समाजवाद का शुद्ध रूप

प्रार्थना

(४) मल्लि जिन बाल ब्रह्मचारी,
कुम्भ पिता परभावती
मइया तिनकी कुमारी ॥ मल्लि जिन० ॥
मा नी कूख कन्दरा,
माहि उपना अवतारी ।
मालती कुसुम मालानी वाछा,
जननी उर धारी ॥ मल्लि जिन० ॥ १ ॥

बन्धुओ,

आज मल्लिनाथ भगवान् की प्रार्थना का प्रसंग है। विनयचन्द चौबीसी की प्रार्थनाएं, एक एक करके कुछ समय से आ रही है। प्रार्थना के अन्दर प्रभु के नाम का परिवर्तन है, और साथ ही साथ प्रार्थना की कड़ियों का भी। लेकिन आज का नाम कुछ आश्चर्यजनक है। जहा इतने समय तक तीर्थंकर पद के अधिकारी (अवतारी) पुरुष रूप में उपस्थित हुए, वहा आज तीर्थंकर पद के रूप मे एक महिला का प्रसग आ रहा है। अब तक जितने भी तीर्थंकर महापुरुषों के नाम आपके सामने आये है। वे सब पुरुष के रूप मे ही आये है, किन्तु आज जिनका प्रसग आपके समक्ष रखा जा रहा है। वे महापुरुष शारीरिक दृष्टि से स्त्री लिङ्ग माने गये है। जैन दर्शन एक मौलिक दर्शन है। आत्मा का दर्शन है। आत्मिक दृष्टि से तीर्थंकर पद प्राप्त करने का सभी को समान अधिकार है। जाति और लिंग की बाधकता को जैन धर्म स्वीकार नहीं करता। आत्मीय समानता मे आप यहा वास्तविक समता का दर्शन कर सकते है।

एक दिन मानव का मस्तिष्क कुछ शताब्दियों पूर्व महिलाओं को बहुत कुछ तिरस्कार और घृणा की दृष्टि से देखता था। किन्तु जैसे जैसे

सम्यग् निर्णायकं समतामयं च यत् तज्जीवनम्

सम्यग् निर्णायक तत्त्व की बात कुछ शब्दो में मैं पहिले रख गया हूँ, पर वह जीवन की सम्पूर्ण परिभाषा नही बनी है। इसलिये आगे के विशेषण पर आ रहा हूँ कि 'समतामयं च यत्', अर्थात् जो समतामय है वह जीवन है, यह दूसरा विशेषण है। यह समतामय शब्द जो आपके सामने आ रहा है। लोग इस समता शब्द का अर्थ, भिन्न भिन्न रूपो मे लेते हैं। अधिकाशतः समता से मनुष्य का दृष्टिकोण समान वय की तरफ चला जाता है। अथवा समता से वह समझने लगता है कि आजकल जो समाजवाद या साम्यवाद ससार के सामने चमक रहा है, जिस समाजवाद की बाते हो रही हैं और जिसमे यह आवाज बुलन्द हो रही है कि सबको समान अधिकार दिये जावें। गरीब और अमीर का भेद न रहे, मन्दबुद्धि और विद्वान् का भेद न रहे। सबके सब एक रूप हो आदि वह समता है। किन्तु समता की यह वास्तविक परिभाषा नही है आज का नारे के रूप मे प्रचलित समाजवाद "समतामय" जीवन से कुछ भिन्न है मै तो यहा तक करने को तत्पर हूँ कि साम्यवाद नही विषमतावाद है अर्थात् विषमता उत्पन्न करने वाला है। डंडे के बल पर समानता नही लाई जा सकती, प्रतिव्यक्ति को समानता के नाम पर समबुद्धि वाला नहीं बनाया जा सकता।

आज के इस वायुमण्डल पर आप भी थोडा सा चिन्तन करे। बहती हुई हवा मे नही वहे स्वय न बहे। आप केवल ध्वजा न बनें। ध्वजा के स्तम्भ बने। ध्वजा जिस स्तम्भ पर लगाई जाती है, वह ध्वजा जिधर की वायु होती है उधर ही उडती है। लेकिन स्तम्भ क्या उस ओर मुडता है ? स्तम्भ अपने स्वरूप मे स्थिर रहता है। ध्वजा तो चारो दिशाओ मे हवा के रूप के साथ घूम जाती है लेकिन स्तम्भ किसी दिशा मे नही घूमता। जिस दिशा मे है उसी मे स्थिर रहता है। वैसे ही आज के इस वैज्ञारिक युग मे प्राय मानव का मस्तिष्क ध्वजा के तुल्य बना हुआ है। एक विचार प्रवाह यदि पश्चिम से आया तो उसकी तरफ उनके विचारो का मोड हो गया और यदि पूर्व से आया हो तो पूर्व की ओर झुक गये। दक्षिण से आया तो दक्षिण की ओर और उत्तर से आया तो उसके प्रवाह मे वह गया। मैं पूछता हूँ कि उस ध्वजा की कीमत है या स्तूप की। यदि स्तम्भ नही है और केवल ध्वजा है, तो उस ध्वजा का कही भी कोई महत्त्व नही है। फिर तो वह हवा मे उडती हुई इधर से उधर रेत के

सम्भव है कि कुछ बन्दरो का उत्पात हो रहा है। आपका ध्यान उधर ही चला गया है। वैसे ये कोई अपरिचित तो नही हैं। वे अपने जीवन के महत्व को कुछ भी नही समझते है। सिर्फ उन्होने जीवन का ध्येय, तोड फोड करना, इधर उधर कूदना फादना या वस्तुओ को लेजाकर विखेर देना ही समझ लिया है। यह उनके जीवन की दिनचर्या है। कदाचित् आपका ध्यान उधर केन्द्रित हो तो साथ ही आप चिन्तन करिये कि उनके जीवन की दिनचर्या के तुल्य ही आज के मानव की दिनचर्या तो नही है। आज के मानव अपने जीवन के महत्त्व को समझते है या वन्दरो की भाति ही इधर उधर लोगो को आपस मे लडा भिड़ा कर, कटुता फैलाकर कर, जीवन मे व्यवस्था पैदा करते है। यदि यह स्थिति तुलनात्मक दृष्टि से किसी के जीवन मे व्याप्त हो तो समझना चाहिये कि अभी हमारे जीवन मे सुसस्कारो का कुछ भी प्रवेश नही हो पाया है।

समता के नाम पर विषमता

जो वीतराग वाणी अबाध रूप से लगभग ढाई हजार वर्ष से कर्णगोचर हो रही है और कुछ दिनो से आपके सामने भी उसकी व्याख्या आ रही है जिसमें प्रभु ने बार बार कहा है :—

असखय जीविय मा पमायए

प्रभु ने कहा है कि यह जीवन चिर काल से असंस्कारित दशा में चल रहा है, इसे सस्कारित बनाने मे प्रमाद मत करो। इसी उद्घोषणा के अनुसार, उस संस्कारित जीवन को कुछ दिनों से आपके सामने रख रहा हूँ और उसको सरल बनाने की दृष्टि से कभी कभी दूसरे दूसरे रूपो में भी आपका ध्यान ले जा रहा हूँ। पर उन सबके पीछे ध्येय यही है कि आप उस सुसंस्कारित जीवन की परिपूर्ण परिभाषा को अपने मन मस्तिष्क में लावे, अपने अपने वर्तमान जीवन मे उस समता के धरातल पर पहुँच कर, जीवन के वास्तविक आनन्द को ले सके, और उस आनन्द के झूले मे बैठकर सदा के लिये शाश्वत शान्ति का अनुभव कर सके।

जिस परिभाषा की व्याख्या आपके सामने चल रही है। उसे वैसे तो मैं कई बार उच्चारण आपके सामने कर गया हूँ। पर आज पुनः उच्चारण कर देता हूँ —

सम्यग् निर्णायकं समतामयं च यत् तज्जीवनम्

सम्यग् निर्णायक तत्त्व की बात कुछ शब्दो मे मैं पहिले रख गया हूँ, पर वह जीवन की सम्पूर्ण परिभाषा नही बनी है। इसलिये आगे के विशेषण पर आ रहा हूँ कि 'समतामयं च यत्', अर्थात् जो समतामय है वह जीवन है, यह दूसरा विशेषण है। यह समतामय शब्द जो आपके सामने आ रहा है। लोग इस समता शब्द का अर्थ, भिन्न भिन्न रूपो मे लेते हैं। अधिकाशतः समता से मनुष्य का दृष्टिकोण समान वय की तरफ चला जाता है। अथवा समता से वह समझने लगता है कि आजकल जो समाजवाद या साम्यवाद ससार के सामने चमक रहा है, जिस समाजवाद की बाते हो रही हैं और जिसमे यह आवाज बुलन्द हो रही है कि सबको समान अधिकार दिये जावें। गरीब और अमीर का भेद न रहे, मन्दबुद्धि और विद्वान् का भेद न रहे। सबके सब एक रूप हो आदि वह समता है। किन्तु समता की यह वास्तविक परिभाषा नही है आज का नारे के रूप मे प्रचलित समाजवाद "समतामय" जीवन से कुछ भिन्न है मै तो यहा तक करने को तत्पर हूँ कि साम्यवाद नही विषमतावाद है अर्थात् विषमता उत्पन्न करने वाला है। डंडे के बल पर समानता नही लाई जा सकती, प्रतिव्यक्ति को समानता के नाम पर समबुद्धि वाला नही बनाया जा सकता।

आज के इस वायुमण्डल पर आप भी थोडा सा चिन्तन करे। बहती हुई हवा मे नही वहे स्वय न वहे। आप केवल ध्वजा न बने। ध्वजा के स्तम्भ बनें। ध्वजा जिस स्तम्भ पर लगाई जाती है, वह ध्वजा जिधर की वायु होती है उधर ही उडती है। लेकिन स्तम्भ क्या उस ओर मुडता है? स्तम्भ अपने स्वरूप में स्थिर रहता है। ध्वजा तो चारो दिशाओ मे हवा के रूप के साथ घूम जाती है लेकिन स्तम्भ किसी दिशा मे नही घूमता। जिस दिशा मे है उसी मे स्थिर रहता है। वैसे ही आज के इस वैज्ञानिक युग मे प्राय मानव का मस्तिष्क ध्वजा के तुल्य बना हुआ है। एक विचार प्रवाह यदि पश्चिम से आया तो उसकी तरफ उनके विचारो का मोड हो गया और यदि पूर्व से आया हो तो पूर्व की ओर झुक गये। दक्षिण से आया तो दक्षिण की ओर और उत्तर से आया तो उसके प्रवाह मे वह गया। मैं पूछता हूँ कि उस ध्वजा की कीमत है या स्तूप की। यदि स्तम्भ नही है और केवल ध्वजा है, तो उस ध्वजा का कही भी कोई महत्त्व नही है। फिर तो वह हवा मे उडती हुई इधर से उधर रेत के

कणो की तरह अपने आपको कही भी नही टिका पायेगी। इसी प्रकार मानव यदि विचारो में ध्वजा की तरह बहता रहा और किसी स्थाई स्तूप का लक्ष्य रूप में सहारा नही लिया तो वह समता के तथ्यात्मक रूप को नही देख पायेगा। यही स्थिति आज के समाजवाद के वायु मण्डल की हो रही है। मैं उस वातावरण का विरोधी नही हूँ, पर वस्तुस्थिति का सशोधन करना चाह रहा हूँ। आज का दृष्टिकोण कुछ एकागीण बनता जा रहा है। मैं यह चाहता हूँ कि समाजवाद के साथ समता का वास्तविक पुट भी हो, पर यह कैसे शक्य हो सकता है। इसे थोड़ा स्पष्ट कर दूँ।

यद्यपि वैज्ञानिक दौड़ इस ओर लग रही है लेकिन इस दौड़ में इस विषय पर परिपूर्ण सरलता प्राप्त हो सकेगी ऐसा शक्य प्रतीत नही होता है। जहाँ वैज्ञानिक क्षेत्र में भी यह परिवर्तन नही लाया जा सकता कि सब की आकृति एक सांचे के समान हो तो भला समाजवाद के नाम से मनुष्य के शरीर की समानता कैसे लाई जा सकेगी ?

विचारों का संशोधन करिए

एक ही माता की कुक्षि से जन्म लेने वाली सन्तान की दशा को देखिये। उस माता की कुक्षि से जन्म लेने वाले पाच भाई लेकिन पांचो मे भी समानता नही है तो फिर सम्पूर्ण मानव जाति के शरीर की समानता कैसे लाई जायेगी ? यदि यह सोचा जाये कि हम आर्थिक समानता ले आयेंगे और अर्थ की दृष्टि से हम सब को एक सरीखा बना देंगे, सब के पास मे सब तरह के साधन, सब तरह की सामग्री, और सब समान सम्पत्ति रहेगी किन्तु यह कल्पना मन को जितनी सुखद लगती है, क्या वस्तुतः वैसा करना शक्य है ? आप दूर न जाइये, आप एक परिवार का नक्शा ले लीजिए उस परिवार मे चार भाई हैं, चारों भाइयो मे पिताजी ने बिल्कुल समान रूप से अर्थ का विभाजन कर दिया, और समान साधन सब उनके लिए जुटा दिये। अब चारो भाई समान रूप से रहेगे या उनमे असमानता आ जायेगी ? आपका अनुभव क्या बतलाता है ? आप यदि उस अनुभव के सहारे सोचेगे तो यह पायेगे कि चारों को अर्थ और साधन सामग्री बराबर रूप में सौंपी गई है, फिर भी एक भाई तो आज ही कष्टो का अनुभव कर रहा है, एक भाई ने उस सामग्री को और अधिक बढा लिया। एक दुखी और दूसरा सुखी के रूप मे, एक धनवान और दूसरा निर्धन के में, एक विद्वान और दूसरा मूर्ख के रूप मे बन गया है। वे चारों भाई एक

परिवार में ही विभिन्न रूपो मे दृष्टिगत होने लगेंगे जो साम्यवादी देश रूस और चीन हैं उनमे भी आप देख पायेंगे और कभी उनकी स्थिति को आपने सुना हो तो वहाँ पर भी सब के सब आर्थिक दृष्टि से एक रूप मे नही हैं। आप उनके कर्मचारियो के अन्दर देखिये-एक कर्मचारी अधिक वेतन पा रहा है और एक कम, एक हुकूमत कर रहा और एक हुकूमत नही कर रहा है। यह क्यो ? जब कि आर्थिक दृष्टि से और सब साधनो से वे सम्पन्न हैं, तो सब के सब समान क्यो नही ? मैं इस विषय मे स्वतन्त्र रूप से नही कह रहा हूँ, सिर्फ आपको उस वीतराग वाणी का रूप जो कि वर्तमान मे मनुष्यो के मस्तिष्क मे जिस रूप मे है उस विषय मे संशोधन दे रहा हूँ। आप उस ध्वज के कपडे की तरह उडे नही लेकिन उस उडती हुई स्थिति मे स्तम्भ की तरह रहे। यदि आप इस विषय मे विचार करेंगे तो पता लगेगा कि यह समाजवाद का वास्तविक रूप नही है। यदि कोई यह कहे कि हम विचारो की दृष्टि से मनुष्यो के अन्दर समानता ले आयें तो यह भी शक्य नही है ? विचारो की दृष्टि से इन्सान मे समानता नही बनेगी। एक ही स्कूल के अन्दर पढने वाले छात्र, उनको एक सरीखी शिक्षा दी जा रही है लेकिन परीक्षा मे क्या सब के सब तुल्य नम्बरो से पास होते हैं ? ऐसा नही है। वहाँ पर भी विचारो की भिन्नता रहेगी, उनके विचारो मे तारतम्यता नही रहेगी और जब तक मनुष्य छद्मस्थ है, अपूर्ण है, तब तक उसमे विषमता रहेगी। आप विचारो की दृष्टि से किसी भी क्षेत्र मे समानता नही ला सकते।

पहिले समता को समझिये

आप मानसिक दृष्टि से समानता की बात सोचेगे तो वह भी इस स्थिति मे शक्य नही हो सकती है। मन की स्थिति बडी विचित्र है। आप चाहे सामाजिक क्षेत्र मे चिन्तन करे, चाहे राष्ट्रीय क्षेत्र पर सोचे, और चाहे विश्व के रगमच से सोचे। ये सब बातें समानता के रूप मे आने की स्थिति मे नही हैं। हाँ, इनमे समता लाई जा सकती है। यदि समाजवाद का दृष्टिकोण समता के रूप मे परिणत हो जाता है तो वह समता शरीर की असमानता रहने पर भी लाई जा सकती हैं। एक सरीखे शरीर नही हैं लेकिन समता एक सरीखी बन सकती है। आप उसी परिवार को लीजिए कि पिता के जितने पुत्र हैं उन पुत्रो के ऊपर पिता की समता दृष्टि रह सकती है, एक बडा है एक छोटा है, एक गरीब है, एक धनवान है, एक विद्वान है, एक मूर्ख है लेकिन पिता उन पर समता रख सकता है, और

समता आने पर समानता आयेगी, समता तो शक्य हो सकती है। लेकिन समानता शक्य नही है। इस दृष्टिकोण से मानव के मस्तिष्क में यह संशोधन आये कि हमको उस समता के पीछे जाना है, समानता के पीछे नही। यदि समता का जीवन अपना लिया तो चाहे वह किसी भी परिस्थिति मे क्यो न हो आनन्द का अनुभव करेगा। जीवन मे यदि समता है, अथवा दूसरे शब्दो मे अगर सन्तोष है—और इसी परिभाषा को विस्तार से ले तो यदि हमारा समभाव का सिद्धान्त है, हम अपने आत्मिक शक्ति के तुल्य प्रति प्राणी को देखने की भावना रखते हैं और सुख दुःख मे समता का बर्ताव करते है तो हम समता सिद्धान्तवादी हैं। यह सोचें कि यदि पड़ोस के अन्दर कोई दु खी है, पडौसी कराह रहा है तो वह दु ख और कराहट उसकी नही है, मेरी है, मैं उसका दुःख देख नही सकता, मैं उसको सुखी बनाने के लिए प्रयत्न करू, उसका दु.ख मेरा दुःख है, जब इस प्रकार का चिन्तन होगा उस दिन उसके मस्तिष्क में समता भाव की मगल बेला का उदय होगा। पर जब तक वह इस बात पर ध्यान नही देता है और सोचता है कि पड़ोस मे चाहे कोई कुछ चिल्लाये मुझे इसकी परवाह नही है मुझे तो अपने परिवार के सदस्यो की सुरक्षा करनी है। मेरे परिवार के सदस्य प्रसन्न है तो मैं भी प्रसन्न हूँ यदि पडोसी दुखी है तो मैं दुःख क्यो मनाऊं। यदि इस प्रकार की भावना है तो वह चाहे कितना समाजवाद का नारा लगाये कहना चाहिए कि वास्तव में यह समाजवाद नही है क्योकि उसके अन्दर समता का अभाव है। अगर एक पिता के मन मे एक पुत्र के प्रति राग है और एक के प्रति द्वेष है तो वह समता जीवन का द्योतक नही है। आज का मानव जीवन जिस विषमता के धरातल पर चल रहा है उसमें समता का प्रादुर्भाव होना जरूरी है। इसलिए समता का स्वरूप इस जीवन मे लाने के लिए जीवन की परिभाषा को समग्र रूप से समझने का प्रयास करे। और समता की भावना जैसी अपने जीवन के लिए है वैसी ही दूसरो के जीवन के लिए रहे। मैं सब की आँखो में प्रफुल्लता देखना चाहूँ, मै किसी की आख मे आँसू नही देखना चाहूँ—इस प्रकार की समता का भाव इन्सान के जीवन मे लाने के लिए आप समता शब्द की व्याख्या को थोड़ा गहराई से समझने का प्रयास करें। समता और समानता मे बहुत बडा अन्तर है। समानता के धरातल पर जो कुछ वायुमण्डल बनाया जायेगा, वह स्थाई रूप से कामयाब नही होगा लेकिन क्षमता के धरातल पर थोडा भी कार्य प्रारम्भ किया जायेगा तो वह अपने परिवार मे समता का फैलाव करता हुआ राष्ट्र और विश्व तक व्यापक हो सकता है। आप जिन बातों

को लेकर चल रहे हैं, जिन परिस्थितियो मे चल रहे हैं उन परिस्थितियो में अनेक उतार चढाव आ रहे हैं, । एक नारा बुलन्द हो रहा है कि इन व्यापारियो ने यह कर दिया, वह कर दिया । ठीक है व्यापारियो ने कुछ क्रिया हो लेकिन आज दूसरे-वर्ग के व्यापारी भी किस धरातल पर श्रा रहे है । चाहे वे व्यापारी नही हो, चाहे तनख्वाह पाते हो, चाहे किसी रूप मे रहते हो लेकिन वे भी दूसरे दर्जे के व्यापारी ही हैं। वे प्रचलित व्यापार नही करते हैं लेकिन उनका व्यापार का तरीका दूसरा है। वे आज इस संसार मे समता के श्राधार पर चल रहे है या विषमता के श्राधार पर ? क्या उनके मन मे लूटपाट नही मची हुई है ? क्या वे समाज विरोधी नही हैं ? अगर ये प्रवृत्तियाँ उनके मस्तिष्क मे बनी हुई हैं और वे दूसरो को लूटने की स्थिति मे हैं तो यहाँ पर यही कहना होगा कि उनके मन मे नाम तो समाजवाद का है लेकिन अन्तर मे विषमता है, समता नही है । बन्धुओ, वातें थोडी गहरी बन जाती हैं और मेरी आदत भी गहराई मे पहुँचने की है । मैं गहराई की बात इसलिए कह रहा हूँ कि आप जीवन के अन्दर उस ध्वजा के स्तूप का रूप धारण करें, आप समता के धरातल पर आरूढ रहे । यह स्थिति नही होगी, तो आप कभी-कभी निज सन्तान के साथ भी विषम भाव का दृश्य उपस्थित कर सकते हैं ।

समता एक कसौटी

प्राचीन काल मे भी कभी-कभी विदेश जाने का प्रसंग आया करता था । जैसे आजकल एक देश से दूसरे देश मे व्यापार करने की दृष्टि से पहुँचते है । आज का वातावरण उनके लिए बहुत अनुकूल है । यातायात के साधन अधिक हो गये हैं जिससे मीलो की लम्बाई निकट मे वदल गई है और एक दृष्टि से शहर का रूपक सा वन गया है इसलिए शीघ्र जा आ सकते है, अपने समाचार अपनी सन्तान को जल्दी से पहुँचा सकते हैं। लेकिन प्राचीन काल मे ये साधन नही थे । उस समय एक व्यापारी विदेश कमाने के लिए निकला । जिस समय वह घर से रवाना होता है उस समय उसकी पत्नी गर्भवती थी । वह विदेश व्यापार के लिए चला गया और कुछ महीनो के वाद उसके घर में पुत्र रत्न का जन्म हुआ । वच्चा भाग्यशाली था, पुण्यवानी को सचित करके लाया था लेकिन पूर्व के पापो का भी उसके साथ सम्वन्ध जुडा हुआ था । वच्चा वडा हुआ और वह १२ वर्ष पूरे कर गया । १३वे वर्ष मे उसने प्रवेश किया । परन्तु उसने कभी पिता का मुंह नही देखा था । घर पर पिता के समाचार पहुँचे कि अव मैं आ रहा

हूँ। उस समाचार पहुँचने में भी महीनो लग जाते। जब वह वहां से रवाना हुआ तब समाचार नही आये, घर से कुछ नजदीक पहुँचता है तब उसके समाचार घर पर पहुँचते है। नजदीक आने के समाचार सुनकर माता अपने पुत्र से कहती है : पुत्र, तुम्हारे पिताजी विदेश से आ रहे है। वे अमुक रास्ते से आवेंगे, तुम उनके स्वागत के लिये आगे तक जाओ।

पुत्र ने कहा—माता, मैं पिता श्री को पहचानता नही हूँ।

इस पर माता ने कहा—पुत्र, यह तुम्हारे पिता श्री का फोटो है। इसे तुम अपने पास में रख लो और तुम्हारी आकृति का फोटो भी रख लो। मैं कुछ पूडियाँ भी बना देती हूँ। उनको तुम साथ में रख लेना, सवारी का साधन तो है नही। पैदल ही जाना होगा। रास्ते मे जहा भूख लगे खा लेना। ये पूडिया तुम्हारे लिए बहुत होगी। तब तक तो रास्ते में तुम्हारे पिता श्री मिल ही जायेगे। उनको इन चिन्हो से पहचान लेना और साथ-साथ घर ले आना।

पुत्र बडी उमंग के साथ पिता श्री के स्वागत के लिए घर से चल पडा। दिन अस्त होने को आया। थोडी दूर पर ही रास्ते मे एक धर्मशाला उसे मिल गई। वहा वह पहुँचा और वही विश्राम करने के लिए ठहर गया। धर्मशाला मे उसे एक कमरा ठहरने के लिए मिल गया। शाम का खाना खाकर वह रात को सो गया। उसने अपनी जिन्दगी में कभी ठण्डी पूडिये खाई नही थी। आज जब उसने ठण्डी पूडिया खाई तो रात को सोने के थोडी देर बाद ही उसके पेट मे तीव्र वेदना प्रारम्भ हो गई। पेट में जोरों से दर्द होने लगा। दर्द के मारे वह जोर-जोर से चिल्लाने लगा।

धर्मशाला का रक्षक दयालु व्यक्ति था। धनवान तो था नही लेकिन उसके मन मे समता की भावना थी। वह बालक उसका कोई सगासबधी नही लगता था फिर भी उसमे एक मानवता के नाते सहज दया भाव जगा और उस बच्चे का दर्द देखकर बडी चिन्ता मे पड गया। सोचने लगा कि इसको कितना दर्द हो रहा है। अगर मेरे पास इसकी कोई औषधि या चूर्ण आदि होता तो इसका दर्द समाप्त कर देता पर मेरे पास कुछ भी तो नही है। बिचारा वह धर्मशाला का रक्षक उसके लिए चिन्तित हो उठा। उसने सब काम काज छोडकर उस बच्चे के उपचार के प्रयत्न का निर्णय लिया। उसके मन मे तीव्र भावना जगी कि किसी तरह से इस बच्चे का दुख दर्द दूर करूं।

बन्धुओ, यह भावना किसके मन मे जगी ? धर्मशाला के रक्षक के

मन में। जितनी उसकी शक्ति थी, उसने प्रयत्न किया। पर वह गांव छोटा था, जहा चूर्ण की पुडिया भी नही मिलती। यकायक उस रक्षक के ध्यान मे आया कि इस धर्मशाला में एक सेठ विदेश से आया हुआ विश्राम के लिए रुका है और विदेशो से जो सेठ साहुकार आते हैं तो सामान्य तौर से वे कुछ औषधिया साथ रखते है। चलो, उससे कुछ मागनी करू।

वह पहुँचा उस सेठ के पास और कहा— सेठ साहब, इस धर्मशाला मे कोई अबोध बच्चा भी आप की तरह ही आकर रात्रि विश्राम के लिए ठहरा है, वह कहा से आया है कहा का और कौन है यह पता नही लग रहा है वह इतना बेचैन हो रहा है कि जिसकी सीमा नही। उसको भान तक नही है। वह अपना स्वरूप और परिचय नही बता पा रहा है। उसके पेट मे दर्द उठा है। आप विदेश से आ रहे हैं, आपके पास अगर कोई पेट दर्द के लिए चूर्ण या दवा हो तो दीजिये ताकि दवा देकर उस बच्चे को शांत कर सकू।

सेठ कहने लगा— मैं विदेश से आया हूँ और धन कमाकर भी आया हूँ। दवा मे भी मैंने पैसा खर्च किया है, परन्तु यह सब इस तरह से मुफ्त देने के लिए नही। मार्ग मे अनेको मिलते हैं। चिल्लाते हैं- मैं इसका क्या करू। मैं ऐसे मुफ्त देने वाला नही हूँ।

धर्मशाला के उस गरीब रक्षक ने कहा—सेठ साहब, मेरी शक्ति के अनुसार जितना पैसा मैं दे सकू गा, दिला दू गा। आप थोडी सी दवा या चूर्ण दीजिये तो सही ताकि उसका दर्द मिट सके।

नही नही, तू क्या मुझे पैसा देगा। कगाल कही का! मेरी दवाइया यों मुफ्त मे देने के लिए नही हैं। चल हट यहाँ से।

अब देखिये एक तरफ इस धर्मशाला के रक्षक के मन मे क्या भावना है, और दूसरी तरफ उस सेठ के मन मे क्या भावना है। उस व्यापारी के मन मे यह भावना चल रही है कि यह धन और ये सारी दवाइया आदि सब सामग्री अपने पुत्र को ले जाकर घर सुपुर्द करू गा। वह पुत्र सुखी होगा।

पडौस सुखी हो यह भावना उस सेठ की नही है। उधर वह बालक दर्द के मारे तडप रहा है। दो चार आने की चूर्ण की पुडिया इस बालक को दे दू तो वह शाति अनुभव करेगा। यह भावना उस सेठ की नही है।

अब कदाचित् ऐसा व्यक्ति समाजवाद का नारा लगावे और समता की बाते बढचढ कर करे। ऊंचे-ऊंचे नारे लगावे। पर क्या यह समता जीवन वाला हो सकता है।

समता जीवन का कुछ भी अश उसमें आया है ?

कुछ देर तक यह किस्सा चलता रहा। रात्रि बढने लगी। सोने का समय हो गया। सब यात्री सो गये। पर इधर बच्चा अधिक दर्द से कराहता रहा। रात्रि ज्यो-ज्यो बढी उस वच्चे की वेदना बढने लगी। बढते-बढते वह वेदना इतनी उग्र हो गई कि वह बच्चा दर्द के मारे छटपटाता मछली की तरह तड़फने लगा।

इससे उस सेठ की निद्रा भंग हो गई। निद्रा भंग का कारण उस बच्चे की चिल्लाहट को जानकर वह चिल्लाया– अरे यह कौन है ? यहां पडा चिल्लाने वाला। मेरी नीद भंग कर रहा है। यदि इस तरह से यह किसी शहर मे चिल्लाता तो उसे मैं पुलिस के हवाले करके थाने मे वन्द करवा देता। यह थके मादे यात्रियो की नीद भंग करने का अपराध कर रहा है।

सेठ ने धर्मशाला के रक्षक को बुलाकर डाटा और जोर से कहने लगा कि या तो इस बच्चे को इस धर्मशाला से हटा दे वरना तुम्हारे पर मैं मुकद्दमा चलाकर यात्रियो की इस तरह से नीद भंग करवाने के अपराध मे तुम्हे सजा दिलवा दूंगा। तुम्हारी नौकरी छुडवा दूंगा। इस तरह से हमारा स्वास्थ्य खराब होने के लिये नही है।

बेचारा रक्षक भी गरीब था। डरा। तडपते कराहते रोते चिल्लाते उस बच्चे को उसने वहा से उठाया और धर्मशाला के किसी एकान्त कोने के कमरे मे ले जाकर लिटा दिया ताकि वहाँ से उसका रोना चिल्लाना सेठ साहव के कानो में नही पड़े और उनकी निद्रा भग न हो।

वह धर्मशाला का रक्षक अत्यन्त दुःख अनुभव कर रहा था कि वह वच्चे के लिये कुछ भी नही कर पा रहा है और इस तरह से उसके दुःख में अपनी सहानुभूति व्यक्त करके अपने स्थान पर बैठा है। उसे भी चैन नही पड रही थी, नीद नही आ रही थी। वच्चे के उस दुःख दर्द को वह सहन नही कर पा रहा था।

इधर ये सेठ साहव आनन्द से नीद मे खुर्राटे ले रहे हैं। प्रातःकाल हुआ। उस धर्मशाला के रक्षक को तो विशेष नीद आई नही थी। फिर भी

जैसे ही उसकी झपकी मिटी उसने सोचा कि चलूं देखूं बच्चे की क्या हालत है। लगता है उसे रात मे कुछ निद्रा आई है। सूर्योदय होते-होते वह उस बालक के कमरे मे पहुँचा। तो देखा कि बच्चे के प्राण पखेरु उड चुके हैं। उसको अत्यन्त दुःख हुआ। दुःख के मारे उसके मुंह से हाय निकल पडी। हाय-हाय, इस धर्मशाला के अन्दर और यह अबोध बच्चा कितना कोमल शरीर और वय वाला है, चला गया। क्या करू। मैं इसके लिये इतना चाहते हुए भी कुछ नही कर सका। काफी प्रयत्न करने पर भी मैं इसके लिए औषधि का साधन नही जुटा पाया। मैं इस पाप का भागी होऊंगा। लेकिन फिर भी वह साहस नही कर पाया कि उसके हाथ लगाकर देखें तो सही। गरीब था। अगर इसके हाथ लगाया और किसी ने देख लिया तो कहेगा कि इसके पास अमुक-अमुक सम्पत्ति थी। इसने निकाल ली या इसके लालच मे इसने ही कुछ खिला पिला दिया होगा और इसे मार दिया होगा।

इस शंका से आशंकित होकर वह गांव मे पहुँचा। गांव थोडा दूर था। पाँच पंचो को वहा से बुला लाया और कहने लगा यह कमरा है। इसमे एक बच्चा मृत अवस्था मे पडा है। रात को दर्द हुआ था, उपचार करने का बहुत प्रयत्न किया पर कुछ कर नही सका और उस दर्द के मारे यह मर गया है। यह किसका बच्चा है कहा से आया है, यह कुछ पता नही।

बच्चे की मृत्यु की खबर से लोगो मे हलचल मची। बहुत लोग एकत्रित हो गये। हो हल्ला हुआ। लोग कहने लगे अरे इतना कोमल और सुन्दर बच्चा। इसको इतनी वेदना थी तो हमे खबर तो करते। इसकी दवा-दारू करते।

धर्मशाला का रक्षक कहने लगा: जितना मेरे से हो सकता था, मैंने किया।

सब के सब आश्चर्य करके देखने लगे और उसका सामान पंचो की सहमति के साथ बाहर निकाला गया तो एक थैला था उस थैले मे कुछ ठण्डी पूड़ियाँ थी, एक सेठ का फोटो था और उसका भी फोटो था। वे उसको लेकर देखने लगे कि यह अमुक सेठ का लड़का है और सम्भवत अपने पिता के स्वागत के लिए जा रहा था। वे तो इधर फोटो देख रहे थे और उधर सेठजी जो उस धर्मशाला मे ठहरे थे निद्रा मे रात्रि भर सोये रहे और सूर्य—उदय होने के पश्चात निद्रा भग हुई तब उठे और उस भीड़ के बीच मे आकर देखने लगे कि यहा क्या हुआ है? फोटो पर दृष्टि पड़ी और उसे

ज्ञात हुआ कि यह तो मेरी ही फोटो है, अरे क्या यह मेरा बेटा था ? हाय रात्रि भर यह तडफ-तडफ कर मर गया और मैं अपनी नींद मे सोया रहा। वह मूर्छित होता है और चिल्लाता है लेकिन अब क्या हाथ में आने वाला है। वह उसी का पुत्र था, उसके स्वागत के लिए आया था लेकिन जन्मते समय पिता को नही देखने की वजह से अपना कुछ भी परिचय आगे नही दे सका और वह मृत्यु को प्राप्त हो गया। लेकिन अब वह सेठ कितना ही चिल्लाये क्या होने वाला है ?

यह तेरे मेरे की दीवार

बन्धुओ ! अभी अभी मैंने आपके सम्मुख एक लघु कथानक रक्खा है। आपने समझा होगा समता किसी व्यक्ति विशेष की बपौती नही है। वह प्राणी मात्र के अपनाने का तत्त्व है। मानव जीवन का निचोड है। उसे यदि एक गरीब व्यक्ति अपनाता है तो वह श्लाघ्य है, इसके विपरीत यदि कोई लाखो की सम्पत्ति का स्वामी क्यो न हो, समता के बिना वह किसी भी क्षेत्र मे वास्तविकता का आदर नही पा सकता। वह समाजवाद की डींग हाक सकता है, पर जीवन निर्माण के क्षेत्र मे खरा नही उतर सकता है। वह अपने परिवार के लिए सब कुछ करना चाहता है लेकिन पडौसी के साथ हमदर्दी रखना नही चाहता। पडौसी क्या मोहल्ले शहर और सारे देश के साथ विद्रोह की भावना रखता है और जितना दुनिया का धन सचय किया जाये वह इकट्ठा करने की सोचता है लेकिन समता का प्रचार और समता का प्रसार नही करता है, तो क्या वह अपने जीवन मे वास्तविक शाति का अनुभव कर सकता है ? बन्धुओ आप इस दृष्टिकोण से भी अपने जीवन का थोड़ा चिन्तन कीजिये और सोचिये कि हम किस धरातल पर है और किधर उड रहे है. हमारा जीवन प्रवाह किस ओर जा रहा है। आज मैं तो यही कहूँगा कि प्रत्येक मानव को शांति के साथ समता के स्तम्भ पर आरूढ होकर ठीक तरह से सारे वायुमण्डल का अवलोकन करना चाहिए और दिल दिमाग से सही माने मे जीवन के स्वरूप को समझने का प्रयास होना चाहिए। "किं जीवनम्" की परिभाषा जिसका कि स्वरूप आपके समक्ष आ रहा है 'सम्यक् निर्णायकम् समता मय च यत् तज्जीवनम्" इसके अन्तर्गत जो समता का स्वरूप है उसका थोडा सा रस यदि जीवन मे आजाय तो समता का स्वरूप समझने में भी कठिनता नही आयेगी। जब तक दूसरे का दुख कैसा होता है इसका अनुभव स्वय के अन्दर नही करेगा, अपने जीवन के अन्दर उस वेदना की अनुभूति नही

करेगा तब तक वह समता के धरातल पर आरूढ नही हो सकेगा । किन्तु समता ही सब कुछ नही है, समता के पीछे दर्शन है और समता दर्शन के पीछे समतामय जीवन है । यह परिभाषा गहरी है और इसे कुछ कुछ तो मैं रख ही रहा हूँ । और एक भाग ऐसा भी रख रहा हूँ जिसके अन्दर समतामय जीवन का प्रतीक आपके सामने आ रहा है। कमलसेन का चरित्र किस रूप मे आ रहा है । अभी कमलसेन कहा बैठा है और क्या चिन्तन कर रहा हूँ, उसके अन्दर समता के दर्शन कैसे हुए और उसके साथ ही साथ वह अपने जीवन को कैसे लेकर चलता है वह तरुणाई मे है लेकिन तरुणाई मे तूफान नही है । वह अपने जीवन मे गहरे विचारो को लेकर चल रहा है लेकिन विचारो मे उड नही रहा है, आधी तूफान को बर्दाश्त कर रहा है । वह अपने धरातल पर बैठकर चिन्तन कर रहा है । उस प्रसग का चित्रण मैं पहले कर गया था। मेरी भावना थी कि मैं इसको आगे बढाऊ लेकिन समय १०।। का हो गया है और आज बोलने का प्रसग भी कम था लेकिन शहर के भाई आये हैं और मैंने भी सोचा कि आज रविवार है अत कुछ सुना दू मैं बोलने के लिए बैठा और भावना थी कि कमलसेन की कथा को और आगे बढाऊ लेकिन जो समता जीवन का रूप रख रहा हूँ वह भी अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण है प्रार्थना की कडियो मे समता का आदर्श रूप दिखाया गया और महिलारत्न मल्लिनाथ को प्रभु महावीर के समान बताकर समता का एक अपूर्व आदर्श प्रस्तुत किया गया है । इस सूक्ष्म विषय पर समस्त भाई और बहिने सब के सब अपने अन्त करण को टटोल कर मनन करें और यह देखे कि हम समता के बीजारोपण को कहाँ तक लेकर चल रहे हैं । इस भावना के साथ सोचेगे तो अपने जीवन के अन्दर समता का वायु-मण्डल बना पायेगे । आगे समग्र जीवन का स्वरूप और उसका सिद्धात आपके सामने यथा समय आ सकता है । जिससे आप समता के चरम छोर को समझ कर जीवन का नव सर्जन कर सकें । मैं अभी इस विषय को इतना ही कह कर यही समाप्त करता हूँ ।

।। इति ।।

लाल भवन
६ अगस्त, ७२



अन्तर-आलोक

प्रार्थना

समुद्र विजय सुत श्री नेमीश्वर जादव कुलनो टीको ।
रत्न कुक्ष धारिणी "शिवादे" तेहनो नन्दन नीको ॥
श्री जिन मोहन गारो छै, जीवन प्राण हमारो छै ॥...

यह प्रभु अरिष्ट नेमि भगवान् की प्रार्थना है। प्रभु की प्रार्थना भक्त गण भिन्न २ शब्दो मे भिन्न २ प्रकार से व्यक्त करते हैं। इस प्रक्रिया के द्वारा वे अपने आन्तरिक भावो को परमात्मा के चरणो मे रखने का प्रयास करते है। आध्यात्मिक कवि आनन्दनजी भी आज, प्रभु के चरणो मे अपने भाव स्पष्ट करते हुए कह रहे है कि प्रभो ? आप मोहन गारे हैं। प्राणो के सहारे है। जो प्रभु जीवन के सहारे होते है, आधार होते है, वे मन मोहक ही नही अपितु आत्मानुमोहक भी होते है। जीवन का स्वरूप, जीवन की व्याख्या और जीवन की परिभाषा जो मनुष्य समझ लेता है, और प्रभु का तथा अपना तुलनात्मक चिन्तन करता है तो उसे अपना स्वरूप प्रभु के तुल्य ही दीखने लगता है। प्रभु की प्रार्थना प्रभु के लिए नही होती, वह तो स्वय स्तुतिकर्ता के अपने लिए होती है। प्रत्येक भक्त का भक्ति भाव पूर्ण गुण गान उसके अपने लिए ही हितकारी होता है। ईश्वर तो कृत कृत्य है, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी है। उनके लिए अब कुछ भी करना शेष नही है। वे किसी से अपनी स्तुति भी करवाना नही चाहते है। वे तो अपने वास्तविक स्वरूप सत्-चित् और आनन्द में रमण करते है। उनका इन स्तुतियो, प्रार्थनाओ तथा सम्मान सस्कारो से कोई सम्बन्ध नही है। भक्त जन प्रार्थना आदि जो भी क्रियाऐं करते हैं, वे सबकी सब अपने लिए ही करते हैं। अपने आत्मिक विकास के लिए करते है। सच्चा मानव सदा आत्म जागरण की भावना से ही प्रार्थना करता है। इसके विपरीत जो यह सोचते है कि हमारी प्रार्थना

से भगवान प्रसन्न हो जायेंगे, हमें स्वर्गादि के सुख प्रदान कर देंगे, उनकी वह भावना स्वार्थपरक होती है। वे रिश्वत देकर भगवान से कुछ प्राप्त करना चाहते हैं। वे अपनी भक्ति भावना को एक व्यापार के रूप मे प्रयोग करते हैं। मुझे यहां उर्दू के कवि गालिब की एक कविता याद आ गई जो ऐसे लोगो पर पूरी घटित होती है :—

इवादत करते हैं जो लोग जन्नत की तमन्ना से,
इवादत तो नही है इक तरह की वह तिजारत है॥

हा, तो इस प्रकार की प्रार्थना से पुण्य का बन्ध भले ही हो जाय, परन्तु वह आत्म प्रगति और जीवन की सिद्धि मे सहायक नही वन सकती। इसीलिए भक्ति के पीछे विवेक का दीपक, नितान्त आवश्यक माना गया है। विवेक के प्रकाश मे चलता हुआ भक्त मार्ग मे भटकने नही पाता। उसे अपना लक्ष्य सीधा दिखता रहता है। एक दिन प्रयत्न करते करते वह अपने आत्मिक स्थान पर पहुँच ही जाता है।

जीवन की दो धाराएँ

आध्यात्मिक जीवन की दृष्टि से जव विषय का प्रतिपादन मानव के सम्मुख आता है, तो कुछ वन्धु कहते हैं कि—ये आध्यात्मिक व्याख्याऐ, धर्म स्थान की व्याख्याऐ हैं। इन्हे धर्म स्थान मे आकर सुन लेना चाहिए। पारलौकिक दृष्टिकोण मे ये काम आ सकती हैं। वर्तमान के जीवन से इनका कोई विशेष सम्बन्ध नही है। इस प्रकार की धारणा मस्तिष्क को निरुद्यमी और उत्साह हीन वना देती है। वे परम्परा की दृष्टि से धर्म कथा मे आकर भले ही वैठ जाते हो, पर जीवन के धार्मिक तत्व को ग्रहण नही कर पाते है। हमे इस ओर गहराई से चिन्तन करना है। आध्यात्मिक और वाह्य ये जीवन के दो पक्ष है, जीवन की दो धाराएँ हैं। एक दूसरे से सर्वथा भिन्न नही है, अपितु पूरक हैं। इन दोनो के वास्तविक चिन्तन से ही जीवन का सर्वागीण स्वरूप अभिव्यक्त होता है। वाह्य स्थिति का अध्ययन किए विना आन्तरिक स्थिति मे जाना कैसे सभव हो सकता है? यदि मनुष्य किसी भी वस्तु के भीतरी भाग को वाहरी भाग से सर्वथा भिन्न मानेगा तो वह वस्तुतत्त्व के सही रूप को नही पा सकता। ऐसा समझने से तत्त्व की अखण्डता समाप्त हो जायेगी! उसके दो टुकडे हो जायेंगे? उनका ज्ञान टुकडो का ज्ञान कहलायेगा। वह सम्पूर्ण वस्तु का ज्ञान नही माना जा सकता। जीवन के एक रूप का ही पक्ष लेने से दूसरा पक्ष अछूता

रह जाता है। 'एक दृष्टिवाद'' सदा सबको एक ही डडे से हांकता है। यह एक पक्षीय निर्णय दूसरे पक्ष के निर्णय पर कुठाराघात करता है। बाहर ही बाहर सब कुछ है, यह मान्यता सही नही है। बाहर के साथ भीतर का ध्यान भी रखो और भीतर के साथ बाहर का। बाहर और भीतर की दोनों दशाओ को समन्वित करके जब जीवन का निर्णय किया जाता है तो वस्तुस्वरूप सहज ही मे दिखने लगता है। ऐसा करने से जीवन सहज सुखी हो जाता है।

प्रभु के चरणो में पहुँचने के लिए ऐसी स्थिति अत्यन्त आवश्यक है। जीवन की समग्र परिभाषा जब तक नही समझली जायेगी, तब तक अपना लक्ष्य निर्धारित नही किया जा सकता। लक्ष्य के बिना कार्य की सफलता बीच में ही लटकी रह जाती है। कोई भी लक्ष्य आकर्षण के बिना नही होता। जब यह यह तत्त्व समझ में आ जाता है तो सम्यग् निर्णय की ओर रुचि बढती है। निर्णायक शक्ति का जागरण ही सम्यग् ज्ञान का प्रतिफल है। क्रमिक साधना करिये। क्रमशः की हुई प्रगति स्थायी होती है। घास फूस जितना जल्दी उगता है उतना ही जल्दी थोड़ी सी धूप लगने पर सूख जाता है। आध्यात्मिक उपदेश दोनों लोक सुधारता है। किसी भी उपदेश का वर्तमान के साथ विशेष सम्बन्ध होता है। वर्तमान के जीवन का निर्माण, भविष्य का साकार रूप होता है। अपने भविष्य को देखने के लिए वर्तमान एक दर्पण का काम देता है। वर्तमान ही भविष्य का निर्माण करता है। अतः वर्तमान के सुधार का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

आत्मा के बिना सब व्यर्थ है

अन्न और जल का शरीर के साथ एक तादात्म्य सम्बन्ध है। वर्तमान शरीर जिस प्रकार अन्न के विना नही रह सकता, पानी के बिना जीवन का कार्य नही चल सकता और हवा के बिना तो यह शरीर रह ही नही सकता। अन्न पानी और हवा ये तीनो तत्त्व जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक हैं। इनसे ही शरीर मे प्रकाश दीखता है। किन्तु इन तीनो के साथ आध्यात्मिक दृष्टि रहनी चाहिए। आध्यात्मिक श्रद्धा के बिना जीवन का पौधा पनप नही सकता है। वह तो समय से पहिले ही कुम्हला जावेगा। सामग्री सभी कुछ उपलब्ध है, अन्न, जल और हवा तीनो का पूर्ण सहयोग है। ऐसी स्थिति मे यदि आंतरिक जीवन की आध्यात्मिक ऊर्जा शरीर मे नही है, तो शरीर का कोई मूल्य नही है। उसकी सुन्दरता उस घड़ी हाथ

मलती रह जायगी। शरीर सुन्दर है, उसका पोपरण करने के लिए तीनो तत्त्व विद्यमान हैं, किन्तु आध्यात्मिक शक्ति के बिना सभी व्यर्थ है। जीवन मे प्राणो का मूल्य होता है। इसी से सारे जीवन का मूल्य बढता है। शरीर वडा सुन्दर है, उसके पोषण के लिए तीनो तत्त्व भी प्राप्त हैं, किन्तु एक तत्त्व के बिना आपका शरीर एक 'शव' से अधिक कुछ नही है। उसी तत्त्व के कारण ये सारे आकर्षण हैं। जितने भी संसार मे अनात्म तत्त्व है उनका अपना कोई महत्त्व हो चाहे न हो पर आत्मा का संयोग मिलने पर उनमे एक विशेषता अवश्य प्रगट हो जाती है। बाह्य तत्त्वों को अधिक बढावा देने से, अन्तर प्रगति रुक जाती है। जिससे जीवन का विकास नही हो पाता। जब तक जीवन का विकास नही होगा, तब तक जीवन सुखी नही हो सकता। आज मानव जीवन मे जो असंतोष व्याप्त है, चारो ओर जो विषमताएँ दीख पड़ रही हैं, इन सबकी जड मे जीवन के महत्त्वपूर्ण मौलिक तत्त्व के प्रति उपेक्षा भाव ही मुख्य कारण माना गया है।

मूल को सींचिये

माली अपने बगीचे मे फलो से लदे हुए वृक्षो को देख कर वडा प्रसन्न होता है। उसने सभी वृक्षो की जडो का सिंचन किया है। तभी तो उसका परिश्रम आज फूल और फलो के रूप मे खिल रहा है। यदि वह मूल को सीचना छोड कर वृक्षो की शाखाओ को सीचने लगे तो क्या उसे फल प्राप्त हो जायेगे? वृक्ष हरे भरे रह सकेगे? इस प्रश्न के उत्तर मे आप यही कहेगे कि नही, जड सीचने से वृक्ष हरा भरा रहता है। शाखाओ को सीचने से आज तक कोई वृक्ष हरा नही रह सका है। वृक्ष की प्रत्येक शाखा अपनी जड से भोजन लेती है। तभी वह हरी भरी रहती है। मूल यदि सुदृढ है तो शाखा को भी वल मिलेगा। मूल की स्थिति सुधरेगी तो टहनी अपने आप सुधर जायेगी। क्योकि उसका जीवन मूल से सम्वद्ध है। जब मूल की बात को व्यक्ति समझ लेता है, तो फिर टहनी को जल पिलाने का व्यर्थ परिश्रम नही करता है। वह सदा मूल की सुरक्षा का ही ध्यान रखता है। उसे ही बारबार सीचता है। इस प्रयत्न से उसका परिश्रम सफल हो जाता है। उसे फल भी प्राप्त हो जाते हैं, और वृक्ष भी सुरक्षित रहता है। माली कृषि विज्ञान जानता है, अत वह मूल को छोड कर टहनी को कभी नही सीचता है। वह जानता है कि वृक्ष मे जो भी कुछ हरियाली है, जड मे से आ रही है। जड को खुराक धरती से प्राप्त हो रही है।

यद्यपि पृथ्वी मे प्रत्यक्ष हरियाली नही दिखती है। फिर भी जडे मिट्टी में से ही रस ग्रहण करके सारे वृक्ष को हराभरा रखती है। ऊपर से कितनी ही गरमी पड़ती रहे फिर भी वृक्ष सूखता नहीं है। उस की जडे सुदृढ और गहरी है। धरती मे से रस खीचकर टहनियो तक पहुँचाने की उसमे समता विद्यमान है। उसे शाखाओं की चिन्ता नही होती, वह तो सदा मूल को सुधारने में अपना ध्यान लगाये रखता है।

माली खाद पानी कहाँ देता है? मूल मे, जड में।

तो, यही बात मैं आप लोगो से कह रहा हूँ कि अपने जीवन की सुरक्षा के लिए उसके मूल को सुरक्षित करिये। मूल को सुधारिये। तभी आपको अपने जीवन का सुखमय फल प्राप्त होगा। आप अपनी जीवन की बगिया के माली है। इसकी रक्षा करना आपका सर्वप्रथम कर्त्तव्य है। अपने जीवन के वृक्ष को आप माली की तरह देखिये।

मनुष्य अपने शरीर को ऊपर से देखता है। अपनी सुन्दर काया को देख कर फूला नही समाता है। मनमे सोचता है कि मेरा शरीर कितना सुन्दर है? कितना सुदृढ है? घण्टो घण्टों दर्पण के सामने उसे देखता रहता है। उसे संवारता रहता है। उसका यह सारा प्रयास टहनियो को सीचने के समान है। वह यह नही सोचता कि शरीर पर यह तेज, यह चमक, कहाँ से आ रही है? अभी तक मूल के महत्त्व को उसने नही समझा है। इसी कारण वह बाहरी टीपटाप मे उलझ रहा है। वह इस बात को भूल गया है कि जिस दिन शरीर से मूल अलग हो जायेगा, इसकी सारी सुन्दरता मुरझा जायेगी। वह मूल तत्त्व "आत्मा" है। इस आत्म तत्त्व की सुरक्षा करने से ही जीवन की सुरक्षा होती है। इसकी शक्ति से ही शरीर सुन्दर शरीर है। इसके बिना वह केवल 'शव मात्र" है।

जीवन से खिलवाड़ मत करिये ?

आज का मानव इन्द्रिय पोषण की ओर अधिक लगा हुआ है। शरीर के अग प्रत्यगों के बनाव शृंगार मे ही उसका सारा समय बीत रहा हैं। कभी बालो मे तेल डालता है, कभी आखो मे सुरमा लगाता है। अच्छे-अच्छे वस्त्र पहनता है। परंतु फिर भी उसका जीवन दिनों दिन मुरझा रहा है। उसमें तेज नही है, ओज नहीं है। तनिक सी धूप लगते ही उसकी चमक फीकी पड जाती है। क्यो ?

इसलिए कि उसकी जीवन शक्ति प्रत्येक क्षण क्षीण हो रही है। मूल को

भोजन नही मिल रहा है। जीवन की जडे सूखती जा रही हैं। समूचे शरीर का नियामक आत्मा, विकारो से घिर गया हैं। उसकी वास्तविक खुराक उसे नही मिल पा रही है। इसकी ओर ध्यान देने की विशेप आवश्यकता है। एकान्त रूप से वाहरी तत्वो की ओर ध्यान रखने से जीवन का आन्तरिक मूल तत्त्व "असुरक्षित रह जाता है। जीवन के प्रत्येक भाग मे विकृति आने लग जाती है। अत वाह्य सुधार के साथ-साथ आन्तरिक शक्ति की ओर भी ध्यान दो। कर्तव्य पालन के द्वारा मूल का सिंचन करो। तभी आपको सच्चा सुख प्राप्त हो सकेगा। अपने आध्यात्मिक स्वरूप को भूल कर केवल वाहरी रूप रग का बनाव सुधार किसी भी स्थिति मे लाभदायक नही है।

मूल की ओर ध्यान रखने से जीवन का विकास होगा। मानसिक भावना मे निखार आयेगा! धर्म शास्त्र और धर्म गुरुओ के प्रति सच्ची श्रद्धा जागेगी। ऐसा विचार मनमे कभी नही आयेगा कि—"धर्म स्थान केवल परलोक सुधारने के लिए ही हैं। इस लोक से उनका कोई सम्वन्ध नही है" पौष्टिक आहार से जिस प्रकार शरीर पुष्ट होता है ठीक उसी प्रकार धर्म स्थान मे आकर उपदेश श्रवण करने से आत्मा को पौष्टिक विचार मिलते है। इन विचारो से आध्यात्मिक चेतना पुष्ट होती है। जीवन का संरक्षण होता है। दिन रात के चौवीस घण्टो मे से यदि एक घण्टा भी इस ओर लगा दिया तो जीवन की मूल शक्ति को वडा वल मिलेगा। उसका सुधार होगा। वह दिनो दिन कल्याण के मार्ग पर प्रगति करता चला जायेगा।

वन्धुओ, यदि ऐसी भावना आज के युवावर्ग मे जागृत हो जायगी तो वे शीघ्र ही मूल तत्त्व को पहचान जायेगे। उनका जीवन पुष्पित पल्लवित होकर ससार के जीवो के लिए एक "आश्रय स्थल" वन जायेगा। जिन्हे अपनी मूल शक्ति पर भरोसा होता है वे ही दूसरो को कल्याण के मार्ग पर लगा सकते हैं।

आत्मा से देखिये

चातुर्मास के आरम्भ से लेकर आज तक मैं आपके सन्मुख इसी "मूल तत्त्व" की व्याख्या करता चला आ रहा हूँ। अपनी चमड़े की आखो से आपने अनेक वार अपनी ओर देखा होगा, परन्तु आज तक भी आप अपने समग्र रूप को, समग्र जीवन को नही देख पाये है। इन आंखो से

आपको जीवन दिख भी नही सकता है। यदि जीवन को देखना है तो आत्मा की ज्ञानमयी आंखो से देखिये! तभी आप अपने सही स्वरूप को पहचान पायेगे। इसके लिए जीवन को समझना परम आवश्यक है।

आपके सामने प्रश्न चल रहा था कि :—"किंजीवनम्" अर्थात् जीवन क्या है ? आप जीवन को और उसके मूल को समझना चाहते हैं। मैं भी वही जीवन के मूल की बात आपके सामने रख रहा हूँ। अब तक आपने जीवन की अनेक परिभाषायें देखी है! उनका चितन भी किया होगा ? किन्तु उन परिभाषाओ से आप जीवन के समग्र रूप को नही पहचान पाये है। किसी भी वस्तु के पूर्ण रूप को समझने के लिए, उसकी परिभाषा को समझना आवश्यक होता है। यदि परिभाषा अपने आप मे पूर्ण होती है, सर्वागीण होती है, तो वस्तु का वास्तविक ज्ञान पूर्ण रूप से हो जाता है, अन्यथा अधूरी परिभाषा के कारण स्वरूप का ज्ञान अधूरा ही रह जाता है। जीवन के समग्र रूप को समझने के लिए परिभाषा भी समग्र होनी चाहिये। इसी दृष्टिकोण से आपके सामने एक विशिष्ट परिभाषा रखी गई थी कि :—

"सम्यग् निर्णायकं समतामयञ्च यत् तज्जीवनम्"

इस परिभाषा मे समता शब्द आया है। पहिले उसके भावार्थ को समझ लेना आवश्यक है।

समता क्या है ? इस शब्द का भावार्थ क्या है ?

इस विषय में जब-जब मानव ने कुछ सोचा है, उसे एक नया ही प्रकाश मिला है। समता एक तुलनात्मक शब्द भी है। शांति का प्रतीक भी है। इसका सही चिंतन करने से जीवन को गति मिलती है। जब इसके समझने मे भूल हो जाती है तो जीवन की प्रगति, जीवन का विकास रुक जाता है। समता हमारे जीवन का मूल तत्त्व है! जीवन को विषमताओ से हटाकर—समता की ओर अग्रसर करना ही मानव जीवन का मुख्य लक्ष्य होना चाहिए। आप जो भी कुछ करे देखकर, सोच विचार कर, और विवेकपूर्वक करे। यहां देखने की बात जो कही गई है, उसमे चमडे की आखो का सकेत नही है, यहां तो समता की आखो का सकेत दिया गया है। "समता दर्शन" से देखना ही सही अर्थों में देखना है। आपका दर्शन यदि समतापूर्वक है तो जीवन के लिए सहायक है। इसके विपरीत देखना, हेय माना गया है। मै इसी स्थिति को स्पष्ट करने के लिए आपके

जिनके जीवन को खाये जा रही है। उनके विषय मे कभी आपने कुछ सोचा है ? वे भी तो आपके ही भाई हैं। आपकी समाज के सदस्य हैं। प्रत्येक दुःख सुख मे आपके साथ रहते हैं। उनकी स्थिति का चिंतन करना भी आपका कर्त्तव्य हैं। यह तभी सभव हो सकेगा जव आप समता सिद्धान्त दर्शन का अध्ययन करेंगे ? अपनी आत्मीयता को जागृत करेंगे।

वन्धुओ, थोडा सा ध्यान दीजिये। आज का मानव बाह्य दृश्यो की ओर विशेष प्रगति कर रहा है। वाह्य चिंतन के साथ साथ कुछ आपको आतरिक चिंतन भी करना चाहिये। मन की धाराओ को कुछ भीतर की ओर भी मोड दीजिये! अपने पडौसी भाइयो की दशा सुधारने का प्रयत्न करिये। केवल व्याख्यान सुन लेने मात्र से काम वनने वाला नही है। जो सुना है उस पर आचरण करना भी आवश्यक है, तभी जीवन का कल्याण हो सकता है। *अपने जीवन मे धार्मिक क्राति लाइये!*

वर्तमान के सुन्दर निर्माण से ही भविष्य उज्ज्वल वन सकता है। अपने समाज मे अपने राष्ट्र मे समवेदना की स्फूर्ति भरिये। तभी इन मध्यम वर्गीय लोगो के जीवन मे कुछ सुख का सास आ सकेगा। आपको भी तव ही समता सिद्धान्त का वास्तविक लाभ प्राप्त होगा। मूल की दृष्टि से सभी प्राणी समान है ? सभी के जीवन मे समता गुण विद्यमान है। आप ससार मे भिन्न २ पोशाको और आकृतियो के मानवो को देखते है। उस पोशाक और आकृति के पीछे जो मूल शरीर है, वह सभी मे समान हैं। शरीर से हट कर जब आप मन और आत्मा की ओर देखेंगे तो आपकी वाहरी सभी विषमताऐ समाप्त हो जायेगी। इस स्थिति मे आपको सभी जीव अपने जैसे ही दिखेंगे। आन्तरिक दृष्टि से मूल मे सव एक समान है। जव (हम) सव एक समान हैं तो (हमे) जीवन का आदर्श लेकर चलना चाहिए ? हमारी मूल स्थिति एक जैसी है, हमारी जडे एक समान हैं, तो हमारे कर्तव्य भी एक जैसे ही होने चाहिए, यह तव ही होगा जव हम समता का सम्वल लेकर चलें। समता दर्शन की परिभाषा कोई आज ही आपको नही सुनाई जा रही है। आज से ढाई हजार वर्ष पहिले भी भगवान् महावीर ने कहा था कि :—

सव्व भूयप्प-भूयस्स सम्म भूयाई पासओ।
पिहिया सस्स दन्तस्स पाव कम्मं न वधई॥

दशवैकालिक सूत्र ४ अ०

खडा हुवा है परन्तु हिंसा और असत्य के पथ पर दौड रहा है। इसलिए मैं कह रहा हूँ कि तू ठहर। अपने मन की गति को बुरे कामो की ओर से रोक। इसे अच्छे कार्य मे लगा।

वे महात्मा, सचमुच ही सच्चे महात्मा थे। उनकी वाणी में अपूर्व प्रभाव था। उनके एक एक शब्द में दया और करुणा का रस टपक रहा था। क्षमा का अक्षुण्ण प्रभाव उनके रोम रोम से झलक रहा था। उनके सच्चे प्रभावकारी शब्द डाकू के हृदय मे घर कर गये। क्षण भर में उसका दृष्टिकोण बदल गया। आज तक वह पौद्‌गलिक जगत् में घूम रहा था। महात्मा के ससर्ग से आज उसे अपना अन्तर दिखने लगा। उसकी दृष्टि बाहर से हटकर भीतर की ओर मुड गई। उसके हृदय मे पश्चाताप की अग्नि सुलग उठी। वह सोचने लगा कि—मैंने अज्ञानता वश अब तक इतने पाप किये है। हिंसा, हत्या काण्ड ने मेरे जीवन को कितना कुरुप बना दिया है। मानव हो कर भी मैंने पशुता के काम ही किये है। कितने निरीह, और निर्दोष प्राणियो का वध करता रहा हूँ। आज इस महात्मा के एक वाक्य ने ही मेरी आखे खोल दी है। अब मैं कभी भी ऐसा दुष्कृत्य नही करू गा। आज से सभी जीवन की बुराइयो का परित्याग करता हूँ। इतना कह कर वह महात्मा के चरणो पर गिर पडा। महात्मा ने उसे उठाया, समझाया और समता सिद्धान्ता का निर्मल उपदेश देकर साधु धर्म मे दीक्षित कर दिया। वेश परिवर्तन के साथ साथ उसके जीवन का भी परिवर्तन हो गया। वह महात्मा के साथ वही जंगल में ध्यान लगा कर बैठ गया।

उधर श्रावस्ती नरेश, डाकू से आतकित प्रजा की करुण पुकार सुन कर उसे पकडने के लिए जंगल मे आ पहुचे। जगल को चारो ओर से सैनिकों ने घेर लिया। महाराजा स्वय डाकू को पकडने के लिये आगे बढे। थोडी दूर जाकर उन्होने देखा, एक महात्मा ध्यानस्थ खडे है। राजा ने समीप जाकर महात्मा के चरणो मे विधिपूर्वक वन्दना नमस्कार किया। ध्यान का काल समाप्त होने पर महात्मा ने राजा से जगल मे आने का कारण पूछा तो उसने उत्तर दिया कि—

महात्मन्! इस जगल मे "अंगुलिमाल" नामक एक भयकर डाकू रहता है। उसने मेरे सारे राज्य को आतकित कर रखा है। आज तक उसे कोई पकड नही पाया है। आज मैं प्रतिज्ञा बद्ध होकर उसे पकडने आया हूँ। उसके अन्याय-अत्याचार सीमा लाघ चुके हैं। अब मैं उसे उसकी करनी का दण्ड अवश्य ही दूगा।

राजन् ! यदि वह डाकू अपना कुकृत्य छोडकर साधु बन जावे और प्रायश्चित लेकर समता मे स्थित हो जावे तो तुम क्या करोगे ? महात्मा ने राजा के विचारो को कुरेदते हुए कहा ।

महामुनिराज ! आप जो कुछ कह रहे हैं, यह कदापि सम्भव नही है । वह दुर्दान्त दस्यु अपने पापों का प्रायश्चित लेकर साधु बन सकता है, ऐसा मुझे किंचित् भी विश्वास नही है । राजा ने कहा ।

महात्मा ने कहा—राजन् ! इस ससार मे असम्भव कुछ भी नही है । मनुष्य को निराशावादी नही बनना चाहिए । प्रत्येक असम्भव, सम्भव बन सकता है । तुम कल्पना करो कि यदि ऐसा हो जाय तो तुम क्या करोगे ?

भगवन् ! यदि वह साधु बन गया होगा, तो मैं जिस प्रकार आपको वन्दना करता हूँ, ठीक उसी प्रकार उसके चरणो मे भी वन्दना, नमस्कार करूंगा । राजा ने विस्मित होते हुए उत्तर दिया ।

राजन् ! जिस डाकू को पकडने के लिए तुम जगल मे ससैन्य आये हो वह पकडा जा चुका है । उसे पकडने के लिए अब अधिक परिश्रम करने की आवश्यकता नही है ।

महात्माजी के वचनो मे एक निश्चयात्म तथ्य था । राजा को अब भी निश्चय नही हो पा रहा था । यह विस्मित सा होकर बोला—भगवन् ! वह कहा है ? उसे किसने पकड लिया है ?

शरीर से नही वह मानसिक स्थिति से पकडा गया है । अब वह अपनी आत्म साधना मे तल्लीन है । यही मेरे पास बैठा है । महात्मा ने कहा ।

राजा को विश्वास नही हो रहा था । प्रत्येक क्षण उसका आश्चर्य बढता जा रहा था । वह बदले हुए 'अंगुलिमाल" को अपनी आखो से देखना चाहता था । महात्मा उसके विचारो की ऊहापोह को समझ गये । उन्होंने कहा—राजन् ! मैं ठीक कह रहा हूँ । यह तुम्हारे सम्मुख जो साधु वेश मे बैठा हुआ है, यही "अगुलिमाल" है । अब यह डाकू नही रहा है, यह साधु हो चुका है । मेरे नियत्रण मे इसने आत्म समर्पण कर दिया है । अच्छा निमित्त पाकर इसके जीवन मे परिवर्तन आगया है । आज यह अपने अन्तरलोक मे रमण कर रहा है । अब तक बाहरी पौद्गालिक वैभव की ओर दौड रहा था किन्तु पुण्य का निमित्त मिलने से उसकी रुचि अपने "आत्मिकधन" की ओर हो गई है ।

राजा चुपचाप सब कुछ सुनता रहा। आज उसने अपूर्व परिवर्तन देखा है। उसकी श्रद्धा जाग उठी। क्षण ही क्षण मे उसका मस्तिष्क मुनि "अगुलिमाल" के चरणो मे आगया। यह समता दर्शन का चमत्कार है। हमें पाप से घृणा अवश्य करनी चाहिए, परन्तु पापी से नही। इस सिद्वात को जीवन मे उतारेगे तो अपनी सभी विषमताओ को समता के रूप में बदल सकते हैं। विषमता के कारणो को मिटायेगे तो समता का आदर्श अपने आप सम्मुख आजायेगा। इसके लिए आपको एक "संवेदनशील समाज" नये समाज का निर्माण करना होगा। तब ही आप सुख शांति का सास ले सकेगे। अपनी इच्छानुसार चलने वाली समाज व्यवस्था ने मानव की शाति भंग करदी है। हमें इच्छाओं के अनुसार नही चलना है अपितु इच्छाओ को अपने अनुसार चलाना है। इसके लिए समूचे समाज मे क्राति लानी है। सभी को समता दर्शन का महत्त्व समझाना है। विषमता का चश्मा अपनी आखो पर से उतार देना है। अपनी दृष्टि के अनुसार चश्मे का नम्बर लेना है। तभी सही स्थिति का दर्शन होगा। अन्यथा बिना नम्बर के चश्मे से धरती हिलती दीखती रहेगी। हमारी श्रद्धा कही टिक नही पावेगी। अश्रद्धा के जीवन को तो आप जानते ही है, वह इधर-उधर भटकता रहता है।

मानव और मांसाहार

बन्धुओ, मैं आपके सन्मुख जिन अरिष्टनेमि भगवान् की प्रार्थना रख गया हूँ। वे बाइसवे तीर्थङ्कर है। पूर्ण आत्मद्रष्टा है। यह वृतान्त उनके विवाह के समय का है। भोगावली कर्म बडा बलवान् होता है। कुछ कर्म बधन ऐसे होते हैं जो भुक्त होने पर ही मानव को मुक्त होने देते हैं। उन्हे भोग लेने पर ही छुटकारा होता है। इसी कर्म व्यवस्था के अन्तर्गत आज भगवान् को इच्छा न होते हुए भी दूल्हा बनना पड़ रहा है। यथा समय बारात सजी और जूनागढ की ओर चल पडी। कहते है कि बारात मे छप्पन करोड यादवो के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। उनमें कुछ लोग मासाहारी भी थे। उनकी व्यवस्था के लिए महाराजा उग्रसैन ने कुछ पशुओ को बाड़े मे बन्द करवा दिया था। आवश्यकता होने पर उन्हे मार कर काम में ले लिया जावेगा। आप जानते ही है कि ससार मे जीवन सभी को प्यारा लगता है। मृत्यु से सभी घबराते हैं। मरना कोई भी नही चाहता। अपनी मृत्यु को सामने देखकर सारे पशु भाँय भाय चिल्ला रहे हैं। उधर प्रभु की वर यात्रा आ रही है। प्रभु ने दुख से आर्त पशुओं को

देखा। उनकी करुण पुकार सुनी। उनका हृदय दया से द्रवित हो उठा। सारी स्थिति का पता लगने पर उन्होने कहा—मेरे विवाह प्रसंग पर इतने पशुओ का वध, यह मुझे स्वीकार नही है। मनुष्य कितना जिह्वा लोलुप हो गया है। उसका कितना पतन हो रहा है। मनुष्य होकर वह मास खाये, यह कितना घृणित कार्य है। रक्षक ही आज भक्षक बन रहा हैं। इससे बढकर मानवता का और क्या अपमान हो सकता है। ससार मे जितने भी प्राणी है, सभी के आहार निश्चित हैं। उनमे मनुष्य की भी अपनी एक आहार संहिता है। उसमे मनुष्य के लिए मासाहार का कही निर्देश नही है। मास भक्षण तो एक राक्षसी काम है इसे करने वाला सचमुच ही राक्षस होता है। जिस प्रकार मनुष्य दूसरे जीवो को मारकर खाता है उसी प्रकार यदि कोई उसे मारकर खाये तो उसे कैसा लगेगा? क्या उसे इससे दु ख नही होगा। जो व्यवहार वह अपने लिए चाहता है वह दूसरो के लिए क्यो नही करता है? इन पशुओ ने किसी का क्या बिगाडा है? इन्हे व्यर्थ ही मृत्यु के मुख मे क्यो धकेला जा रहा है। यह तो बडा भारी पाप है। अपने नाम पर इस पाप को मैं कभी नही होने दूंगा। सारथी उनकी भावना को समझ गया। उसने तुरन्त सभी पशुओ को बधन मुक्त कर दिया। सभी पशु बच गये। राजकुमार अरिष्टनेमि ने समता की दृष्टि से पशुओ को देखा। तभी तो उनकी रक्षा हो सकी। भगवान् ने पशुओ की आत्मा को अपनी आत्मा के समान समझा। यही से वे त्याग के मार्ग पर चल पडे। गिरनार पर्वत पर जाकर आध्यात्मिक साधना मे तल्लीन हो गए।

बन्धुओ, आप विचार करिये। यह सभी समागम कैसे मिला? यदि आप अन्तरग दृष्टि से चिन्तन करेंगे तो यही निष्कर्ष निकलेगा कि यह सभी "समता दर्शन" का प्रभाव है। प्रभु ने आत्म तुलना की दृष्टि से सभी जीवो को देखा तभी तो उनके हृदय मे पशुओ के प्रति करुणा के भाव जागृत हुए। बाहरी दृश्यमान् जगत् की वस्तुएँ एक निश्चित सीमा तक ही उपादेय रहती हैं। अन्त मे उन्हे छोडना ही पडता है। आपने देखा होगा—बहिनें "गणगौर" बनाती हैं। उसे सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषण पहनाती है। अपने सिर पर उठाकर उसे बाजारो मे गाती हुई निकलती हैं। किन्तु कब तक? केवल दो चार दिन ही तो उनकी यह प्रक्रिया चलती है। इसके बाद उस गणगौर को पानी आदि मे छोड दिया जाता है। आज इस मानव जीवन की भी यही स्थिति चल रही है। शारीरिक टीम टाम

मे पूरा ध्यान दिया जाता है, परन्तु समय आने पर वह साज-सज्जा की सामग्री छोड देनी पड़ती है। इस बाह्य सामग्री के संग्रह से कोई आत्मिक सुख प्राप्त नही होता, हा, उसे छोडते समय दु.ख अवश्य होता है। अतः यदि आप सच्ची शाति प्राप्त करना चाहते है तो आध्यात्मिक गुणो की ओर विशेष रूप से लक्ष्य दीजिये। तभी आपकी आत्म साधना सफल होगी।

कथानक से प्रेरणा लो

बन्धुओ, आपके सामने कमल सैन का कथानक चल रहा है। एक राजकुमार होकर भी वह समता सिद्धान्त की स्थिति मे चल रहा है। किसी नारी के क्रन्दन-स्वरो ने उसके हृदय को द्रवित कर दिया है। यह कौन पुकार रहा है ? और क्यों पुकार रहा है ? कुछ ऐसे ही प्रश्न उसके मन में समाधान के लिए उभर रहे है। अपनी शंका की शान्ति के लिए वह उस अज्ञात स्वर के पीछे चल पडा। कुछ ही क्षणो के पश्चात् उसने आर्तनाद करती हुई एक तरुणी को देखा। वह उसके पीछे-पीछे चला जा रहा है। थोड़ी देर चलने के बाद वह तरुणी एक भव्य भवन मे प्रवेश करती हुई दीख पडी। कुमार यह सब कुछ देख कर बडे असमजस मे पड़ गया। यह कौन स्त्री है ? जगल मे यह भव्य भवन कहाँ से आगया ? इस सभी रहस्य को वह जानना चाहता है। उसका संकल्प है कि यदि इस नारी पर कोई संकट आया है तो मैं उसका निवारण अवश्य ही करूंगा। आत्मिक तुलना मे यह मेरी बहिन के समान है। संकट के समय इसकी रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है। सकट के समय कर्त्तव्य से मु ह मोड लेना कायरता है। मैं वीर पुत्र हूँ। समता मेरे जीवन का आदर्श है। अतः शक्ति भर मैं इसकी सहायता करूंगा।

राजकुमार किस प्रकार उस तरुणी से वार्तालाप आरम्भ करेगा, और तरुणी प्रत्येक प्रश्न का क्या उत्तर देगी ? इसका विवेचन यथा समय आपके सन्मुख रखा जायगा। यहाँ तो इतना ही समझ लेना आवश्यक है कि—समता ही जीवन है और विषमता मृत्यु है। यदि सचमुच ही आप लोग मृत्यु से जीवन को बचाना चाहते है तो समता दर्शन का आराधन कीजिये। तभी आपका जीवन मंगलमय बन सकेगा।

लाल भवन
१३ अगस्त



अपना स्वरूप

प्रार्थना

जीवरे तू पार्श्व जिनेश्वर वन्द
जड चेतन मिश्रित—मिश्रित पणे रे
कर्म सुभासुभ थाय—
ते विभ्रम जग कल्पना रे
आत्म, अनुभव न्याय ॥
जीवरे तू पार्श्व जिनेश्वर वन्द ॥

आज प्रभु पार्श्वनाथ भगवान की प्रार्थना की गई है। प्रार्थना की कडियो मे पार्श्वनाथ भगवान को अनेक नामो से पुकारा गया है, जिसमे चिन्तामणि पार्श्वनाथ के नाम से प्रभु को विशेष रूप से पुकारा जाता है। इस प्रसिद्ध नाम से मानव प्रभु को अधिक स्मरण करता है। कारण क्या है? चिन्तामणि पारसनाथ भगवन् चिन्ता के तमाम अगो को नष्ट करने वाले हैं। चिन्ता, के जितने अग हैं, चिन्ता की जितनी शाखाऐ हैं उन सब को मिटाने वाले हैं। इसीलिये चिन्तामणि के रूप मे पारसनाथ को अधिक याद किया जाता है। चिन्तामणि एक रत्न है। इस चिन्तामणि रत्न के पास बैठकर मानव जैसी जैसी कल्पनाएँ करता है उस उस कल्पना के अनुरूप फल की उपलब्धि होती है। यदि वह उसके पास बैठकर धन की कामना करता है तो धन प्राप्त होता है। यदि वह अन्य पदार्थो की याचना करता है, उनकी कामना करता है तो वैसा फल उपस्थित हो जाता है। कामना मनुष्य के मन के भीतर रहने वाली भावना है उस भावना मे अनेक तरह की तरंगे हैं और अनेक तरह की चिताएँ हैं। उन चिन्ताओ से मनुष्य चिन्तित रहता है और उन चिन्ताओ के जाल मे इस प्रकार उलझ जाता है कि उसके लिये उस जाल को तोड़कर बाहर निकलना अत्यन्त कठिन हो जाता है। इन समस्त चिन्ताओ से मुक्ति पाने के लिए ही वह भगवान

चिन्तामणि पार्श्वनाथ की शरण मे जाना चाहता है, किन्तु उसके जीवन की निर्बलता उसे प्रभु के चरणो मे नही आने देती। वह विवशता की इन घडियो मे भगवान चिन्तामणि का स्मरण कर रहा है और कह रहा है कि हे प्रभो ! मुझे चारों ओर से चिन्ताओ ने घेर लिया है आपका नाम चिन्ता हरण है, फिर मेरी चिन्ताएँ मुझे दु खी क्यो कर रही है ? मैं इनसे छुटकारा चाहता हूँ।

उसकी यह प्रार्थना फलवती नही हो रही हैं। क्योकि वह अपने स्वलम्बन से भटक गया है जब तक वह अपनी चिन्ताओ के कारणों को नही मिटा पायेगा तब तक उसकी समस्त कामनाएे, समस्त कल्पनाएे "अभ्र पुष्प विडम्बना वत्" असफल ही रहेगी। मानव की इस विवश स्थिति मे कवि उद्बोधन देता हुआ कहता है कि—

"जड चेतन मिश्रित पणे रे
कर्म शुभाशुभ थाय"

जड और चेतन की मिश्रित अवस्था मे ही, शुभ-अशुभ संकल्प विकल्प जन्म लेते है। जब तक चेतन जड के जाल मे फसा रहेगा तब तक उसे सच्चा आत्मिक सुख प्राप्त नही हो सकता। जड एक आवरण है जो चेतन के वास्तविक प्रकाश को रोक रहा है। वर्ण, गध, रस, स्पर्श आदि से संयुक्त जड पुद्गलों में फँसा हुआ हो वह दुःख पा रहा है। जब समता सिद्धान्त दर्शन की आन्तरिक चक्षुओ से वह अपने इन दुःख के कारणों को जान जायेगा, तभी इनसे छुटकारा पाने का प्रयत्न कर सकता है। आत्मिक अनुभव की सही स्थिति के बिना उसे वास्तविक सुख प्राप्त नही हो सकता। उसकी चिन्ताएे समाप्त नही हो सकती। अपने दु.ख को घटाने के लिए वह अनेक पदार्थों का आश्रय लेता है, अनेक प्रयास करता है। वह सोचता है कि यह मेरा दुःख और दुर्भाग्य कैसे दूर हो ? कैसे हटे ? कैसे मैं अपने जीवन को सदा सुख की स्थिति मे पहुँचा कर, निर्मल और पावन करूँ। मेरा यह जीवन सुखो से ओत प्रोत बना रहे। इस प्रकार वह प्रभु के चरणो मे बैठकर चिन्तामणि के रूप में उन्हे याद करता है। भगवान का बतलाया हुआ जो स्वरूप है वह आपकी स्थिति से थोडा परे है। मानव कहता है—हे प्रभो, आप प्रार्थना करने वाले को कुछ देते हो, प्रार्थी व्यक्ति की इच्छाओं की पूर्ति करते हो लेकिन यदि प्रभु के उपदेश उस प्रार्थना करने वाले मानव के मन और मस्तिष्क मे ठीक तरह से उतर जाय, और वह प्राथी प्रार्थना करते-करते अपने जीवन के स्वरूप का ठीक तरह से अवलोकन कर ले तथा

इस जीवन के अन्दर जड तत्त्व का कितना सम्बन्ध है और चैतन्य का कितना प्रकाश है जड और चेतन की मिश्रित अवस्था मे इस जीवन की घडियाँ कैसे गुजर रही है ? इस प्रकार का अवलोकन यदि वह जीवन की परिभाषा के अन्तर्गत समता दर्शन के साथ कर लेता है तो उसके जीवन मे अशुभ वृत्तियो का अभाव होकर ही शुभ का प्रादुर्भाव होगा। जब आत्मा शुभ कर्मो का उपार्जन करेगी जब शुभ ही शुभ की स्थिति बनेगी। तब शुभ ही शुभ का शुभफल प्राप्त होगा। जिससे कामनाओ की पूर्ति होगी, भावनाएँ तीव्र बनेगी, और पवित्र भावो के माध्यम से आत्मा ही चिन्तामणि के रूप मे प्रगट होगी यही अन्तर्मन का स्वरूप जीवन का स्वरूप है। जीवन की घडियो मे मनुष्य उसका ठीक अवलोकन करे और समता दर्शन मे उसे देखे। उस समय अपने अन्दर ही चिन्तामणि का दृश्य उपस्थित हो जायेगा। चिन्तामणि पार्श्वनाथ की प्रार्थना को अपने हृदय मे रख कर वह उसमे लीन हो जाये तो उसका अपना वास्तविक स्वरूप प्रकाशमान हो उठेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि जो चिन्तामणि पार्श्वनाथ भगवान के तुल्य यह मानव जीवन है उस मानव के जीवन मे जो एक दिव्य स्वरूप है, उस दिव्य स्वरूप का अवलोकन, मानव, आन्तरिक दृष्टि से परे होने के कारण नही कर पा रहा है। जीवन का समग्र रूप यदि देख ले तो उसका प्रयास सफल हो जाये। अपना ही जीवन उसे चिन्तामणि के समान दिखने लगेगा। जैसे चिन्तामणि रत्न कुछ देने वाला नही है और न ही चैतन्य चिन्तामणि पार्श्वनाथ ही कुछ देते हैं।

आप अपने से भिन्न किसी चिन्तामणि से कामनाओ की पूर्ति चाहते हैं यह आपका भ्रम मात्र है। चिन्तामणि तो आप स्वय ही हैं अपने आपको सम्भालिये, अपने आप को पहचानिए, चिन्तामणि रत्न का प्रभाव हस्तामलकवत् आपके सम्मुख होगा। समता दर्शन की वास्तविक स्थिति के दर्शन से प्राप्त चैतन्य का स्वरूप ही चिन्तामणि है, उसे हाथ से मत जाने दीजिए इसके अतिरिक्त और किसी प्रकार से आपको सफलता प्राप्त होने वाली नही है। आज का युग विज्ञान का युग है राष्ट्र मे नित नये आविष्कारो का उदय हो रहा है। आज का विज्ञान माइक्रोस्कोप—(दूरवीक्षण यन्त्र) तक पहुँच चुका है। यंत्रो के प्रयोग ने आज भौतिक द्रव्यो की दूरी को अत्यन्त समीप लाकर रख दिया है। दूरवीक्षण यन्त्र या माइक्रोस्कोप से मानव बहुत दूर की चीज जैसी है वैसी ही देख सकता है। वस्तु का यह सामान्य स्वरूप भी दर्शन है। शास्त्रीय दृष्टि से हम अवलोकन करते हैं तो आत्मा के साथ जड कर्म वर्गणा का सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। जैसे ज्ञाना-

वरणीय कर्म ने ज्ञान को आच्छादित किया है वैसे ही दर्शन की शक्ति को दर्शनावरणीय कर्म ने आच्छादित किया है। सामान्य ज्ञान को भी दर्शन की स्थिति मे माना है। चाहे माइक्रोस्कोप से देखा जाये या हमारे इन चर्म चक्षुओ से देखा जाये, वस्तु को चश्मा लगाकर देखा जाये, या बिना चश्मे के। आँखो की जितनी देखने की क्षमता है उतना तो दिखेगा ही। इस दिखने से सामान्य स्वरूप ही प्रत्यक्ष होता है। यह सामान्य स्वरूप दर्शन है।

आप तत्वार्थ सूत्र की दृष्टि से देखिये। कहा है कि—

"तत्वार्थ श्रद्धान सम्यग् दर्शनम्"

वस्तु के सामान्य स्वरूप को देखना दर्शन है। तत्त्व के ऊपर श्रद्धा करना उसे भी दर्शन माना गया है। तीसरी दृष्टि से भी अवलोकन करे और ज्ञान की दृष्टि से भी मनुष्य देखे तो वह भी एक अपेक्षा से, दर्शन शब्द की व्युत्पत्ति से, दर्शन है। तीनो दर्शन मनुष्य के पास है। तीनो सम भी बन सकते है और विषम भी बन सकते है। माइक्रोस्कोप से दूर की वस्तु को सामान्य रूप से देखे तो आभास होता है कि यह वस्तु ऐसी है और उसका वह निर्णय करके आगे चल पडता है लेकिन यदि उसकी विशेष खोज होती है तो वह निर्णय करता है कि उसने जो पहले देखा था वह सामान्य रूप से था और वह गलत है।

भौतिकता की घुड़दौड़

चन्द्रमा के विषय मे मै कुछ कहना चाहता हूँ। चन्द्रमा पर जब अपोलो ११ नही पहुँचा था तो वैज्ञानिको का सिद्धान्त था कि हम यह जो चन्द्र का पिण्ड देख रहे है यह आकाश का तत्त्व नही है। किन्तु यह हमारा ही पडौसी है और पृथ्वी का टुकडा है। पृथ्वी को वैज्ञानिको ने ग्रह माना है और इसी पृथ्वी का टुकडा टूटकर चन्द्रमा के रूप मे आ गया। प्रशान्त महासागर जहाँ कि पानी ही पानी भरा हुआ है, इसी स्थल का पृथ्वी खण्ड टूटकर आकाश मे चला गया वहाँ जाकर सूर्य से प्रकाशित होने लगा और जिस प्रकार पृथ्वी चमकती है उसी प्रकार यह भी चमकने लगा। इसी को दुनिया ने चान्द का नाम दे दिया। यह स्थिति अपोलो ११ के चान्द पर उतरने से पहले की है, ऐसा वैज्ञानिको ने सामान्य दृष्टि से एक प्रकार का निर्णय किया था। लेकिन जब अपोलो ११ वहाँ पहुँच गया, वहाँ से जब पत्थर और अन्य सामग्री लेकर वैज्ञानिको की प्रयोग-

शाला मे आया, और वैज्ञानिको ने उसका परीक्षण किया तो उनको एक विशेष दर्शन का ज्ञान हुआ। तब उन्होने आगे का अनुसन्धान किया। नही, नही हम सोचते थे कि चान्द पृथ्वी का टुकडा नही है। यह तो आकाश से सूर्य का टूटा हुआ टुकडा है अतः सूर्य का पिण्ड है। यह अपोलो ११ की रिपोर्ट आने और परीक्षण करने के बाद का कथन है। पहले दूरवीक्षण यन्त्र से देखा हुआ ज्ञान गलत हुआ और बाद मे अपोलो की रिपोर्ट और वहां से लायी हुई सामग्री के परीक्षण से यह ज्ञान ठीक प्रतीत होने लगा। लेकिन दूसरे वैज्ञानिको का कहना है कि यह सूर्य का टुकडा नही है यह तो बादलो का घनीभूत पिण्ड है। कहने का मतलब यह है कि दूर से देखी हुई चीज कभी-कभी भ्रान्ति भी उत्पन्न कर देती हैं। दूर की चीज चाहे उप-नेत्र चश्मे से देख, चाहे दूरवीक्षण यन्त्र से और चाहे सामान्य आंखो से देखे हमारे उस देखने मे भी भ्रान्ति हो सकती है। और विषम रूप आ सकता है।

आज विश्व मे चारो ओर भौतिकता की घुडदौड हो रही है। धरती से आकाश तक वैज्ञानिक खोजो का ताता लग रहा है। पृथ्वी का पुत्र आज आकाश निवास की बातें कर रहा है। उसने धरती का कोना-कोना छान मारा है। कभी-कभी उसे अपनी सफलता पर बडी प्रसन्नता हुई है। किंतु ज्योही उसके कानो मे किसी दूसरे वैज्ञानिक की नई खोज की ध्वनि पडी कि वह एकदम खिन्न चित्त हो जाता है। क्या आपने कभी सोचा है कि ऐसा क्यो हुआ ? उसका सुख एकदम दुःख मे परिणत क्यो हो गया ? इसका उत्तर सीधा सा है। उसकी सफलता अधूरी रही है। उसमे पूर्णता नही है। मनुष्य का जीवन पूरा हो जाता है पर भौतिक सफलता कभी पूर्ण नही होती। बाहर की सफलताओ का सम्बन्ध इच्छाओं से होता है, और इच्छाये कभी पूर्ण नही होती। शास्त्र मे कहा है कि :—

"इच्छाहु आगास समा अणतिया,"

इच्छाये आकाश के समान अनन्त होती हैं, उनका कभी अन्त नही होता एक इच्छा को पूर्ण करने का प्रयत्न करिये दूसरी इच्छा मुंह उभार लेगी। यह इच्छाओ का नाता ही जाल बनकर जीवन के लिए जजाल बन जाता है। यह जजाल किसी और का बनाया हुआ नही है, यह तो अपनी ही भूलो का परिणाम है, अनात्म तत्त्वो की अभिलाषा ने मानव को पीछे की ओर धकेल दिया है, अपना वास्तविक स्वरूप हमसे पिछड गया है। हम और हमारी पौद्गलिक इच्छाये भिन्न-भिन्न दो अवस्थाये हैं, उन्हे समझना

ही समता सिद्धान्त दर्शन का मुख्य लक्ष्य है। इस लक्ष्य तक वही पहुँच सकता है, जिसका आत्मिक ज्ञान कुछ मात्रा मे जागृत हो गया हो।

हा तो मै कह रहा था कि अपने सुप्त ज्ञान को जगाइए। अज्ञान का अवरण हटेगा तभी ज्ञान जागेगा। इसके जागते ही आपका चैतन्य स्वरूप निखर उठेगा। तब आप अन्धकार से मुक्त हो जायेगे। आध्यात्मिक प्रकाश मे आपको अपना हित अहित सब कुछ दिखने लगेगा। यहा आकर आप विवेक के मुख्य द्वार पर आ खडे होगे। यह ससार और इसके सुख आपको अपनी ओर नही खीच पायेगे। बात ठीक भी है—असली दूध, घी लेने पर आटे का धोवन कौन पीयेगा।

बन्धुओ! इस जड चेतन निर्मित अवस्था मे ही आत्म अनुभव के न्याय को देखे और उस न्याय को देखने के लिए समता के उस दूरवीक्षण यन्त्र की व्यवस्था यथा स्थान जमा ले। उसकी व्यवस्था यदि ठीक नही बिठायी गयी तो आप जीवन के स्वरूप को सही रूप मे ठीक से नही देख पावेगे। जिसके बिना आप चैतन्य का ज्ञान-विज्ञान कुछ भी प्राप्त नही कर सकेगे। आप अपने लक्ष्य से भटक चुके है अतः सर्वप्रथम आपको दृढता के साथ अपना लक्ष्य निर्धारित करना है।

विद्यार्थी अध्ययन की दृष्टि से शाला मे पहुचता है और शाला मे पहुँच कर लक्ष्य बनाता है कि मुझे एम० ए० का अध्ययन करना है, इसके लिए वह अध्यापक के पास जाता है। वह कहता है कि मैं एम० ए० के लक्ष्य से उपस्थित होना चाहता हूँ। वह यह नही कहता है कि मास्टर साहब मैं आपके स्कूल मे आया हूँ मेरे लिए एम० ए० का प्रश्न बहुत बडा है। इसलिए आप अपने एम० ए० के रूप मे मुझे वह निकाल कर दे दे। छात्र ऐसी माग क्यो नही करता? वह तो यह कहता है कि एम० ए० का स्वरूप कैसे प्राप्त हो। वह यह सोचता है कि मास्टर साहब के बताये हुए मार्ग पर चलकर प्रयत्न करने से ही एम० ए० की शक्ति अपने मे प्राप्त कर पाऊंगा। इस दृष्टि से छात्र प्रथम कक्षा में प्रवेश करता है। आत्म विश्वास रखता है कि यह वर्णमाला है जिसको मैं सीख रहा हूँ वही एम० ए० के लक्ष्य तक पहूँचा देगा। वर्णमाला को हृदय मे स्थान देकर अपनी आत्मा मे एक लक्ष्य स्थिर कर लेता है। एक धुन रहती है उसकी कि मै एम० ए० मे पहुँचूँ और डिग्री प्राप्त करूँ। जिसके सामने यह लक्ष्य बन जाता है वह छात्र एक दिन एम० ए० तक पहुँच कर एम० ए० की डिग्री प्राप्त कर लेता है। उस छात्र के लिए रात और दिन एक समान

रहते हैं। रात दिन एक ही धुन रहती है। कभी-कभी स्वप्न मे भी दिन मे पढ़े पाठ का उच्चारण करने लग जाता है। यदि लक्ष्य पर पहुँचने के लिए लक्ष्य का निर्धारण किये बिना ही वह इधर-उधर मन को डोलायमान करके खेल कूद आदि मे लग जाता हैं तथा उसे जो भी अध्ययन कार्य दिया जाता है उसको भली प्रकार ग्रहण नही कर पाता तो वह अपनी कक्षा मे अनुत्तीर्ण हो जाता है। अपने निर्धारित एम० ए० के लक्ष्य तक पहुँचना उसके लिए कठिन हो जाता है। व्यवहारिक जीवन मे छात्र का उदाहरण है। छात्र के समान हमे भी सर्वप्रथम अपना लक्ष्य निर्धारित करना है हमारा अध्ययन समता सिद्धात दर्शन के धरातल पर होना चाहिये।

सौन्दर्य का मोह

आपको अपने हृदय मे यह बात पूर्ण विश्वास पूर्वक जमा लेनी चाहिये कि हम जैसा सकल्प करेगे, जैसा विचार करेगे, जिस प्रकार समता दर्शन का सहारा लेगे, जिस ढग से सोचगे वैसे ही बन जायेगे। ऐसी स्थिति मे हमे सन्देह से दूर रहना आवश्यक है। मनुष्य का सकल्प जब इतना दृढ बन जाता है तब वह अपने जीवन मे जो भी पाना चाहता है वही उसे मिल पाता है। जम्बू चरित्र मे एक गृहस्थ के जीवन का प्रसग आया है। वह अपना गृहस्थ जीवन बीता रहा था। उसमे रहते हुए उसने अपने जीवन मे दर्शन के कुछ सिद्धात तो बना लिये परन्तु वह समता दर्शन को प्राप्त नही कर पाया। उसने यह समझा कि जीवन के लिए विवाह होना आवश्यक है। पत्नी की प्राप्ति की ओर उसकी भावना बढी, उसके चिन्तन का झुकाव उसी ओर चल पडा। उसे आसक्ति ने जकड़ लिया और उसके सकल्प विकल्पो का ताता उसी ओर बढने लगा। पत्नी का रूप सौन्दर्य उसकी आंखो मे झलकने लगा। इस समय वह अपने [illegible] [illegible] से पिछड गया है। परिणामत यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी के अनुसार उसे पत्नी प्राप्त हो गई अपनी पत्नी के रूप मे उसकी आसक्ति इतनी बढ गई कि वह सदा यही सोचता रहता था कि मेरी पत्नी का रूप सौन्दर्य सदा सर्वदा उसी प्रकार का आकर्षक बना रहे। ऐसी मनस्थिति और भावनाओ मे उलझा हुआ, वह एक दिन रोगग्रस्त हो गया और धीरे-धीरे उसका रोग असाध्य रोग की स्थिति पहुँच गया। इस समय भी उसका ध्यान प्रभु की ओर नही था और न उसका ध्यान अपने आत्मीय चिन्तामणि की ओर था। उसका ध्यान न जीवन के वास्तविक स्वरूप की ओर था। वह तो सर्वतो भावेन यह देख रहा था कि मेरी पत्नी कितनी [illegible]

वान है, उसका रूप कितना अनुपम है। सयोगवश उन्ही दिनों उसकी पत्नि के सिर मे फोडा हो गया। जिसके सिर मे फोडा हो जाता है उसका रूप सौन्दर्य विगड जाता है। यहा यह समझ लेना आवश्यक है कि जिस मनुष्य की दृष्टि जिसका दर्शन मृत्यु पर्यन्त बुरा वना रहता है, समता के साथ नही रहता है, वही व्यक्ति पत्नी के रूप को ही अपने जीवन मे महत्वपूर्ण स्थान देता है। यही दशा उसकी हो गई। अन्तिम घडिया चल रही है, आयुष्य समाप्त होने वाला है, अगले जन्म का प्रसग सन्मुख है। आयुष्य-बंध के समय पर भी उसकी यही भावना थी, यही सकल्प था कि मेरी पत्नी का रूप ही सव कुछ है। उस समय उसके जीवन दर्शन का मोड विपरीत था। उसके जीवन को विपमताओ ने घेर लिया था। परिणाम-स्वरूप आयुष्यवध हुआ और मनुष्य जीवन को समाप्त कर वह अपनी पत्नी के फोडे मे, कीडे के रूप मे जाकर उत्पन्न हो गया। आप सोचिए उसने क्या फल प्राप्त किया, वह कहा से कहाँ पहुच गया। उसने अपने जीवन के लिये क्या परिणाम प्राप्त किया? उसे अपनी करनी का यह फल प्राप्त हुआ। आप समता के साथ सोचिये। दुनिया के पदार्थों के पीछे मनुष्य को दीवाना नही वनना चाहिए। उनके पीछे लगकर उसे हाय-हाय नही करनी चाहिये। मनुष्य को इन पदार्थों के साथ सम भाव से चलना चाहिये। यदि आप अपने वर्तमान मे समभाव से चलेगे तो इसी जीवन मे आपको आनद और उल्लास का अनुभव होगा। जीवन को सर्वांगीण मुखी वनाने के लिए उसकी महत्वपूर्ण स्थिति का सरक्षण करना आवश्यक है। प्रसंगवश आपके सम्मुख एक शास्त्रीय रूपक रख रहा हूँ।

एक महाराजा थे। सासारिक पदार्थो की शुभ-अशुभ प्रवृत्तियो के कारण उनका मन सदा अव्यवस्थित रहता था। अच्छे पदाथ प्राप्त होने पर उन्हे जितना सुख का अनुभव होता था, वुरे पदार्थो को पाकर वे उतने ही खिन्न हो जाते थे। शुभ-अशुभ का सघर्ष उन्हे सदा डावाडोल वनाये रखता था। जहा कुछ अच्छे पदार्थ सामने आये, वे प्रसन्न हो उठते। इसके विपरीत वुरे पदाथ पाकर उन्हे रोना आ जाता था। शुभ की प्रशसा और अशुभ की निन्दा यही उनके जीवन मे मुख और दुख के कारण थे। वे "क्षणे रुष्टाः क्षणे तुष्टाः" वाली कहावत को चरितार्थ कर रहे थे। उनके एक दीवानजी थे। वे वडे ही चतुर और पदार्थो की वस्तु स्थिति के ज्ञाता थे। उन्हे सत्य और असत्य दोनो का ज्ञान था। जव कभी वार्तालाप का प्रसग आता तो महाराज दीवानजी से प्रश्न करते, देखिये यह कैसी हवेली है? कैसा मुन्दर भवन है? दीवानजी कहते राजन? यह पदार्थों का

स्वभाव है, वस्तु का स्वरूप है। अच्छे से बुरा और बुरे से अच्छा सदा बनता रहता है। इनकी उलझन में हमें अपना संकल्प नहीं बिगाड़ना चाहिये। इनके आकार प्रकार को देखकर जो अपने संकल्प को बिगाड़ता है वह दुःख पाता है। पदार्थ तो जैसा है वैसा ही स्वभाव से देखो। महाराज इस समाधान से संतुष्ट नहीं थे। वे कहते दीवानजी तुम नास्तिक हो, जो बुरा है वह बुरा ही रहेगा और जो अच्छा है वह अच्छा ही रहेगा। बुरा कभी अच्छा नहीं हो सकता है और अच्छा बुरा नहीं बन सकता है। पदार्थ को लक्ष्य करके जो जैसा संकल्प करता है वह वैसा ही बन जाता है। दीवानजी ने फिर समझाते हुए कहा राजन्, यह आपके देखने और सोचने का ढंग है। मेरे सोचने का यह ढंग नहीं है। संसार में जितने पदार्थ हैं वे अपने २ स्वभाव और स्वरूप में हैं। अच्छाई और बुराई आपके अपने विचारों से जन्म लेती है। एक दिन भोज का प्रसंग आया। सभी कर्मचारी और राजा भोजन करने बैठ गये। जब भोजन समाप्त हो गया तो सभी कर्मचारियों को सम्बोधित करते हुए महाराज बोले देखिये आज भोजन कैसा बढ़िया बना है। जो साधारण स्थिति के कर्मचारी थे उन सब ने महाराज की हाँ में हाँ कर दी। वे कहने लगे कि सच, आज का भोजन बढ़िया ही था। आज भोजन करके बड़ा ही आनन्द आ गया। वहीं दीवानजी भी पंक्ति में बैठे हुए थे। महाराज ने उनसे पूछा कहिए आज का भोजन कैसा रहा? दीवानजी कहने लगे, राजन् अच्छे से बुरा और बुरे से अच्छा होता ही रहता है। आप भोजन जैसी तुच्छ वस्तु के विषय को लेकर संकल्प बिगाड़ रहे हैं। यह अच्छा है इस विचार से अच्छे पर आसक्त होना उपयुक्त नहीं है, पदार्थों की आसक्ति कभी अच्छी नहीं होती। महाराज ने कहा—दीवानजी ? तुम्हारी बात हमें पसन्द नहीं है। महाराज यह चाहते थे कि इस व्यक्ति को दीवानजी पद से हटा दिया जाय परन्तु उनके समान उनके राज्य में कोई बुद्धिमान नहीं था। एक दिन महाराजा शहर से बाहर की ओर भ्रमण के लिए जा रहे थे। रास्ते में गटर की दुर्गन्ध इतनी व्याप्त थी कि महाराज उसको सहन नहीं कर सके उन्होंने कपड़े से अपनी नाक को ढाँक लिया। उनके साथ जितने भी व्यक्ति थे उन्होंने भी ऐसा ही किया लेकिन दीवानजी ने कुछ नहीं किया और वे वहाँ मस्ती के साथ समभाव से चलते रहे। महाराज की दृष्टि दीवानजी की ओर गयी तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। पूछ बैठे दीवानजी क्या आपको गटर की दुर्गन्ध नहीं आ रही है। क्या आपकी घ्राणेन्द्रिय नष्ट हो गई है ? दीवानजी का उत्तर था कि राजन्, इन पदार्थों में दुर्गन्ध है और

दुर्गन्ध का स्वभाव घ्राणेन्द्रिय मे प्रवेश करना है। प्रत्येक पदार्थ का अपना निजी स्वभाव होता है। जब वह अपने स्वभाव को नही छोडता तो हम अपने समता स्वभाव को क्यो छोडे। हमे भी सभी स्थितियो मे समभाव पूर्वक रहना चाहिए। इन्द्रियो के विषय मे फसकर अपनी भावनाओ को चचल नही करना चाहिए। उनमे राग द्वेष की परिणति नही लानी चाहिए।

एक उलझन जो सुलझ गई

राजा और दीवान का विचार-सघर्ष अभी समाप्त नही हो पाया था। मनुष्य के हृदय मे जब कोई विपरीत भाव घर कर लेता है तो उसका निकलना बडा कठिन हो जाता है। राजा और दीवानजी के विचारो मे पूर्व और पश्चिम का अन्तर था। राजा की तो एक रट थी कि गंदा सदा गदा ही रहता है। वह अच्छा नही हो सकता। दीवानजी इस विचार से सहमत नही थे। वे मानते थे कि अच्छा बुरा हो सकता है और बुरे को प्रयत्नो के द्वारा अच्छा भी बनाया जा सकता है। उनका निर्णय युक्ति सगत था। युक्ति से मुक्ति होती है। यह एक न्याय सम्मत उक्ति है। महाराज को समझाने के लिए उन्होने एक दिन फिर प्रयत्न किया। विश्वस्त नौकरो के द्वारा एक घडा गटर का पानी मगवाया गया। अनेक प्रयत्नो द्वारा उसे शुद्ध किया गया। अब वह सुगधित, स्वादिष्ट और पेय बन गया। इस प्रक्रिया का महाराज को कोई ज्ञान नही हो सका। इस तथ्य को दो चार विश्वस्त लोग ही जानते थे। दीवानजी ने उन लोगो से कहा कि महाराज जब भोजन करने बैठे तो उस समय पीने के लिए पानी की व्यवस्था मे इस पानी का प्रयोग किया जावे। इस प्रकार सभी व्यवस्था होने पर ज्योही महाराज भोजन करने बैठे और उनको पानी की आवश्यकता हुई तो उन्होने उस पानी को पिया। उस पानी के स्वाद और सुगधि से मन प्रफुल्लित हो गया। वे आश्चर्य पूर्वक रसोइये की तरफ देखने लगे और कहने लगे कि यह किस कुए का पानी है ? रसोइये चौक गये। उन्होने देखा कि कही कोई गडबड तो नही हो गई। पानी में कही कोई खराबी तो नही है। उन्होने डरते हुए कहा हूजूर यह पानी हमने नही मंगाया है। यह तो दीवानजी के घर से आया है। महाराज मन मे सोचने लगे कि दीवानजी बडे स्वार्थी है। वे रोजाना ऐसा सुगधित और स्वादिष्ट पानी पीते है। और मुझे जिस कुऐं का पानी मिलता है वह तो

ऐसा स्वादिष्ट नही है। दीवानजी को बुलाने की आज्ञा दी गई। रसोइयें थर-थर काप रहे थे। उधर दीवानजी सोच ही रहे थे कि बुलावा आने ही वाला है। दीवानजी पहले ही तैयार थे। राजा की आज्ञा प्राप्त होते ही वे उपस्थित हो गए और बोले कि हुजूर क्या आज्ञा है सेवक को? महाराज कहने लगे तुम बडे स्वार्थी हो। जब भी मैं कोई प्रश्न करता हूँ तो एक ही रट लगाते रहते हो कि पुद्गलो का स्वभाव है, समभाव से देखिये और समतादर्शन से देखिये। इन बातो से मुझे चकमा देते रहते हो और ऐसा सुगंधित और स्वादिष्ट पानी अकेले पीते रहते हो। यह चकमा देने की वृत्ति मुझे अच्छी नही लगी। किस कुए का पानी मगाते हो? क्या उस कुए मे पानी कम है? रोजाना हमारे लिए भी यही पानी क्यो नही भेजते? दीवानजी ने उस समय भी उसी समतादर्शन से जवाब दिया कि राजन् यह तो पुद्गलो का स्वभाव है, अच्छे और बुरे होते ही रहते हैं। इनके पीछे अपने सकल्प को न बिगाडे। अच्छे पदार्थ के प्रति आसक्ति होती है तो सकल्प बिगडता है और इससे ज्ञानकी पर्याय धुधली हो जाती है। वस्तु से द्वेष का परिणाम शुभ नही होता है। यदि हम समभाव रखते हैं तो सकल्प नही बिगडता। दीवानजी ने कहा—राजन् मैं उसी कुए का पानी पीता हूँ जिस कुए का पानी आप पीते हैं।

फिर आज का पानी कहाँ से आया, महाराज ने प्रश्न किया।

दीवानजी ने कहा राजन् आगे का विज्ञान मत पूछिये। यदि पूछेंगे और समतादर्शन मे नही रहेंगे तो दुख होगा।

नही नही, बतलाओ कहा से आया?

हुजूर, जिस गटर के सम्मुख आपने नाक बन्द किया था और मैंने नाक खुला रखा था, यह उसी गटर का पानी है।

क्या? गटर का पानी। कभी नही हो सकता तीन काल मे भी नही हो सकता। क्या खराब पानी कभी अच्छा हो सकता है?

'हुजूर, प्रत्यक्षे किम् प्रमाणम्''। मैं ठीक तरह से बतलाये देता हूँ विश्वस्त आदमियो को मेरे साथ भेजिये। महाराजा ने अपने विश्वस्त आदमियो को भेजा और उस गटर का पानी लाया गया अनेक प्रक्रियाओ द्वारा साफ सुथरा बना कर कहा कि राजन्? अब पान करिये नृप ने कहा कि मैं गटर का पानी कैसे पीऊँ?

राजन् ! आप स्वादिष्ट और सुगन्धित पानी पी चुके हैं। यह अब गटर का पानी नही रहा। प्रयोग से शुद्ध हो गया है। विज्ञान पर द्वेष नही करना चाहिए। इस पानी की शद्धि से यही सिद्ध होता है कि प्रयत्न से बुरा भी अच्छा हो सकता है। श्रेष्ठ मनुष्य की संगति से बडे-बड़े अश्रेष्ठ मानुष (पापी) धर्मात्मा हो गये।

वात राजा की समझ मे आगई। उन्होने जब उस पानी को पिया तो उन्हे उसका वही स्वाद आया। वे मन ही मन कहने लगे कि दीवानजी का कथन सत्य है। अब तक मै भाव विकृति में फसा हुआ था, इसी कारण मेरा जीवन अशात था। समता दर्शन पर चलने के कारण ही दीवान सुखी है, तथा सत्य के अत्यन्त निकट है। मुझे भी इसका अनुकरण करना चाहिए तभी मै सुख प्राप्त कर सकू गा। अन्त मे ऐसा ही हुआ। महाराजा ने भी समता दर्शन को अपनाया। अब उन्हे प्रत्येक क्षण आनन्द का अनुभव होने लगा।

कितनी ही विपरीत परिस्थितियां क्यो न आजाय किन्तु जो समता भाव मे रहने वाले है तथा समता भाव से पदार्थों को देखने वाले है उनको कभी कठिनाई नही आती है। यह एक एक रूपक है, समता दर्शन को समझाने की दृष्टि से। उसे आपके सम्मुख रखा गया है। इसी दृष्टि से अब आपके सामने कमलसेन का चरित्र रख रहा हूँ। वह राजकुमार है लेकिन उसके जीवन मे समता दर्शन है। वह अटवी मे पहुँचता है। वहा वह सोच रहा है कि जिस माता की दुख भरी आवाज मैंने सुनी थी, उसमे कौनसा तथ्य छिपा हुआ है। उस माता को इतना दुख क्यो हुआ ? ऐसा प्रतीत होता है कि वह किसी सकट मे फंसी हुई है। उसको कोई सता रहा है। इसी कारण वह हाय हाय कर रही है। जिस माता को ज्ञान न हो वह घर मे भी रोने लग जाती है और किसी चूहे का भय आ जाय तो चिल्लाने लग जाती है। धारणी राणी और चन्दन वाला सारथी के साथ जगल में खडी थी पर वह वहा रोई नही। उसने चन्दन वाला के सामने एक उदाहरण प्रस्तुत कर दिया और वही चन्दन वाला एक महासती के रूप मे प्रकट हुई। इसी प्रकार क्या यह भी कोई महासती है ? सामने भव्य भवन है और सुन्दरी भवन पर चढ रही है। यह व्यर्थ ही चिल्लाने वाली नही हो सकती। इस रहस्य को समझे बिना एक तरुणी का दुःख नही मिटाया जा सकता। यह सोचकर उसने अपने चरण आगे बढा दिये।

मैं मानव हूँ। दूसरे जीवों के दुःखों को दूर करना मेरा कर्त्तव्य है। यदि मै अपने जीवन मे ऐसा न कर सका तो फिर मेरा यह जीवन व्यर्थ है। इन्ही भावो को लेकर वह आगे बढ रहा है।

कमलसेन उस विराट जगल मे भी अपने जीवन के समभाव को नही छोडता। वह मस्ती के साथ आगे बढता चला जा रहा है। उसने निर्णय किया कि मैने जो इस भवन को देखने का सकल्प किया है, मै इसे अवश्य ही देखूंगा और इस तरुणी के दु.खो का निवारण करूंगा। यह मेरे मानवीय कर्त्तव्य का परीक्षा काल है। किसी को दु.ख मे देखकर उसकी यथा शक्ति सहायता न करना मानवता के कर्त्तव्यो की अवहेलना है।

उसको कुछ ऐसा भी भान हो रहा है कि जैसे-जैसे वह आगे बढता जा रहा है वैसे-वैसे ही वह भव्य भवन आगे भागता जा रहा है। अपने दृढ सकल्प के सहारे वह उस भव्य भवन के समीप पहुँच गया। अब भवन की सीढियाँ उसके चरणों के तले हैं। वह उन पर निर्भयता पूर्वक बढता चला जा रहा है।

बन्धुओ! वह कन्या जो कि जगल मे चिल्ला रही थी और जोर-जोर से आवाज दे रही थी भवन मे प्रवेश करती है। कुमार के सामने आकर उसने अपनी सहज मुस्कान के साथ उसका स्वागत किया, और भावपूर्ण मुद्रा मे उसका अभिनन्दन करते हुए बोली कि आज आपके आगमन से यह भवन पवित्र हो गया है। यह सुनकर राजकुमार कमलसेन को बडा आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगा कि मैं किसी रहस्यपूर्ण जगत मे आ गया हूँ मैं तो किसी स्त्री के दुःख भरे शब्दो को सुनकर उसके दुःख मिटाने के लिए यहा आया था किन्तु यह तरुणी तो क्रन्दन करने वाली स्त्री नही लगती है। उसमे और इसमे तो धरती आकाश का अन्तर है। वह तो कोई दुखी कन्या थी पर यह तो सब प्रकार से सम्पन्न और सुखी दीख रही है। इसके जीवन मे दुःख कहा? खैर कुछ भी हो, इस रहस्य का निर्णय करना भी आवश्यक है, यही सोच कर उसने तरुणी से प्रश्न किया कि—

क्यो बहिन? थोडी देर पहले जगल मे आप ही रुदन कर रही थी? हा नाथ, हा नाथ क्या ये शब्द आप ही के थे?

हा राजकुमार मै ही थी। तरुणी ने उत्तर दिया।

आपने ऐसा क्यो किया? आपके ऊपर कौनसी आपत्ति आ गयी थी, मैं इस जगल मे आपको खोजता हुआ आ रहा हूँ। मैने कही पर भी कोई उपद्रव नही देखा।

फिर तुम्हारे जीवन में यह स्थिति कैसे आई ? राजकुमार ने कहा।

राजकुमार तुम उस आवाज को भूल जाओ वह मेरी ही आवाज थी अब तुम उसकी तरफ ध्यान न दो, उसकी ओर का चिन्तन छोड दो। अभी वर्तमान की बात करो, भूतकाल की चिन्ता मत करो क्योकि जीवन का स्वरूप वर्तमान ही होता। उसीके विषय मे चिन्तन करना चाहिए। मेरे सकेत को समझने का प्रयत्न करिये। राजकुमार असमजस मे पड गया। वह सोचने लगा कि मेरे साथ कही कोई धोखा तो नही हो रहा है। परन्तु अब कुछ भी हो मैने बचपन से जो शिक्षा प्राप्त की है और जो कुछ धर्म की स्थिति का स्वरूप समझा है तथा जीवन के सम धरातल को देखा है उसके आधर पर मुझे इस विकट स्थिति मे भी विचलित नही होना चाहिए। ये पदार्थ मनुष्य के सामने अनेक रूप, अनेक आकृतियों में उपस्थित होते रहते है, आज यह महल को ही अपने जीवन का सब कुछ समझ रही है, अपने सौन्दर्य पर अत्यधिक आसक्त हो रही परन्तु यह मेरे सामने कुछ भी नही है। यह पुद्गलो का स्वभाव है अच्छे से बुरा और बुरे से अच्छा हो सकता है। सुधरा व्यक्ति खराब बन जाता है और खराब व्यक्ति कभी प्रयास करने पर सुधर भी जाता है। मेरा दृष्टिकोण पदार्थ के पीछे नही है, मेरा दृष्टिकोण समभाव का है। वह पदार्थ को समभाव से देखने का प्रयत्न करता है इस प्रकार का चिन्तन करने से उसके मन मे किसी प्रकार का विकार भाव, अशुभ भाव उदय नही होगा। अशुभ संकल्प न आने से जीवन मे सदा चिन्तामणि भगवान के स्वरूप का ही चिन्तन चलेगा। इन्ही विचारो के चिन्तन मे वह यह सोच रहा है कि मेरा जीवन चिन्तामणि के समान है। "मै दूसरो की कामना पूर्ण करने वाला हूँ। मुझे दूसरो के पीछे भटकना नही है। जब इस प्रकार की स्थिति आजाती है और उसीके समान देव गुण आ जाते है तो मनुष्य अपने मार्ग से विचलित नही होता।

बन्धुओ। इस जड चेतन की मिश्रित अवस्था में ही यह जीवन है, राजकुमार का जीवन भी इसी मे है और आपका भी। जहा जैसे सकल्प होते हैं। वहा वैसा ही परिणाम सामने आ जाता है। यह केवल मै आपको संकेत दे रहा हूँ आप कोई बढिया पोशाक पहनकर उपस्थित होते हैं तो लोगो का ध्यान अनायास ही आपकी ओर आजाता है। राजकुमार का जीवन जड़ चेतन की मिश्रित अवस्था के चिन्तन मे चल रहा है। उसने

जो संकल्प किया है जो वह शुद्ध स्वरूप के साथ लगा हुआ है। शुद्ध स्वरूप का रूप आने पर जीवन मे राग द्वेष नही रहता। इस स्थिति मे वह तटस्थ भाव मे चिन्तन कर रहा है।

कहने का आशय केवल यही है कि अपने स्वरूप का ज्ञान सब के लिए आवश्यक है इस ज्ञान के द्वारा ही समभावपूर्वक अशुभ को शुभ मे बदला जा सकता है समता दर्शन का यही रहस्य है। इसे समझने पर ही आपको यह ज्ञात होगा कि आपका यह जीवन भी चिन्तामणि भगवान के समान बन सकता है।

१३-८-७२
ज्ञान भवन



आध्यात्मिक स्वतन्त्रता

प्रार्थना

श्री महावीर नमो वर नाणी, शासन जेहनो जाण रे प्राणी ।
धन धन जनक 'सिद्धारथ' राजा, धन 'त्रिशलादे' मात रे प्राणी ।।
ज्या सुत जायो गोद खिलायो, 'वर्धमान' विख्यात रे प्राणी ।
श्री महावीर नमो वर नाणी शासन जेहनो जाण रे प्राणी ।।

यह भगवान् महावीर की प्रार्थना है । भारतीय धरातल पर आज उन्ही का आध्यात्मिक शासन चल रहा है । प्रवचन उनके शासन की बहुत ही महत्वपूर्ण उपलब्धि है । उन्होने अपनी जीवन साधना में जो केवल ज्ञान, केवल दर्शन की असीम आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त की थी । उसी असीम आत्म ज्योति की प्रकाशमान ज्ञान किरणे द्वादशाङ्गी वाणी-प्रवचन रूप मे आज भी विद्यमान है । उन महत्वपूर्ण प्रवचनो का सर्वप्रथम संग्रह गणधर देवो ने किया था । भगवान् के इन उपदेशो से पहले भी असख्य जीव लाभान्वित हो चुके हैं, और आज भी हो रहे है । मानव यदि भगवद् वाणी के उन पवित्र भावो को हृदय मे उतारले तो उसका वडा भारी लाभ हो सकता है । केवल ज्ञानियो की वाणी मे एक विशेष प्रकार का प्रभाव होता है । सामान्य प्राणियों के वचनो में और प्रभु के वचनो मे धरती आकाश का अन्तर होता है । अल्पज्ञो की वाणी मे जहा सीमित प्रभाव होता है जबकि सर्वज्ञो के प्रवचनो मे एक असीम आत्मिक आनन्द होता है । ये प्रवचन मानव हृदय को पवित्र करने वाले होते है । उनसे मानव हृदय मे एक विशेष प्रकार की आन्तरिक अनुभूति होती है । ये जीवन का दृढ़ संकल्प और पवित्रता का आदर्श उपस्थित करते है । वचन तो साधारणतया सभी बोल सकते है किन्तु प्रवचन देना सबके बूते की बात नही है । इसीलिए वचन और प्रवचन मे रात-दिन का अन्तर होता है ।

एक न्यायाधीश अपने बच्चो के सामने बैठकर बोलता हैं, बाते करता है, तथा अपने साथियो के साथ वार्तालाप करता है । किन्तु उसके

उन वचनों का कोई विशेष महत्व नहीं होता। वही न्यायाधीश जब न्याय के सिंहासन पर बैठकर अपने मुंह से कुछ भी कहता है, उस समय उनके एक एक वचन का विशिष्ठ महत्व होता है। यद्यपि न्यायाधीश का मुंह वही है, वचन भी उसके अपने ही हैं फिर भी उन वचनों और इन वचनों मे बहुत बड़ा अन्तर है। न्याय के आसन पर बैठते हुए वह जो भी वचन निकालता है, उससे मानव के जीवन पर एक महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

वचनों का मूल्य

समाज व्यवस्था की दृष्टि से जहाँ विषम स्थिति में विवेक के साथ, निर्णय का प्रसंग आता है वहां उन वचनो मे मानव के हित और अहित दोनो ही निहित होते है। ऐसे वचनो को सभी लोग बड़े ध्यान से सुनते है। यही नहीं अपितु उन फैसले को सुनने के लिए कभी कभी, जन-समुदाय बड़ी मात्रा मे एकत्रित हो जाता है। उनका मूल्य सब समझते है। यह तो एक क्षेत्रीय दृष्टि से उदाहरण रूप न्यायाधीश की बात कही गई है। किन्तु जहा पर समस्त विश्व के न्यायाधीश के वचनो का प्रसङ्ग है, वे बड़े ही महत्व के हैं। विश्व के न्यायाधीश का तात्पर्य यहा वीतरागदेव से लिया गया है। आप पूछ सकते है कि न्यायाधीश और वीतरागदेव इन दो परस्पर विरोधी शब्दो का क्या मेल? जो वीतराग है वह न्यायाधीश कैसे हो सकता है? आपकी इस शंका के समाधान मे मैं कहना चाहता हूँ कि न्यायाधीश का शाब्दिक अर्थ न्याय का स्वामी होना है, जिसमे राग और द्वेष विद्यमान रहता है। वह न्याय का स्वामी कैसे हो सकता है। जहा एक के प्रति राग और दूसरे के प्रति द्वेष हो वहा स्वस्थ न्याय का दर्शन कैसे हो सकता है? उसका न्याय एकपक्षीय होता है, अत कभी-कभी ऐसी स्थिति मे अपराध को प्रोत्साहन मिलने की सभावना भी हो सकती है। न्यायाधीश का काम केवल दण्डित करना नहीं होता। उसका कार्य तो दोषी को दोषी और निर्दोषी को निर्दोष घोषित करना होता है। दोषी व्यक्ति को दण्ड देने के लिए पृथक अधिकारी नियुक्त होते है। भूल किसकी है? इस बात का समाधान न्यायाधीश की सीमा मे आता है। सामाजिक न्यायाधीश दण्ड का विधान भी करते है! किन्तु उनका निर्णय न्यायसङ्गत ही हो, ऐसी स्थिति कम ही देखने मे आती है।

वीतरागदेव किसी को दण्ड नहीं देते है। वे तो केवल इस तथ्य को उजागर करते है कि किस किस कर्म से क्या-क्या फल मिलते है? शुभ,

अशुभ, और शुद्ध का स्पष्ट सर्वांगीण प्रकटीकरण ही उनके न्याय में आता है। अपने कर्मो का फल प्रत्येक प्राणी को उसके कर्मानुसार स्वय ही प्राप्त होता है। उसमे प्रभु का कोई हस्तक्षेप नही होता। वीतरागदेव का प्रत्येक निर्णय सत्य पर आधारित होता है। उन्हे किसी प्रमाण या साक्षी की आवश्यकता नही होती। जिस औदारिक शरीर और पाचो इन्द्रियो के सहारे से उन्होने दिव्य ज्योति प्राप्त की है वे उस शरीर का पांचों इन्द्रियो का तथा मन का भी सहयोग नही लेते है। उन्हे अपने ज्ञान में जो दिखता है, उसे ही वे प्रकट करते है। ससार की कोई भी बात उनसे छिपी नही रहती। वे अपने विकास की चरम स्थिति मे पहुँचकर, अपने आप आत्मिक पूर्णता को प्राप्त कर लेते है। अपने असीम विश्व वात्सल्य से प्रेरित होकर ही, वे प्रवचन करते है। उन प्रवचनो मे जो कुछ भी तथ्यो का विश्लेषण और आत्मिक स्वरूप होता है उसे गणधरदेव ग्रहण कर लेते है। गणधरो की वह धरोहर परम्परा से शासन की स्थिति पर्यन्त चलती रहती है। काल प्रभाव के कारण वह प्रवचन परम्परा भले ही कुछ न्यूनाधिक रूप मे रहे पर उसका पूर्णात्मक तथ्य सदा सुरक्षित रहता है। लाखो मन जडी बूटियो से निर्मित औषधि मात्रा की दृष्टि से न जाने कितने वजन की हो सकती है ? किन्तु उसकी एक रत्ती भर की मात्रा मे भी समस्त औषधियो का सार विद्यमान रहता है। आधी रत्ती मे भी कोई यह नही कह सकता कि इसमे उन लाखो औषधियो का सार नही है। जैसे उन औषधियो की छोटी से छोटी मात्रा भी शरीर को रोग मुक्त करने के लिए पर्याप्त हो सकती है ठीक उसी प्रकार प्रभु के प्रवचनो का सकलन जितना भी गणधरो ने किया था, वह आचार्य परम्परा से शास्त्र के रूप मे कितना भी कम क्यो न हो परन्तु आज उसमे सारे ससार को दु ख मुक्त करने की शक्ति विद्यमान है। उनकी यह मात्रा विश्व शाति के लिए एक अमोध उपाय है ! हमे उन प्रवचनो को समझने का प्रयास करना चाहिए। तभी हम आत्मा, महात्मा और परमात्म जीवन की समस्त परिभाषाओ को समझ सकते है। इसी विषय पर मैं कुछ दिनो से आपको उपदेश दे रहा हूँ। उसे समझने का प्रयत्न करिए और सोचिए कि जीवन की परिभाषा क्या है ? इस जीवन को किस रूप मे समझा जाय ? कल भी इसी विषय मे आपसे कुछ कहा गया था, और आज भी कुछ कहने का प्रयास कर रहा हूँ।

गंगा के किनारे भी प्यासे क्यों ?

जीवन की परिभाषा जानने के लिए 'समतादर्शन को समझना

आवश्यक है। उसका विवेचन करने के लिए मेरी तुच्छ शक्ति तो क्या? बड़े-बड़े ज्ञानी योगियों की शक्ति चाहिए। इस प्रकार के योगीजन आज हमारे सामने नही है। अतः अपनी शक्ति के अनुसार हम ही कुछ प्रयत्न करे। यद्यपि प्रभु के समतादर्शन मय उन विशाल प्रवचनों का मन्थन करके मक्खन निकालना साधारण मनुष्य के बूते की बात नही है तथापि कोई साधारण व्यक्ति भी यदि अपनी पुरुषार्थ शक्ति के सहारे उन पर चलने का प्रयत्न करे तो वह व्यक्ति भी किसी सीमा तक अपनी शक्ति के अनुसार सफल हो सकता है।

गगा की धारा बह रही है। उसके किनारे पर खड़ा एक प्यासा व्यक्ति पानी-पानी चिल्ला रहा है। प्यास के मारे उसके प्राण कण्ठ मे आ रहे है। पास ही खड़े एक दूसरे व्यक्ति ने कहा—अरे भाई? गगा के किनारे भी प्यासे क्यो खड़े हो? पानी क्यों नही पी लेते? वह प्यासा व्यक्ति बोला—भाई! पानी मैं कैसे पीऊँ? गगा तो बहुत लम्बी चौड़ी है और मेरा मुह छोटा सा है। इतनी विशाल गगा की धारा मेरे छोटे से मुँह मे कैसे आ सकती है? मैं प्यासा खड़ा खड़ा यही सोच रहा हूँ।

भाई! तुझे प्यास ही तो लग रही है। इसके लिए सारी गगा की धारा को मुँह मे डालना क्या कोई आवश्यक है? तुम यह कर भी नही सकते, हा, जितनी तुम्हारी शक्ति है, और जितना जल तुम्हारे मुँह मे आ सकता है, पीलो। इससे तुम्हारी प्यास तो बुझ ही जायेगी। कम से कम तुम प्यासे तो नही रहोगे। उस प्यासे व्यक्ति के समान ही आज मेरी स्थिति हो रही है। जब मैं वीतराग वाणी के उन गहन मर्म रहस्यो की ओर चिंतन करता हूँ तो यही सोचता हूँ कि यदि सम्पूर्ण रूप से नही तो जितनी शक्ति है, उतना तो कार्य करना ही चाहिए। 'अकरणात् मन्दकरणं श्रेयः' कुछ भी न करने से तो जो कुछ बन सके करना अच्छा है। इसी दृष्टिकोण से कुछ बाते व्यक्त करने का साहस कर रहा हूँ। ये बाते मुख्य रूप से तो मेरे अपने जीवन के लिए है, किन्तु गौण रूप से इनसे आप भी लाभ ले सकते है। यदि आप भी इन्हें समझने का प्रयास करे और अपनी शक्ति के अनुसार जीवन मे समता रस का पान करना आरम्भ कर दे, तो आपकी भी सूखी सूखी सी प्यास बुझ सकती है। आप इससे जीवन की परिभाषा को भली-भांति समझ सकेंगे।

'[illegible]'

यहाँ निर्णायक के बाद जो समता शब्द आया है उसी मे समस्त समता दर्शन का रहस्य छिपा हुआ है। व्याकरण की दृष्टि से यहाँ समतामय दर्शन के बीच मे जीवन की परिभाषा लुप्त (अव्यक्त) है। किन्तु जब भी व्याख्या की जाती है तो दर्शन शब्द का प्रयोग करने पर ही भावार्थ स्पष्ट होता है।

हाँ तो समता दर्शन की दृष्टि से जीवन को देखना है। जीवन की समग्र स्थितियो पर दृष्टिपात करना है। वर्तमान जीवन जिन परिस्थितियो मे बीत रहा है ? भूतकाल मे कैसा था ? तथा भविष्य का जीवन कैसा रहेगा ? यदि इन तीनो दृष्टियो से आप अपनी ओर देखे तो अपने जीवन मे ही जीवन की परिभाषा को साकार रूप दे सकते है। वर्तमान का चिंतन, भूतकाल का सहारा लेकर भावीकाल का प्रेरणास्त्रोत बन जाता है। मनमे दृढता आ जाती है। यह दृढता सारे जीवन को प्रभावित करती है। जिस क्षण मानव का जैसा भी संकल्प होता है उस समय उसका तत्क्षण जीवन पर प्रभाव अंकित हो जाता है।

कल्प और उसका प्रभाव

यदि एक व्यक्ति दो क्षण के लिए भी पवित्रता का संकल्प करता है तो आप देखेगे कि उसकी आकृति पर उस संकल्प का प्रभाव आये बिना नही रहेगा। आप इसका अनुभव करके देख सकते है। व्यक्ति के जीवन सूत्र का सूक्ष्मरूप से अध्ययन करने का प्रयत्न करिए, उसे समता दर्शन के साथ जोडिये, तभी आप समता दर्शन का पूरा स्वरूप समझ पायेगे। ऐसा करने वाले ही इस विशाल मानव जीवन को समझने में सफल हो पायेगे। मनुष्य अनेक पुस्तके पढता है, क्योकि आजकल पुस्तको की कोई कमी नही है। आज तर्क शक्ति के साथ बुद्धि का विकास यत्रतत्र परिलक्षित हो ही रहा है। उसी के आधार पर बहुत सी पुस्तके लिखी गई है, और लिखी जा रही है, तथा भविष्य मे भी यह प्रयास सम्भवतया चलता रहेगा। समस्त विश्व के पुस्तकालयो का यदि चिंतन किया जाय तो उसकी गिनती एक लम्बी सख्या तक पहुँच सकती है। इन पुस्तको का अनेक व्यक्ति अध्ययन करते है। इससे वे अपने वर्तमान जीवन के जानकार तो हो जाते है, किन्तु जीवन के वास्तविक तथ्यो तक नही पहुँच पाते। यही कारण है कि आज यत्र तत्र सर्वत्र विषमता की ज्वालाएँ भड़क रही है। बुद्धि जीवी वर्ग हो, या छात्र वर्ग, अधिकारी वर्ग हो या व्यापारी वर्ग, मजदूर हो या कोई और सभी वर्गो मे आज विषमता घर किये बैठी है।

इस बात को सभी अनुभव कर रहे हैं कि अनेक संघर्षों के बाद भी उन्हें शान्ति प्राप्त नहीं हो पाई है। चारों ओर अशान्ति ही अशान्ति दीख पड़ रही है। सबकी अशांति के रूप अलग-अलग हैं। इतना विशाल और गहन अध्ययन करने पर भी मनुष्य की यह स्थिति क्यों है? चाहने पर भी उसे सत्य का दर्शन क्यों नहीं हो रहा है? हमारी विषमता एक भयंकर समस्या है जो जीवन को चारों ओर से हताश कर रही है। उसे सुलझाना है। अपने मूल की भूल को मिटाना है, तभी शान्ति मिल पायेगी।

कारण सुन्दर होता है तो कार्य भी सुन्दर हो जाता है। यदि रसोई की सामग्री व्यवस्थित है, बनाने वाला भी अच्छा है तो रसोई अच्छी अवश्य बनेगी। सामग्री तो ठीक है पर बनाने वाला चतुर नहीं है तो गड़-बड़ हो सकती है। उसमें कहीं न कहीं त्रुटि रह सकती है। ऐसी स्थिति में रसोई का कार्य बिगड़ सकता है। इसी प्रकार जीवन की स्थिति का जो भी कार्य आज बिगड़ रहा है उसमें कोई मूल कारण अवश्य है। या तो हम सामग्री ठीक तरह से नहीं जुटा पाये हैं या बनाने की कला से अनभिज्ञ हैं, कुछ भी हो; कोई न कोई कमी तो अवश्य रही है। इस ओर का अध्ययन करने से आपको कुछ मूल तथ्य अवश्य मिलेंगे। तब आप शीघ्र ही निर्णय कर लेंगे कि सब कुछ पढ़ लेने और देख लेने पर भी यदि आपने अपने जीवन को नहीं देखा है, नहीं परखा है और समता सिद्धान्त दर्शन के द्वारा उसकी वास्तविकता को नहीं निखारा है तो अशांति से छुटकारा नहीं मिलता है।

जीवन निर्माण की कला

जीवन की अशांति भी एक समस्या है, इसका समाधान आवश्यक है। इसके लिए एक ही प्रारम्भिक मार्ग है कि अन्य पुस्तकों के साथ-साथ जीवन की पुस्तक पढ़ना प्रारम्भ कर दीजिये। उन पुस्तकों के लिए तो आपको पुस्तकालय में जाना पड़ेगा किन्तु जीवन की पुस्तक के लिए कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है। जिन्होंने प्रत्येक क्षण अपने जीवन को देखा है, पढ़ा है और परखा है, वे जीवन के तत्त्वों को पा लेते हैं। उन्हें जीवन निर्माण की कला आ जाती है। समता के द्वारा उनकी विषमता मिट सकती है, उनकी भावनाओं एवं विचारों में एक पवित्रता आ जाती है। वे आंधी तूफान आदि सभी संकटों को कुशलता से पार कर जाते हैं।

आज १५ अगस्त है। यह भारतीय इतिहास का स्वर्णिम दिन।

हमारी स्वतन्त्रता का प्रतीक है। आज के दिन हम विदेशी सत्ता से मुक्त हुए थे। अब सभी भारतीय स्वतन्त्र है, इसी कारण इसे स्वतन्त्रता दिवस के रूप मे मनाते है। आज के दिन सभी लोग एक विशेष प्रसन्नता का अनुभव करते हैं, किन्तु वह प्रसन्नता अन्तःकरण मे और उससे भी आगे आत्मा मे घर नही कर पाई है। बाहर ही बाहर के प्रकाश मे हम आनन्द मना रहे हैं, अभी अतरग के उल्लास को प्राप्त करना शेष है। तभी इस दिन का वास्तविक महत्त्व प्रकट होगा। अभी तो एकागी महत्त्व ही प्राप्त हुआ है। इस दिन का इतिहास हमे भूत, भविष्य और वर्तमान की स्थितियो का अध्ययन चिंता और मनन करने को बाध्य करता है। क्या सचमुच हम स्वतन्त्र हो गए है? यह प्रश्न अभी भी हमारे सम्मुख मुँह बाये खडा है। हम बाह्य रूप से किसी अंश मे परकीय शासन से मुक्त हुए हैं—प्राप्त स्वतंत्रता मे कुछ प्रगति तो अवश्य हुई है गत २५ वर्षो की उपलब्धिया इसके प्रमाण हैं। किन्तु कुछ भूले भी हुई है अपने तत्र का दुरुपयोग भी हुआ है, यही कारण है कि क्षेत्रीय रूप से भी हम स्वतन्त्रता का पूरा लाभ नही ले पाये हैं। पन्द्रह अगस्त का पुण्य पर्व मनाते समय हम कभी-कभी उद्विग्न हो उठते है, हमारी बेचैनी बढ जाती है और बढती ही जा रही है। यह सब कुछ क्यो? स्वतन्त्रता में बेचैनी कैसी? इसमें भी कुछ कारण है, उन्हे खोजना है। उन्हे समाप्त करना है। जब तक हम अपने बढते हुए स्वार्थो की परतंत्रता से मुक्त नही होगे, तब-तक स्वतन्त्रता का सही रूप हमारे सामने नही आ सकता है। वैधानिक दृष्टि से न्याय सब के लिए समान है, किन्तु उसका आज खुल कर दुरुपयोग हो रहा है। गणतन्त्र की सफलता के लिए जीवन तत्र का अध्ययन अत्यत आवश्यक है। हमे जीवन की स्वतत्रता को लक्ष्य वना कर चलना है, इसी मे सब का हित निहित है। इसके लिए प्रत्येक स्वतन्त्रता प्रेमी को अपना मन मानस पवित्र बनाना होगा और दृढता के साथ प्रण करना होगा कि मैं सदा न्याय पूर्वक जीवन जीऊँगा। कोई भी अनैतिक व्यापार नही करूँगा। दूसरो पर नियत्रण करने की अपेक्षा सदा अपने आप पर नियत्रण रखने का प्रयत्न करूँगा। समाज में इस प्रकार की भावना प्रत्येक मनुष्य के मन मे जब तक नही आती तव तक पूर्ण स्वतन्त्रता का सर्वागीण विकास सम्भव नही है। एकागीण स्थिति से मनुष्य स्वतन्त्र होकर यदि बैठ जाय तो उस स्थिति में वह कभी भी धोखा खा सकता है, क्योकि उसने अपनी मूल की भूल को नही पहचाना है। यदि मूल स्थिति को पकड कर उस का समाधान नही करता है तो स्वतन्त्रता ठीक तरह से सुरक्षित नही रह सकती। स्वतंत्रता

बाहरी रूप से तो सभी को मिल जाती है, लेकिन इस समय भारत की जो दशा है भारत में जिन लोगों के कन्धों पर उत्तरदायित्व है वे लोग जो कुछ भी करके दिखाये उसका हमें चिंतन करना चाहिए। आज बाहरी दृष्टि से तो हम आज स्वतन्त्र हैं पर मानसिक दृष्टि से देखते हैं तो मानव आज भी परतन्त्र बना हुआ है। यदि हम उस समता दर्शन की दृष्टि से अपने जीवन का अवलोकन करें तो मानसिक परतन्त्रता से मुक्त हो सकते हैं। आप आज अन्धी नकल तो नहीं किये जा रहे हैं ? नकल के पीछे यदि अकल हो तो वह नकल भी ठीक हो सकती है। परन्तु यदि अकल नहीं हो तो बात विचारणीय बन जाती है।

गरीबी कैसे मिटेगी ?

मैं आपके सामने कुछ बातें ऐसी बोल जाता हूँ कि जिनसे आप कुछ और ही चिन्तन करने लग जाते हैं ! लेकिन आप चिन्तन करें। मैं कहूँगा कि समता दर्शन के साथ चिन्तन करें, और यदि इस स्वरूप के साथ चिन्तन करेंगे तो सही दर्शन प्राप्त होगा। आज आप वस्तुतः जीवन में भले ही स्वतन्त्र हों लेकिन आप की आत्मा परतन्त्र बनी हुई है। इस परतन्त्रता की बेड़ी में बंधे रह कर भी भले ही अपने आप को स्वतन्त्र समझें किन्तु वास्तविक स्वतन्त्रता अभी बहुत दूर है। "गरीबी हटाओ" का नारा आज हमारे देश के नेताओं का एक सूत्र बन गया है। किन्तु यदि अपने जीवन में समता दर्शन की दृष्टि रहेगी तभी हम गरीबी का प्रश्न सहज ही में हल कर सकेंगे। मैं कभी-कभी अखबार देख लेता हूँ। उनमें कभी-कभी देश के नेता अपने आन्दोलनों को सफल बनाने के लिए जनता का आह्वान करते हैं। उनके ये आह्वान तभी सफल होंगे जब उनकी भावना में यह चिन्तन आयेगा कि - मैं भूखा बैठा हुआ हूँ इससे मुझे जो कष्ट हो रहा है वैसा ही कष्ट मेरे समस्त साथियों को होता होगा। इसलिए मेरे पास जितनी चीज है उसे उनमें विभक्त करके अपने साथियों की भूख मिटाऊंगा तब ! इस प्रकार की भावना से, समता-दर्शन के दृष्टिकोण से जब अपने साथियों को देखने लग जायगा और सोचेगा कि मैं महल बनाकर मैं बैठा हुआ हूँ किन्तु कितने ही भाई आज फुट-पाथ पर रह रहे हैं ? उनको कितना कष्ट होता होगा। यदि इस प्रकार अपनी दृष्टि का विस्तार बनावें और यह सोचें कि मेरे पास जो कुछ भी धन है उसमें से अपनी आवश्यकता के अनुपात से अपने पास रखूंगा और शेष जो आवश्यकता से अतिरिक्त है उसका वितरण

कर दूं। यदि यह भावना समता दर्शन की दृष्टि से जीवन में घर कर गई तो मैं समझता हूँ कि इस पच्चीसवे स्वतन्त्रता दिवस के नारो की चुनौती का पेट भर जायगा। आज हमे दृढ सकल्पी बनना है, इसके बिना कितने ही नारे लगाये, कितने ही आन्दोलन "गरीबी हटाओ" के चलायें, इस स्थिति मे अन्तर नही आ पायेगा। और यह केवल आन्दोलन ही चलता रहेगा। जब समता दर्शन के दृष्टिकोण को मनुष्य के मस्तिष्क मे जमायेगे उसके अनुसार उसके जीवन का निर्माण करने का प्रयत्न करेगे तब मनुष्य समता दर्शन के दृष्टिकोण से न केवल अपने आपको देखेगा, अपने पड़ोसी को देखेगा, अपने गांव व राज्य को देखेगा, राष्ट्र को देखेगा और उसके साथ मे समूचे विश्व को उसी दृष्टिकोण से देखने की स्थिति मे आ जायेगा। यह समता दर्शन की परिभाषा का विषय है उस परिभाषा के साथ कुछ पक्तिया है। उन पक्तियो का कुछ विश्लेषण करने की सोच रहा हूँ। जैसा कि प्रारम्भ मे स्वतन्त्रता-दिवस के उपलक्ष मे कुछ विचार आप के सामने रख चुका हूँ! आज १५ अगस्त के प्रसग से आपको सबसे पहिले समता दर्शन के दृष्टिकोण को अपनाना है। समग्र आत्मीय शक्ति से सम्यक्, सर्वागीण सम्पूर्ण आत्मीय निर्णायक विकास को दृढ़ता पूर्वक सदा सर्वदा ध्यान मे रखना है।

यहा शब्दो का सकलन अधिक हो गया है किन्तु उनके बिना जीवन का समग्र रूप और समता दर्शन का लक्ष्य सामने नही आ सकता इसलिए सबसे पहले समग्र आत्मीय शक्तियो को लिया गया है। मैं उन्ही शक्तियो को उभारने के लिए आपके सामने समता दर्शन पर कुछ विचार रख रहा हूँ। आत्मीय शक्ति को समग्र रूप में इसलिए ले रहा हूँ कि एक-एक शक्ति को लेकर तो मानव विकास कर रहा है। इससे एक अग भरता है और अन्य दूसरे अग उससे गौण रह जाते है। आप उदाहरण के लिए ले लीजिए मनुष्य यदि अपने मस्तिष्क का विकास करता है तो मस्तिष्क बढता है लेकिन शेष शरीर के अग पंगु बन जाते हैं। यहा पंगु का तात्पर्य निर्बलता से है। यदि वह हाथो की दृष्टि से आगे बढ़ता है तो हाथो की शक्ति बढ जायगी परन्तु अन्य अगो के विषय मे सोचा जा सकता है। आप जानते ही हैं कि एक मनुष्य जब अपने शरीर को बलवान बनाने की दृष्टि से अपने आपको पहलवान बनाता है। उस समय साथ ही साथ वह अपने आपको विद्वान् नही बना सकता। शारीरिक दृष्टि से पहलवान 'गामा' का नाम तो आप ने सुना ही है। उसके सामने जब कभी प्रसंग आता तो चलती हुई गाड़ी को रोक सकता था। इतनी ताकत शारीरिक रूप से उसने प्राप्त

कमजोरी थी। उसका संकल्प था कि मैं इतना पहलवान बन जाऊँ कि यन्त्रों को भी रोक सकूँ, लेकिन बौद्धिक दृष्टि से उसका विकास उतना नहीं हुआ जितना दार्शनिक क्षेत्र में एक विद्वान् का होना है या कहना चाहिए वह मस्तिष्क की दृष्टि से अशक्त रहा। मस्तिष्क की दृष्टि से पहलवान बनने वाले शारीरिक दृष्टि से निर्बल रहते हैं। एक ही अंग का विकास जहाँ होता है वहाँ दूसरे अंग निर्बल रह जाते हैं। मनुष्य की समस्त शक्तियों के विकास के लिए समग्र, शक्तियों को लेना आवश्यक है। इसका तात्पर्य है कि हमारी मानसिक, वाचिक, बौद्धिक, और शारीरिक शक्ति का समग्र, रूप से विकास हो। यदि मानव अपनी वाचिक शक्ति को बढ़ाना चाहता है तो वह वक्ता (वाचाल) भी बन सकता है। आप देखेंगे कि जिस व्यक्ति को "अ" की मात्रा का उच्चारण भी नहीं आता था, उसने दृढ़ संकल्प किया कि मुझे वक्ता बनना है। अपनी दृढ़ लगन से चाहे वह वक्ता बन जाय किन्तु उसका जीवन अन्य तथ्यों से शून्य रह जाता है। उस व्यक्ति में वाचिक शक्ति का विकास तो हुआ लेकिन अन्य शक्तियाँ नहीं बढ़ पाईं। पाण्डित्य की दृष्टि से एक व्यक्ति बड़ी सुन्दर पुस्तक लिख सकता है, कठिन से कठिन रहस्य का विशद् विवेचन कर सकता है किन्तु यदि उसे भाषण देने खड़ा कर दिया जाय तो वह एक शब्द भी नहीं बोल पायेगा, क्योंकि उसमें भाषण देने की शक्ति का विकास नहीं हो पाया है।

जीवन की परतन्त्रता

एक बहुत बड़े शिक्षक से कहा गया कि आप बड़े-बड़े गूढ़ रहस्यों को समझा सकते हैं, कुछ छोटी सी बातें जनता को भी समझा दीजिये। आपके भाषण से सबको बड़ा लाभ पहुँचेगा। उत्तर में वे बोले महाराज यह मुझ से नहीं हो सकेगा। मैं क्लिष्ट से क्लिष्ट विषय को पढ़ा तो सकता हूँ किन्तु भाषण नहीं दे सकता। उनकी मस्तिष्क शक्ति का विकास था, पर वाचिक शक्ति का विकास नहीं हुआ था। इसी प्रकार शारीरिक दृष्टि से किसी का विकास हो जाता है, तो वह बौद्धिक शक्ति के विकास से वंचित रह जाता है। जीवन में सभी शक्तियों का विकास होना चाहिये। मानव जीवन सभी शक्तियों के विकास का केन्द्र है। प्रत्येक मानव को सोचना चाहिए कि जो-जो शक्तियाँ मेरे भीतर छिपी हुई हैं उन शक्तियों का मैं स्वामी हूँ, उनका मुझे समग्र रूप से विकास करना है। इसके लिए दृढ़ संकल्प की आवश्यकता है। जीवन की परतन्त्रता कैसे नष्ट हो सकती?

है। आज भौतिक विकास तो चारो ओर हो रहा है किन्तु आध्यात्मिकता की ओर कुछ कम लोगो का ही ध्यान जा पाया है। आध्यात्मिक रूप से मानव अभी परतन्त्र ही बना हुआ है।

इस विषय मे मै तो अपनी साधु मर्यादा के अनुसार ही कुछ कह सकता हूँ। जो कुछ आपके सम्मुख रखा गया है उसे समझने का प्रयास करिये। व्यक्ति का विकास परिवार को प्रभावित करता है। उससे समाज मे चेतना आती है, वही चेतना समूचे राष्ट्र की काया पलट कर सकती है। किन्तु यह समता दर्शन के द्वारा ही सम्भव हो सकता है। जिनके हाथ मे सत्ता है, राज्य है, उन्हे इस ओर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। आध्यात्मिक चितन भारत की सबसे प्राचीन परम्परा है। बडे से बडे राष्ट्र नायक से लेकर प्रत्येक सामान्य नागरिक के जीवन तक इसका अभिन्न सम्बन्ध है। आज यह सम्बन्ध कुछ टूट सा रहा है, इसे जोड़ना ही प्रत्येक भारतीय का लक्ष्य होना चाहिए।

कर्त्तव्यनिष्ठ कमलसेन

अव मैं अपने कल के छोडे हुए कथानक पर आता हूँ। वह कमलसेन कुमार अपने जीवन का राजा है। उसका जीवन उसके नियत्रण मे है। विपरीत परिस्थिति आने पर अपने जीवन को सम्हालना बहुत कठिन होता है। आप ही सोचिये—एक तरुणी रूप सौन्दर्य के जीवन मे प्रवेश कर रही है। उसे इस रूप मे देखकर धैर्य रखना सभी के वश की बात नहीं है। चाहे कितने ही नैतिक बल का व्यक्ति हो ऐसे समय मे मनुष्य के संयम का बाध टूट जाने की सम्भावना रहती है। कुमार का जीवन एक आदर्श को लेकर चल रहा है। उसका अपने मन पर पूरा नियत्रण है। वह इस स्थिति मे भी अपनी नैतिकता से विचलित नही हो रहा है। उस सर्वाङ्ग सुन्दर तरुणी को देखकर उसने पूछा—बहन! तुम कौन हो? आवाज क्यो लगा रही हो?

एकात स्थल है। राजकुमार और तरुणी है। जिसने अभी तक परिचयात्मक प्रश्न किया उसे आप जानते ही है। वह धार्मिक स्वभाव का व्यक्ति है दृढ प्रतिज्ञ और उदारमना है। उसका राज्य भी उसके अनुरूप था। वहा कोई अनाथ और दुखी नही था। किसी पर कोई अनाचार और अत्याचार नही होता था। सब सुखी थे, प्रसन्न थे। ऐसे प्रजावत्सल राज्य में एक स्त्री की दुख भरी आवाज सुनकर किसका हृदय नही पसीजेगा।

परन्तु राजकुमार का हृदय दया भाव से सींच लिया । वह [illegible] की ओर चल पड़ा । उसके मन में दया की भावना हिलोरें ले रही थी । [illegible] के कारणों को मिटाना हो तो दया जगानी है । [illegible] आस पास कोई अवस्था के कारण नहीं देखता तो उसके मन में आश्चर्य होना स्वाभाविक ही है । उसके हृदय में नई स्थिति को पा लेने की भावना जागृत हो जाती है । उस समय कुछ परिचय पूछना उसका [illegible] जाता है । जब प्रश्न होता है तो सामने वाले को उसका कोई न कोई उत्तर देना ही होता है । ऐसी स्थिति मौन नहीं रहने देती । प्रत्येक [illegible] अपना समाधान चाहती है । तभी तो कमलसेन ने उस तरुणी से पूछा है कि तुम कौन हो ? क्या कहना चाहती हो ?

उसने उत्तर दिया—जब किसी को कोई अपूर्व वस्तु मिल जाती है तो वह उसका उपयोग करना कभी नहीं भूलता । मुझे भी [illegible] रूप सौन्दर्य मिला है । मैं इसका फल प्राप्त करना चाहती हूँ । मुझे एक साथी की आवश्यकता है । अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए मैंने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई । ऐसा कोई भी व्यक्ति मेरी दृष्टि में नहीं आया जो मेरे रूप-लावण्य के अनुरूप हो । आज आपको अपने साथियों के साथ भ्रमण करते देखा तो ऐसा लगा मानो मेरी साध पूरी होने को आई हो । आपका रूप सौन्दर्य कुछ ऐसा अनुपम है कि उससे मेरी सभी इच्छाएं पूर्ण हो सकती हैं । सचमुच आप मानवीय आकर्षण की साकार मूर्ति हैं । आपको देखकर मेरा मन मयूर नाच उठा है और मन का निराशा टूटने लगा । आपको पाने का दृढ़ संकल्प जाग उठा । किन्तु आपको कैसे पाया जाय ? इस प्रश्न ने सारे शरीर को झकझोर दिया मैं जानती हूँ, आप राजपुत्र हैं । सीधे सादे प्रयत्नों से आपको प्राप्त करना कठिन ही नहीं असम्भव सा है । यही विचार कर मैंने सोचा कि—चूं कि ये दीनों के प्रति बड़े दयावान हैं । दीनों का करुण क्रन्दन सुनकर इनका हृदय करुणा से पिघल जाता है । अतः दीनता का दम्भ रचकर ही मैं इनके समीप आ सकती हूँ । मेरे करुण क्रन्दन पूर्ण आलाप लगाने का यही मूल कारण है । राजकुमार ! मैं सचमुच ही अनाथ हूँ । मुझे सनाथ बनाइये । यह तभी सम्भव हो सकता है जब आप मेरे नाथ बन जाएं ।

पापी का पाप छुपने का है ? बुद्धि बाद में सोचती है । राजकुमार ने सब कुछ सुन लिया । उसने [illegible] में सारी स्थिति का [illegible] कर लिया । [illegible] वह [illegible] से [illegible] [illegible] से पूर्णतः अवगत हो [illegible]

है। इस सारी स्थिति को सुनकर और देखकर भी उसका मन किंचित् भी डांवाडोल नही हुआ। वह दृढ प्रतिज्ञ था। विवेक के साथ बोला—

मैंने तुम्हारा प्रस्ताव सुन लिया। तुमने यह जो छल कपट का मार्ग चुना है किसी भी प्रकार से उचित नही है। तुम अपने कर्त्तव्य से पिछड़ रही हो। इस प्रकार का प्रयास, नारी जीवन के लिए कलक है। तुम्हारे इस कार्य को कोई भी समझदार व्यक्ति अच्छा नही कह सकता। तुम अपने प्रभावहीन प्रयत्न से मुझे आर्कषित करना चाहती हो किन्तु मैं अपने कर्त्तव्य मे स्पष्ट हूँ। मेरा मन मेरे वश में है। मेरी आज्ञा के बिना वह इधर-उधर कही भी नही भटक सकता है। इस उत्तर ने तरुणी के मस्तिष्क को हिला दिया। वह सोचने लगी कि—यह कैसा तरुण है, इस पर तो मेरी प्रक्रिया का कोई प्रभाव ही नही पड़ा। कही यह दिखावे के लिए ऊपर की बाते तो नही कर रहा है। किन्तु ऐसा भी प्रतीत नही होता अन्यथा वह ऐसे निर्जन एकान्त स्थान मे इतनी दृढता नही रख सकता था। सच तो यही दीखता है —यह बड़ा ही दृढ़ प्रतिज्ञ है। सासारिक विकारो के लिए इसके मन मे कोई स्थान नही है। अब मुझे कोई और ही मार्ग चुनना पड़ेगा। मैं नारी हूँ। अनेक कलाये जानती हूँ। यदि अवसर पर कला काम न आई तो फिर उस कला से क्या लाभ है? आज तो मुझे शक्ति भर प्रयत्न करके इस राजकुमार को अपनी ओर खीचना है। अपनी इच्छाये पूर्ण करनी है। उसका धैर्य उखड़ चुका था। एक बार जब मनुष्य अपने कर्त्तव्य से फिसलता है तो फिसलता ही जाता है। इसके विपरीत जो दृढ संकल्पी होते हैं वे सदा अपने हित, अहित का ध्यान रखते हैं। अपने विचारो पर, अपनी भावनाओ पर उनका पूरा नियत्रण होता है। राजकुमार कमलसेन इस आदर्श का प्रतीक था। सब को उसके जीवन से शिक्षा लेनी चाहिए। किसी भी विषम स्थिति में अपना कर्त्तव्य नही भूलना चाहिए। प्रत्येक कार्य को समता दर्शन की तराजू पर तोलकर ही करना चाहिए। आप लोग स्वतन्त्र भारत के नागरिक हैं। भारतीय आदर्शो की रक्षा करना हमारा मुख्य कर्त्तव्य है। इसी मे जीवन की सार्थकता है। कमलसेन के समान अपने जीवन के राजा बनो। इसी मे सर्वाङ्गीण विकास सन्निहित है।

॥ इति ॥

लाल भवन
१५ अगस्त, ७२

सत्प्रवृत्ति और दुष्प्रवृत्ति

प्रार्थना

ऋषभ जिनेश्वर प्रीतम माहरो रे, और न चाहूँ रे कंत।
रीझ्यो साहिब संग न परिहरे रे भांगे सादि अनंत॥
प्रीत सगाई रे जगमां सहु करे रे प्रीत सगाई न कोय।
प्रीत सगाई रे निरुपाधिक कही रे, सोपाधिक धन खोय॥

यह प्रभु ऋषभ देव भगवान् की प्रार्थना है। कवि की वाणी यहां एक विशेष प्रकार से मुखरित हुई है। जब भक्त अपने आन्तरिक भावों को परमात्मा के चरणों में रखता है, तब वह रचना की ओर ध्यान नहीं रखता, अपितु अपने हृदय के भावों को प्रभु के चरणों में अर्पित करने का प्रयत्न करता है। इस कविता में भी वह अपने भावों को व्यक्त करता हुआ यह कहता है कि प्रभु, आप मेरे पति समान हैं। सामाजिक दृष्टि से सांसारिक पति तो बहुत होते हैं, किन्तु आत्मिक दृष्टि से उनका क्या महत्त्व है? यह एक विचारणीय प्रश्न है। यहां पर कवि प्रभु से अनादि सम्बन्ध जोड़ना चाहता है।

सम्बन्ध अनेक प्रकार के होते हैं। उनमें एक अनादि अनन्त सम्बन्ध होता है। इसे त्रिकालीन सम्बन्ध भी कहते हैं। पहिले था, अब है, और भविष्य में भी अनन्त काल तक विद्यमान रहेगा। इसका कभी न तो आरम्भ ही हुआ है और न अन्त ही होगा। आत्मा का परमात्मा के साथ ऐसा सम्बन्ध हुआ है इसका कोई भी अन्त नहीं लगा सकता है। इसी को अनादि सम्बन्ध कहते हैं। इस अनादि सम्बन्ध का कभी अन्त न होना ही अनादि अनन्त कहलाता है। भगवान् ऋषभ देव [illegible] [illegible] हो चुके हैं, [illegible] आत्मस्वरूप [illegible] में परिणत हो चुके हैं। इसी [illegible] अनादि [illegible] सम्बन्ध है। [illegible] अनादि [illegible] परमात्मा के अनादि [illegible] को समझ कर [illegible]

जोडने का प्रयास किया, किन्तु वह सम्बन्ध शीघ्र ही अथवा कुछ काल के वाद टूट गया। एक दृष्टि से इसका अर्थ यह हुआ कि सबन्ध अनादि काल से चला ग्रा रहा था, किन्तु उसका स्थायित्व खण्डित हो गया। उसे अनादि सात सम्बन्ध कहते है। तीसरी स्थिति सादि कांत सम्बन्ध की मानी गई है। इसमे सम्वन्ध होता है और टूट भी जाता है। चौथा सादि अनंत सम्वन्ध कहलाता है। यह एक बार जुडने के बाद टूटता नही है। प्रस्तुत कविता मे कवि ग्रानन्दघन भगवान् को पति के रूप मे चुन रहे है। यह उनका भावात्मक निवेदन है। वे चाहते है कि प्रभु के साथ मेरा (आत्मा का) सदा सदा के लिए अटूट सम्बन्ध हो जाय। उसका कभी भी अन्त न हो। यहां यह समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है कि आत्मा और परमात्मा के बीच मे आई हुई पौद्गलिक दीवार को हटाने का नाम ही "सम्बन्ध" है।

गृहस्थ के सभी सम्बन्ध पौद्गलिक होते है। वे सर्वदा नही रहते। इन सभी सम्वन्धो मे शरीर प्रधान रहता है। यहा मै आप लोगों को ईश्वरीय सम्बन्ध के विषय मे बता रहा हूँ। भगवान् को तो किसी सम्बन्ध की आवश्यकता नही है। वे तो सर्वथा निर्लिप्त है। कवि ने जो सम्बन्ध की वात कही है, वह उसकी भावना है। भगवान् को पति के रूप में मान कर वह आत्म सिद्धि प्राप्त करना चाहता है। अपनी बौद्धिक शक्ति को आत्मा की शुद्धि की ओर लगाना ही उसका मुख्य उद्देश्य है। शक्ति का शक्तिमान् के साथ अभिन्न सम्वन्ध होता है। निर्बलता शक्ति पर आया हुआ आवरण है। इसके हटते ही शक्ति प्रकट हो जाती है। शक्ति का यह प्रकटीकरण ही सम्वन्ध की परिभापा मे आता है। प्रत्येक आत्मा मे अनत शक्ति रही हुई है। कर्मो के आवरण के कारण वह शक्ति प्रकट नही हो पा रही है। प्रार्थना के माध्यम से उस आवरण को हटाया जा सकता है। जो आत्मा की क्षायिक शक्ति के द्वारा काम, क्रोध, माया, लोभ, और मिथ्यात्व आदि मनोवेगो का नाश कर देता है। इससे आत्मा का अपने शुद्धस्वरूप मे विश्वास होने लगता है। इसी विश्वास को सम्वन्ध जोडने की संज्ञा दी जा सकती है। जिस व्यक्ति की क्षायिक शक्ति जाग्रत हो जाती है, उसकी श्रद्धा विचलित नही होती, अपितु वढ़ती हुई श्रद्धा परम श्रद्धा के रूप मे परिणत हो जाती है। इसी भावना से आत्मा का सम्वन्ध ऋषभ देव भगवान् के साथ पति रूप मे जोड़ने की वात कही गई है।

इस स्थिति में आकर आत्मा का श्रद्धामय लक्ष्य बन जाता है। जब लक्ष्य स्थिर हो जाता है तो ध्येय की प्राप्ति सुगमता से हो जाती है। उसकी समस्त आत्मिक शक्तियों का विकास हो जाता है। समता सिद्धान्त दर्शन का विवेचन करते हुए कल मैंने लक्ष्य का स्वरूप आपके सामने रखा था। जिसमें बताया था कि जब अपने लक्ष्य के प्रति भावना बलवती हो जाती है तो आत्मा की समग्र शक्तियों का विकास हो जाता है। आत्मिक जीवन निखर उठता है। यह भावना प्रधान प्रार्थना परमात्मा की एक लाक्षणिक परिभाषा है। यही गुण और गुणी की परिभाषा है। जब तक ऐसी स्थिति नहीं आती यह मानव अनेक प्रकार के सन्देहों में उलझा रहता है। कभी सोचता है कि मैं प्रभु को जानता तक भी नहीं हूँ फिर उनका दर्शन कैसे कर पाऊंगा? अनेक प्रश्न और उनके अनेक समाधान उसके सामने आते हैं। दिनों दिन उसकी उलझनें बढ़ती ही जाती हैं। उसके जीवन में विचार भिन्नता का घुन लग जाता है। अपनी सही स्थिति का अध्ययन करना उसके लिए असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो जाता है। अनेक शंकाएं अनेक प्रश्न उसके सामने आकर खड़े हो जाते हैं। उसका जीवन संकल्प विकल्प की उलझनों में उलझ जाता है। उसकी श्रद्धा किसी भी एक लक्ष्य पर नहीं टिक पाती। उसका उलझा हुआ वर्तमान, अपने भविष्य की चिन्ताओं के गहनतम अन्धकार में भटक जाता है। भौतिक प्रयोगशाला के भी अनेक प्रयोग उसके सामने आते हैं। उनमें से यह किसी भी एक वस्तुतत्त्व का निर्णय नहीं कर पाता है।

किसी भी तत्त्व को समझने के लिए उसकी परिभाषा को समझना नितान्त आवश्यक होता है। ऐसा करने से वस्तु का स्वरूप स्पष्ट बोध पड़ता है। जहाँ परिभाषा अपूर्ण रह जाती है वहां वस्तुस्थिति का ज्ञान भी अपूर्ण रह जाता है। [illegible] अपूर्णता ही [illegible] सकती है। [illegible] वस्तु का [illegible] स्पष्ट होना चाहिए। [illegible] किसी भी [illegible] और [illegible] भी [illegible]। [illegible] में एक निश्चित धारणा होनी चाहिए। [illegible] होनी चाहिए। इसी में आपके जीवन की महत्ता है। [illegible] जीवन का [illegible] है। [illegible]

[illegible]

भगवान् तो विकास की साधना पर आरुढ़ होने में समर्थ थे, पर सामान्य लोगो के लिए यह सभव नही था। उनमे योग्यता की कमी थी। कुछ शताब्दियो के बाद विकासक्रम उन्नति की ओर बढ़ने लगा। तब से अब तक की स्थिति इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। आज भौतिक विकास तो दिनो दिन उन्नति कर रहा है, किन्तु आध्यात्मिकता की ओर मनुष्य का ध्यान कुछ कम ही दीख पड रहा है। आज बौद्धिक विकास का चारो ओर बोल-बाला है। नित्य नये पौद्गलिक आविष्कार हो रहे है। पर आत्मिक परिष्कार का प्रयत्न कितने लोग कर रहे है। यह स्थिति अवश्य ही शोचनीय है। जब तक अपनी बौद्धिक शक्ति को आत्मिक चिंतन की ओर नही लगायेंगे तब तक अपने विकास का वास्तविक रूप सामने नही आ सकता है। आत्मिक विकास में विश्वास का प्रमुखता से योग रहता है! इसके बिना कोई भी क्रिया सफल नही हो पाती है। बुद्धिवादी वर्ग को इस ओर अपनी शक्ति का प्रयोग करना चाहिए। जीवन की उन्नति का यह प्रारम्भिक राजमार्ग है। इस पर विवेकपूर्वक चलने से ही अपने चरम ध्येय तक पहु च पायेगे।

अच्छी और बुरी प्रवृत्तियां

विश्वास, समता का पोषक तत्त्व है! दुष्प्रवृत्तियो के त्याग की साधना मे विश्वास रखने से जीवन का विकास होता हैं। इसके लिए यह जानना आवश्यक है कि :—कौनसी वृत्तिया बाधक हैं तथा कौनसी साधक हैं? सत् क्या है और असत् क्या है? इस जीवन के साथ सत्-असत् दोनो तत्त्व लगे हुए है। अच्छी और बुरी दोनों प्रवृत्तियो का पृथक्-पृथक् विचार करेंगे तभी असत् त्याग की और सत् के ग्रहण की भावना जागेगी। आपके सन्मुख समता का जो प्रथम सूत्र रखा गया है, उसके लक्ष्य के अनुरूप जितनी प्रवृत्तिया है, वे सद् रूप है। इसके विपरीत प्रवृत्तिया असद् है। प्रत्येक स्थिति मे प्रवृत्ति की सीमा का ध्यान रखना आवश्यक होता है! अपने वर्तमान की सभी प्रवृत्तियो का व्यावहारिक दृष्टि से चिंतन करना चाहिए। अच्छाई केवल समझने की ही वस्तु नही है, उसे जब तक व्यवहार मे नही लाया जायगा तब तक जीवन निर्माण मे उसका कोई सहयोग नहीं हो सकता। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे समभावना रहनी चाहिए, उसमे विषमता नही आनी चाहिये। मान लीजिये आज आपके यहा कोई पर्व दिन मनाया जा रहा है। घर के प्रयोग के लिए आवश्यकता से कम ही

मिष्ठान्न बना है। परिवार मे सदस्य अधिक हैं। मिष्ठान्न यदि सब सदस्यो को बाट कर दिया गया तो मेरे हिस्से मे बहुत कम आयेगा। उस समय यदि अपने हिस्से से अधिक खाने की भावना उठती है तो वह असद्वृत्ति ही कहलायेगी। आपके इस व्यवहार मे समता नही है, विषमता है। इसी प्रकार आप अपने जीवन की समस्त क्रियाओ के विषय मे सोच सकते है। अपनी इच्छा के साथ-साथ यदि आप दूसरो की इच्छाओ का भी ख्याल रखते है, तब तो आपकी प्रवृत्ति समता की सीमा मे आ सकती है। सद्-प्रवृत्ति मे सत्य निहित रहता है। सत्य बोलना सभी के लिए हितकर है। असत्य बोले और दूसरो को सत्य बोलने का उपदेश दे, यह न्याय सम्मत नही है। जो आपकी आत्मा के लिए अनुचित है वह दूसरो के लिए उपयुक्त कैसे हो सकता है। इसीलिए तो कहा गया है कि "आत्मनः प्रति-कूलानि परेषा न समाचरेत्" जो कार्य अपनी आत्मा के लिए प्रतिकूल है वह दूसरो के लिए कभी नही करना चाहिए।

कुछ प्रवृत्तिया सामाजिक भी होती है। उनकी भी एक सीमा है। उनकी भी एक व्यवस्था है। द्रव्य क्षेत्र काल और भाव की दृष्टि से उनमे परिवर्तन भी दीख पडता है। यह परिवर्तन सामाजिक है। इसमे समाज पक्ष की व्यवस्था निहित है। गृहस्थ के प्रत्येक सदस्य का अपना एक व्यव-हार है। धर्मपत्नी के साथ जो व्यावहारिक प्रवृत्ति है, वह पुत्रवधू के साथ नही है। इसी प्रकार अन्य सदस्यो के विषय मे विचार करना चाहिए। यह सामाजिक क्षेत्र की प्रवृत्ति है। अब प्रश्न होता है कि सद्-वृत्ति और असद्वृत्ति मे क्या अन्तर है? इसे केवल आत्मा के रूप मे सोचना चाहिए। पति की संज्ञा मे पति के रूप की जो भावना है उसे धर्म-निष्ठा, लक्ष्य के अनुरूप और सामाजिक नियमो के अनुसार निभाने की आवश्यकता होगी। इसी प्रकार पिता, [illegible] भाई, बहिन आदि सदस्यो को कर्तव्य के अनुसार निभाना सद्वृत्ति की सीमा मे लिया जा सकता है। सामाजिक सम्बन्ध भी एक दूसरे का पूरक होता है। यदि उसमे [illegible] होगी तो कर्तव्य उपेक्षित हो जायगा। [illegible] है, उसका उसके साथ सम्बन्ध है। [illegible] कर्तव्य है। यदि वह अपने इस कर्तव्य को [illegible] कर्तव्य की उपेक्षा करता है। [illegible]

है ! यह शास्त्रीय मर्यादा है। इन सब बातो से स्पष्ट है कि शास्त्रीय दृष्टिकोण लेकर चलना ही सद्प्रवृत्ति मे आना है। इसके विपरीत जो भी अशास्त्रीय बाते है वे असद्प्रवृत्ति मे मानी गई है। वे त्याज्य ही है।

जो दुष्प्रवृत्तियो के त्याग मे विश्वास नही रखते है वे सोचते हैं कि त्याग से क्या लाभ है ? मन में भावना शुद्ध रहनी चाहिए, त्याग की कोई आवश्यकता नही है। ऐसी धारणा के अनेक व्यक्ति आपको मिल जायेंगे। उनके अलग-अलग दृष्टिकोण होते हैं। उनकी मान्यतायें भी अलग-अलग होती है। ये लोग ज्ञान को अधिक प्रमुखता देते है ! त्याग प्रत्याख्यान के दृष्टिकोण को वे गौण मानते है। उनके सामने जब कभी त्याग का प्रसङ्ग आता है तो वे इस ओर अपनी असमर्थता व्यक्त करने लगते है ! जब त्याग में विश्वास ही नही है तो करेंगे कैसे ? जब त्याग नही करेंगे तो जीवन का विकास नही होगा। क्योकि दुष्प्रवृत्तियो के त्याग ही से जीवन का विकास होता है।

त्याग और श्रद्धा

मैं शास्त्रीय दृष्टिकोण की बात कह रहा हूँ। समता दर्शन का सिद्धान्त वीतराग देव की दृष्टि का सिद्धान्त है। आप स्वय सोचिये कि वीतराग देव की आज्ञा के अनुसार चलने वाला त्याग करेगा या नही ? त्याग पर विश्वास रखने वाला सदा यही भाव रखता है। यदि मै कोई त्याग प्रत्याख्यान नही कर कर पा रहा हूँ तो यह मेरी अपनी कमी हैं। अवसर और सामर्थ्य प्राप्त होने पर वह त्याग करता भी है। उसका त्याग पर विश्वास है, श्रद्धा है। जहाँ सच्ची श्रद्धा होती है वहाँ त्याग की भावना जागृत रहती है। वास्तविकता तो यह है कि जो सम्यक् दृष्टि होता है वह दुष्प्रवृत्तियो का अवश्य ही त्याग करता है। अतः जिनके मनमें त्याग प्रत्याख्यान के प्रति विश्वास नही है, वे मिथ्यात्व की ओर अपने आपको ले जा रहे है। मिथ्यात्व मे फसा मनुष्य अन्धकार मे भटक जाता है। उसे सही मार्ग नही मिल पाता है। उसकी भावना एकागीण बन जाती है। उसका सर्वागीण विकास नही हो पाता। सर्वांगीण विकास तो सर्वांगीण भावना से ही संभव है। भगवान् ने बुद्धि के दो रूप बताये हैं। एक प्रज्ञा और दूसरा प्रत्याख्यान। प्रज्ञा का अर्थ है जानना और प्रत्याख्यान का अर्थ है त्याज्य को त्यागना। इस समय आप उपदेश श्रवण कर रहे हैं। त्याग नही कर रहे हैं, परन्तु अपनी प्रज्ञा का लाभ तो ले ही रहे है। इसका यह

अर्थ हुआ कि पूरा लाभ लेने के लिए बैठे हुए आप स्वाभाविक रूप से अंशात्मक त्याग में बैठे हैं। भगवान् की वाणी श्रवण करने में अपना विश्वास रखकर भगवत् प्रतिपादित त्याग सिद्धान्त में भी अपना विश्वास व्यक्त कर रहे हैं। विश्वास एक बीज है। वह चाहे कितना ही छोटा हो, उसमें एक बड़े से बड़े वृक्ष का शरीर समाहित है। यदि बीज ही नहीं होगा तो वृक्ष कैसे बनेगा? इसी प्रकार विश्वास के विषय में समझ लेना चाहिए। विश्वास तो जीवन वृक्ष के विकास का सूचक है। विश्वास दृढ़ होगा तो भावना बढ़ती जायेगी, त्याग भावना वृद्धिगत होती जायेगी। इस भावना के तीन रूप बताये गये हैं। एक जघन्य, दूसरा मध्यम और तीसरा उत्कृष्ट। इसमें पहिली स्थिति भावात्मक है। विश्वास की प्रधानता है। वहाँ दुष्प्रवृत्तियों के त्याग की भावना मन तक सीमित है। इसी का नाम "बीज" है। तीनों भावनाओं में पहिली जघन्य भावना है। जब विश्वास में तीव्रता आती है, वाचिक शक्ति काम करने लगती है। त्याग की पताका में स्वर मुखरित होने लगते हैं तब मध्यम भावना होती है। इसके बाद आचरण की बात आती है। जब त्याग आचरण का रूप ले लेता है तब उसे उत्कृष्ट जीवन कहा जाता है। यहाँ आकर मन, वचन और काया के साथ त्याग का अभिन्न सम्बन्ध जुड़ जाता है। जब क्रियात्मक त्याग का मनुष्य करने लग जाता है तो उसे अपूर्व आनन्द का अनुभव होता है। उसके अनुभव से दूसरे लोग भी लाभ लेते हैं। यह स्व-पर कल्याण की स्थिति है। सम्यग् ज्ञान, दर्शन और चारित्र का सम्मिलित होना यहाँ है। एक प्रकार का चारित्रिक बीज स्थान है।

त्याग की अनिवार्यता

मुख ने भी त्याग दिया तो हलुवा पेट के अधिकार में चला गया। यदि मुँह का त्याग में विश्वास न होता तो बताइये उसकी क्या स्थिति होती ? उसका बोलना ही बन्द हो जाता। यह त्याग भावना का फल है।

यह त्याग के विषय को स्पष्ट करने के लिए एक छोटा सा उदाहरण दिया है। चाहे कोई आस्तिक हो या नास्तिक। यह सहज स्वाभाविक त्याग की स्थिति है। नास्तिक को भी ग्रास मुँह मे डालना पडता है। मुख से आगे गले से उतारना पड़ता। पेट मे जाकर भी एक भाग दूसरे भाग मे भोजन को छोडता रहता है। यह प्राकृतिक स्तर की बात है। प्रकृति भी त्याग के अनुरूप चलती है। इसका यह अर्थ हुआ कि— जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के लिए त्याग आवश्यक है। त्याग से जीवन सुखी बनता है।

राजनीति में भी त्याग आवश्यक :

एक व्यक्ति चुनाव मे खडा हुआ। अपने अपने अकथन परिश्रम और समर्थन से वह विजयी हो गया। उसमे राष्ट्र-कल्याण की भावना रही हुई थी। क्रमशः प्रयत्न करते-करते वह राज्य से केन्द्र मे चला गया। वहा उसे राष्ट्रपति पद के लिये चुना गया। जनता का प्रबल समर्थन पाकर वह राष्ट्रपति पद पर घोषित हुआ है, परन्तु जब तक "शपथ" नही लेगा, वह अपने अधिकारो का विधिवत उपयोग नही कर सकता। शपथ क्या है ? यह भी एक त्याग की प्रतिज्ञा है। समूचे राष्ट्र के लिए स्वार्थो का त्याग ही शपथ की परिधि मे आता है। इससे स्पष्ट है कि राजनीति के क्षेत्र मे भी त्याग की आवश्यकता रहती ही है। धार्मिक क्षेत्र हो या सासारिक, राजनैतिक हो या सामाजिक सब मे किसी न किसी रूप से त्याग को आवश्यक माना गया है। इतना अवश्य ध्यान में रखना चाहिए कि त्याग मे जाति पाति अथवा किसी सम्प्रदाय विशेष का कोई विचार नही होता। समता दर्शन सिद्धान्त के अनुसार जो त्याग करता है, वही त्यागी है।

जब तक दुष्प्रवृत्तियो के त्याग की भावना दृढ नही होगी। तब तक विकास का चरण आगे नही बढ़ सकेगा। साधना के विश्वास का जब प्रश्न आता है तो कुछ लोग सोचते-सोचते इतना सोचते है कि शून्य तक आ जाते हैं। शून्य चिन्तन का फल तो शून्य ही रहेगा। फिर पल्ले क्या पडा ? जब तक समता सिद्धान्त को भली भाति नही समझा जायेगा तब तक

कोई जीवन के महत्व को नहीं समझ सकता। जीवन का महत्व त्याग में है। दुष्प्रवृत्तियों का त्याग करिये और सत् प्रवृत्तियों को अपनाइये। सम्यक् ज्ञान का यही रहस्य है। जब तक हेय वस्तु का ज्ञान नहीं होगा तब तक उसे छोड़ा कैसे जावेगा। जिसे ग्रहण करना है उसे भी बिना समझे कैसे ग्रहण किया जावेगा? इसीलिए भगवान महावीर की उद्घोषणा है कि जीव को जानने का प्रयत्न करो, हेय का त्याग आवश्यक है और उपादेय को ग्रहण करने से ही जीवन विकास की ओर अग्रसर हो सकता है। यही सम्यक् सिद्धान्त दर्शन का सार है। इसे बार-बार सोचिये और विवेक पूर्वक जीवन में उतारने का प्रयत्न करिये।

समरकेतु कुमार का कथानक आपको सुनाया जा रहा है। वह एक तरुण राजकुमार है। आज उसके सामने एक तरुणी दुष्प्रवृत्तियों का निमित्त बन कर खड़ी हुई है। वह बड़े ही दुलारते शब्दों में प्रार्थना कर रही है। उसकी वासना का ताप प्रत्येक क्षण विस्तृत होता जा रहा है। भोग के सामने योग तिलमिला रहा है। किन्तु वह सम्यक् कुमार सम्यक् सिद्धान्त दर्शन का अनुगामी था। उसका अपने जीवन पर पूरा नियन्त्रण था। वह एक वीर योद्धा की भाँति इस 'रण क्षेत्र' में निर्भय और अडोल खड़ा रहा है। कहीं भी दुष्प्रवृत्ति उसे पकड़ नहीं पा रही है। यह स्थिति देखकर तरुणी का धैर्य टूटने लगा। जब उससे न रहा गया तो वह बड़े ही

पवित्र होता है तो उससे होने वाला कार्य भी पवित्र होता है। मैं आपके सम्मुख कारण मात्र बनकर उपस्थित हो रही हूँ। अपनी पत (इज्जत) की रक्षा करने के लिए मैं आपको पति के रूप मे वरण करना चाहती हूँ। आप मेरे जीवन साथी वन जाइये। आप चुपचाप क्यो खडे है, कुछ कहिये न। अनायास ही आपके हाथ मे एक रत्न आ रहा है। इसे छोडिये मत, ग्रहण कर लीजिये।

बन्धुओ, आप देख रहे है—एक नारी किस प्रकार विनाश के कगार की ओर बढ़ रही है। बात कुछ ठीक भी है। विषय विकार मनुष्य को अन्धा बना देता है। उसे अपना हित अहित कुछ भी नही सूझता। एक ओर तो यह नारी उस तरुण की पति बनना चाहती है। उधर कवि आनन्दघन जी कह रहे है—

ऋषभ जिनेश्वर प्रीतम माहरो रे।

भगवन् ऋषभ जिनेश्वर मेरे प्रीतम है। मेरे पति है। उस तरुणी की भावना मे और कवि की भावना मे कितना अन्तर है? कवि की यहा आध्यात्मिक दृष्टि है। उस ओर भौतिक दृष्टि की लालसा है। वह कुमार से कहती चली जा रही है। मैं वयस्का नारी हूँ। आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है। मैं सब प्रकार से उत्तम हूँ। मुझे एक उत्तम पुरुष की आवश्यकता है। उत्तम से सदा ही उत्तम की आवश्यकता पूर्ण होती आई है। अतः आप मेरी उत्तम आवश्यकता को पूर्ण करिये। मेरे पति बन जाइये। आप अनाथों के नाथ कहलाते है। फिर मेरे नाथ बनने में आप संकोच क्यो कर रहे है?

उस तरुणी के एक-एक शब्द मे आकर्षण था, एक लोच थी। सामान्य व्यक्ति के लिए ऐसी स्थिति का सामना करना बडा ही कठिन हो जाता है। यहा आकर बडे बडो के धैर्य टूट जाते है। शास्त्रीय भाषा मे इसे "मोह दशा" कहा गया है। आठ कर्मो का नाम तो आपने सुना ही होगा। जिन्हे पच्चीस बोल के थोकड़े का ज्ञान होगा वे जानते ही होगे कि क्रम की दृष्टि से मोहनीय कर्म का चौथा स्थान है। वैसे तो प्रत्येक कर्म अपने-अपने स्थान पर बलवान होता है। किन्तु उनमे मोह कर्म की शक्ति सातों कर्मों से अधिक मानी गई है। यही इस आत्मा को अनादि काल से नाच नचाता चला आ रहा है। जो इसे जीतने में तत्पर होता है, उसीका जीवन धन्य हो जाता है। कमलसेन कुमार मोहनीय कर्म की स्थिति को अच्छी तरह से जानता है। यही कारण है कि

[illegible] है [illegible] भी पौद्गलिक वासनाओ से [illegible] साम्राज्य है, विषमता का नही। [illegible] है कि—

[illegible] तीन ठौर ते खाय।
[illegible] नरे नरक लेजाय।

[illegible] है। वह मानव जीवन की तीन हानिया [illegible] यौवन का ह्रास और फिर नरक का निवास। [illegible] नारी का सम्पर्क मनुष्य को सभी प्रकार से दुखदायी है।

राजकुमार [illegible] के दुष्प्रवृत्तिमय विचारो को सुनकर चिन्तन [illegible] है। वह [illegible] कर्त्तव्य से भटक गई है। भटके हुए राही को [illegible] राह बताना मानवीय कर्त्तव्य है। मुझे अपने कर्त्तव्य का दृढता [illegible] पालन करना है। मैं सत्-प्रवृत्ति -मार्ग का पथिक हूँ। दुष्प्रवृत्तियो [illegible] त्याग करना मेरा मुख्य लक्ष्य है। इसको किस प्रकार समझाया जाय? [illegible] सब कुछ कह कर शांत हो जायगी, मैं इसके सामने अपने विचार [illegible]। जीवन के संघर्ष मे खरा उतरना है।

बन्धुओ, तरुणी बौद्धिक बल के सहारे अपनी भावना व्यक्त कर रही [illegible] और तरुण के पास आध्यात्मिक सम्बल है। दोनो का संघर्ष चल रहा है। अब देखिए कौन विजयी होता है। सारा विवरण यथा समय आपके [illegible] आजावेगा। मैं आप लोगो से समता सिद्धांत दर्शन के विषय मे कह रहा था। यदि आप दुष्प्रवृत्तियो के परित्याग का संकल्प ले ले, और [illegible] सत्प्रवृत्तियो की ओर बढने लगे तो आपका विश्वास सद्भावना-[illegible] हो सकता है। जो भाई बहिन तपस्या कर रहे है, वे भी समता सिद्धान्त [illegible] को अपने सामने रखकर चलें और त्याग के महत्त्व को समझें। इस [illegible] जीवन का विकास होगा। छोटे-छोटे त्याग विज्ञान पूर्वक करने मे [illegible] बन जाते है। इस प्रकार का विश्वास रखने मे आप [illegible] जीवन [illegible] हो जायेगा।

[illegible]

[illegible]

पवित्र होता है तो उससे होने वाला कार्य भी पवित्र होता है। मैं आपके सम्मुख कारण मात्र बनकर उपस्थित हो रही हूँ। अपनी पत (इज्जत) की रक्षा करने के लिए मैं आपको पति के रूप मे वरण करना चाहती हूँ। आप मेरे जीवन साथी वन जाइये। आप चुपचाप क्यो खडे है, कुछ कहिये न। अनायास ही आपके हाथ मे एक रत्न आ रहा है। इसे छोडिये मत, ग्रहण कर लीजिये।

बन्धुओ, आप देख रहे है—एक नारी किस प्रकार विनाश के कगार की ओर बढ़ रही है। वात कुछ ठीक भी है। विपय विकार मनुष्य को अन्धा बना देता है। उसे अपना हित अहित कुछ भी नही सूझता। एक ओर तो यह नारी उस तरुण की पति बनना चाहती है। उधर कवि आनन्दघन जी कह रहे है—

ऋषभ जिनेश्वर प्रीतम माहरो रे।

भगवन् ऋषभ जिनेश्वर मेरे प्रीतम है। मेरे पति है। उस तरुणी की भावना मे और कवि की भावना मे कितना अन्तर है? कवि की यहा आध्यात्मिक दृष्टि है। उस ओर भौतिक दृष्टि की लालसा है। वह कुमार से कहती चली जा रही है। मैं वयस्का नारी हूँ। आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है। मै सब प्रकार से उत्तम हूँ। मुझे एक उत्तम पुरुष की आवश्यकता है। उत्तम से सदा ही उत्तम की आवश्यकता पूर्ण होती आई है। अतः आप मेरी उत्तम आवश्यकता को पूर्ण करिये। मेरे पति बन जाइये। आप अनाथों के नाथ कहलाते है। फिर मेरे नाथ बनने में आप संकोच क्यो कर रहे है?

उस तरुणी के एक-एक शब्द मे आकर्षण था, एक लोच थी। सामान्य व्यक्ति के लिए ऐसी स्थिति का सामना करना बडा ही कठिन हो जाता है। यहां आकर बडे बड़ो के धैर्य टूट जाते है। शास्त्रीय भाषा मे इसे "मोह दशा" कहा गया है। आठ कर्मों का नाम तो आपने सुना ही होगा। जिन्हे पच्चीस बोल के थोकड़े का ज्ञान होगा वे जानते ही होगे कि क्रम की दृष्टि से मोहनीय कर्म का चौथा स्थान है। वैसे तो प्रत्येक कर्म अपने-अपने स्थान पर बलवान होता है। किन्तु उनमे मोह कर्म की शक्ति सातो कर्मों से अधिक मानी गई है। यही इस आत्मा को अनादि काल से नाच नचाता चला आ रहा है। जो इसे जीतने में तत्पर होता है, उसीका जीवन धन्य हो जाता है। कमलसेन कुमार मोहनीय कर्म की स्थिति को अच्छी तरह से जानता है। यही कारण है कि

आन्तरिक-प्रीति

प्रार्थना

ऋषभ जिनेश्वर प्रीतम माहरो और न चाहूँ रे कत।
रीझयो साहेब संगन परि हरे, भागे सादि अनन्त ॥१॥
प्रीत सगाई रे जगमा सहु करे रे, प्रीत सगाई न कोय।
प्रीत सगाई रे निरुपाधिक कही रे, सोपाधिक धन खोय ॥२॥

यह प्रभु ऋषभदेव भगवान् की प्रार्थना है, जो आप के सामने की जा रही है। आध्यात्मिक दृष्टि से कविता का सकलन के साथ उसका अर्थ समझना भी नितान्त आवश्यक है। इन पंक्तियो मे सबके सामने समझ मे आने वाली अलौकिक स्थिति का वर्णन है। किंतु यह वर्णन बाह्य दृष्टि से तो सरल ज्ञात हो रहा है, उसका आध्यात्मिक रूप कुछ पृथक् है। उस रहस्य की अभिव्यक्ति तब तक मनुष्य नही कर पाता है, जब तक कि उस रहस्य का अनुसधान न कर ले। प्रार्थना में ऋषभदेव भगवान् के लिये "कत" के रूप मे, स्वामी के रूप मे, और पति के रूप मे जो भाव व्यक्त किये गये है वे अत्यन्त चिंतन करने योग्य हैं। भगवान् ? मैं आपको कत तो बनाना चाहता हूँ किन्तु जो दुनिया मे आम जनता में कत और पति का जैसा रूप माना जाता है, मै वैसा भाव लेकर नही चल रहा हूं। प्रभु को यहा कंत बनाने का तात्पर्य प्रीति से है, किन्तु वह प्रीति दुनिया की प्रीति से भिन्न है।

"प्रीत सगाई रे जग मा सहू करे, प्रीत सगाई न होई।" ?

कवि कहना चाहता है कि जग मे प्रीति की सगाई सभी करते हैं परन्तु वस्तुतः वह प्रीति की सगाई नही है क्योकि जहा आन्तरिक शक्ति से प्रीति की सगाई की जाती है वहा बीच मे उपाधि नही आती। प्रीति उपाधि रहित होती है। उपाधि का तात्पर्य यहा बीच के माध्यम से है। किसी के माध्यम से की गई प्रीति उपाधियुक्त होती है। दो व्यक्ति जब

परिणत हो जाती है। जो शास्त्र आपके सामने व्याख्यान के आरम्भ से सुनाया जा रहा है, उसमें राजा परदेशी का वर्णन चल रहा है। उसकी सूर्यकान्ता नाम की महारानी के साथ प्रीति हो गई। यह प्रीति सांसारिक थी। जब तक इन दोनो मे इन्द्रियो के विषय का स्नेह रहा, प्रीति चलती रही, पर ज्योही राजा परदेशी का मन भोग से योग की ओर मुडा वह प्रीति अप्रीति मे परिवर्तित हो गई। प्राण प्यारी रानी सूर्यकान्ता द्वेष की प्रति मूर्त्ति बन गई। क्योंकि अब उसकी इन्द्रियाँ भूखी रहने लगी। इन्द्रियो को जब विषय सम्बन्धी भोजन नही मिलता तो उनमे एक विशेष प्रकार की विकृति आ जाती है। ऐसी स्थिति मे व्यक्तिगत स्वार्थों का मु ह खुल जाता है। प्राण न्योछावर करने वाली रानी आज राजा से इन्द्रिय सुख न मिलने की स्थिति मे सोच रही है कि पतिदेव अब मुझ से किंचित भी स्नेह नही करते हैं, उनका ध्यान सदा आत्म-चिन्तन में लगा रहता है, अब उन्हे न पुत्र का ध्यान है, न मेरा। और तो और न तो पुत्र को राज्य अधिकार दे रहे है, न मुझे राजमाता का पद ही प्राप्त हो रहा है। ऐसे पति से क्या लाभ है? इन्हे समाप्त करने पर ही मेरे अधिकार मुझे मिलेगे। बन्धुओ! आप देख ही रहे है—नकली प्रीति आखिर अपना रङ्ग ले ही आई, राजा जिस रानी को प्राणो से अधिक प्यार करता था, जीवन की प्रत्येक स्थिति में रानी के रूप लावण्य पर अपना सब कुछ न्योछावर किये रहता था जिस रानी के नाम को सदा स्मृति मे रखने के लिए उसने अपने पुत्र का नाम "सूर्यकान्त" रखा था, आज वही रानी 'सूर्यकान्ता' उबल रही है। इन्द्रिय सुख न मिलने की स्थिति मे उसका यह रूप कितना भयंकर है। उसके जीवन मे अब स्नेह नाम की कोई वस्तु नही है। यह इन्द्रियो के माध्यम से प्राप्त प्रीति का परिणाम है। प्राण सङ्गिनी रानी प्राण घातिनी बन गई। यह सारी कथा अभी आपके सामने नही रख रहा हूँ क्योकि इस समय मेरा विषय दूसरी ओर मोड ले रहा है। यहा तो प्रसङ्गवश थोडा सा सकेत कर गया हूँ। आज जो सासारिक सम्बन्ध हम देख रहे है वे सभी उपाधियुक्त हैं, उनमें मोह मदिरा का प्रभाव प्रधान रहता है। आत्मा के साथ परमात्मा का सीधा सम्बन्ध जोडने की स्थिति उपाधियुक्त नही होती। उपाधि सहित सम्बन्ध को कवि जीवन-धन का अपव्यय मानता है। यह अपव्यय जीवन की सबसे बडी हानि है। पूर्व जन्म के पुण्यो से प्राप्त शक्ति का सदुपयोग ही जीवन को सफल बनाता है। वर्तमान में प्राप्त वैभव का विवेक पूर्वक—प्रयोग करने से यह लोक और परलोक दोनो ही सुधरते हैं। इसी बात को कविता मे कहा गया है कि —

को भली भाति नही पा सकता है। मैं शास्त्रीय शब्दों में कहूँ कि वह सम्यग् दृष्टा नही वन सकता, क्योकि वीतराग भगवान ने सम्यक् दृष्टा के लिए प्रवत्ति और निवृत्ति दोनो का वर्णन पृथक्-पृथक् किया है।

यहाँ चरण की विधि बतलाई है जो सब ससार के प्राणियो के लिए हितावह है। जिस विधि को अपना कर बहुत से प्राणी ससार में अपने आपको ऊपर उठा कर ससार से पार हो गए और उन्होने मोक्ष प्राप्त कर लिया चरम सीमा को प्राप्त कर लिया। वह चरण विधि क्या है? एक तरफ निवृत्ति और दूसरी ओर प्रवृत्ति। यह शास्त्रीय परिभाषा है। शास्त्रो मे कहा गया है कि निवृत्ति किस से करो और प्रवृत्ति किसमे करो असजमे णियत्ति च सजमेय पवत्तण उ० ३०-२ इसमे इस बात का सकेत दिया गया है कि असंयम से निवृत्ति और संयम में प्रवृत्ति करो। असंयम दुष्प्रवृत्ति है। इसी असयम के कारण संसार मे अशाति है। विषमता की जडें हैं। मानव का दानव बनने की स्थिति असयम से ही आती है, आज मनुष्य, मनुष्य न रह कर पशु बन रहा है, एक दृष्टि से उसका कारण भी असयम ही है। आज तो इस असयम की स्थिति यत्र तत्र विस्तार पा रही है। तान्त्रिक दृष्टि से जीवन के किसी भी क्षेत्र मे असंयम का प्रवेश नही होना चाहिए, किंतु आज तो कोमल हृदय वाले बच्चो मे भी असंयम के सस्कार प्रचूर मात्रा मे प्रवेश पा रहे है। कभी-कभी तो किन्ही दो व्यक्तियो द्वारा ऐसा भी कहा जाता है कि हमे असंयम के लिए छूट दी जाय। हम अपनी इच्छानुसार प्रवृत्ति रखना चाहते हैं। हमारा सहशिक्षण हो, हमें 'सेक्स' की शिक्षा भी दी जाय। इस प्रकार की इच्छाओ के द्वारा असयम की प्रवृत्तियो को प्रोत्सान मिलता है। प्रत्येक वस्तु को समझने के लिए मनुष्य को विवेक से काम लेना चाहिए। जव तक इस तत्त्व को हम हृदयगम नही कर लेगे तब तक दुष्प्रवृत्तियो और सद् प्रवृत्तियो के रहस्य को नही समझ पायेगे। मैं कह रहा था कि वीतराग के मार्ग मे प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनो का प्रावधान है।

यहाँ इसी वात का सकेत हे कि दुष्प्रवृत्तियो का त्याग करो। यह निवृत्ति है किन्तु सद् साधना मे विश्वास प्रवृत्ति है। जब तक आप सद् साधना को नही अपनायेगे तव तक निवृत्ति की साधना भी सफल नही हो सकती। झूठ नही वोलना यह निवृत्ति है लेकिन केवल मूक होकर वैठ जाय तो यह स्थिति सही नही है। इसका दूसरा पक्ष है- झूठ नही वोलना परन्तु यदि आवश्यकतानुसार वोलना पडे तो सत्य वोलना। यह प्रवृत्ति

को भली भाति नही पा सकता है । मैं शास्त्रीय शब्दों में कहूँ कि वह सम्यग् दृष्टा नही वन सकता, क्योकि वीतराग भगवान ने सम्यक् दृष्टा के लिए प्रवत्ति और निवृत्ति दोनो का वर्णन पृथक्-पृथक् किया है ।

यहाँ चरण की विधि बतलाई है जो सब ससार के प्राणियो के लिए हितावह है । जिस विधि को अपना कर बहुत से प्राणी ससार मे अपने आपको ऊपर उठा कर ससार से पार हो गए और उन्होने मोक्ष प्राप्त कर लिया चरम सीमा को प्राप्त कर लिया । वह चरण विधि क्या है ? एक तरफ निवृत्ति और दूसरी ओर प्रवृत्ति । यह शास्त्रीय परिभाषा है । शास्त्रो मे कहा गया है कि निवृत्ति किस से करो और प्रवृत्ति किसमे करो असजमे णियत्ति च सजमेय पवत्तण उ० ३०-२ इसमे इस वात का सकेत दिया गया है कि असंयम से निवृत्ति और संयम मे प्रवृत्ति करो। असयम दुष्प्रवृत्ति है । इसी असयम के कारण संसार मे अशाति है । विषमता की जड़ें है । मानव का दानव बनने की स्थिति असंयम से ही आती है, आज मनुष्य, मनुष्य न रह कर पशु बन रहा है, एक दृष्टि से उसका कारण भी असयम ही है । आज तो इस असयम की स्थिति यत्र तत्र विस्तार पा रही है । तान्त्रिक दृष्टि से जीवन के किसी भी क्षेत्र मे असयम का प्रवेश नही होना चाहिए, किंतु आज तो कोमल हृदय वाले बच्चो में भी असंयम के सस्कार प्रचूर मात्रा मे प्रवेश पा रहे है । कभी-कभी तो किन्ही दो व्यक्तियों द्वारा ऐसा भी कहा जाता है कि हमे असंयम के लिए छूट दी जाय । हम अपनी इच्छानुसार प्रवृत्ति रखना चाहते हैं । हमारा सहशिक्षण हो, हमें 'सेक्स' की शिक्षा भी दी जाय । इस प्रकार की इच्छाओ के द्वारा असयम की प्रवृत्तियों को प्रोत्सान मिलता है । प्रत्येक वस्तु को समझने के लिए मनुष्य को विवेक से काम लेना चाहिए । जब तक इस तत्त्व को हम हृदयगम नही कर लेगे तब तक दुष्प्रवृत्तियो और सद् प्रवृत्तियो के रहस्य को नही समझ पायेगे । मैं कह रहा था कि वीतराग के मार्ग मे प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों का प्रावधान है ।

यहाँ इसी वात का सकेत हे कि दुष्प्रवृत्तियो का त्याग करो । यह निवृत्ति है किन्तु सद् साधना मे विश्वास प्रवृत्ति है । जब तक आप सद् साधना को नही अपनायेगे तव तक निवृत्ति की साधना भी सफल नही हो सकती ।, झूठ नही वोलना यह निवृत्ति है लेकिन केवल मूक होकर बैठ जाय तो यह स्थिति सही नही है । इसका दूसरा पक्ष है - झूठ नही बोलना परन्तु यदि आवश्यकतानुसार वोलना पडे तो सत्य वोलना । यह प्रवृत्ति

है। किसी जीव को नही मारना यह निवृत्ति है, लेकिन जो मृत्यु के मुख में जा रहे हैं, जो अशाति के कगार पर खडे है, उनका सरक्षण करना यह अहिंसात्मक प्रवृत्ति है। इसी प्रकार चोरी, कुशील, और परिग्रह का त्याग निवृत्ति है, तथा अचौर्य-ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की साधना प्रवृत्ति मानी गई है। सभी व्रतो मे निवृत्ति और प्रवृत्ति का समावेश है अतः दुष्प्रवृत्तियो का त्याग तथा सद् प्रवृत्तियो का पालन सबके लिए आवश्यक है।

पानी का प्रवाह, पहाड से चलता है, पानी स्थिर नही रहता क्योकि उसका स्वभाव बहने का है। जिधर रास्ता मिलता है उधर ही वह चल पडता है। जिधर कुछ उसे मिट्टी की कमजोरी मिलती है उधर ही बहकर वह अपना रास्ता बनाकर नदी का प्रवाह रूप ले लेता है। जब उस स्वच्छन्दता से बहने वाले पानी को मनुष्य ने बाधने का प्रयत्न किया तो उसके मनमे पानी के उपयोग की भावना जाग उठी। इसी भावना से प्रेरित होकर और पानी के अपव्यय को रोकने के लिए मनुष्य ने अनेक बाध बनाये है। स्वच्छन्द पानी तो जिधर भी रास्ता मिलता है उधर ही बह निकलता है, उस पर किसी का नियत्रण नही होता। उसे स्वय को भी यह नही मालूम कि वह किधर जा रहा है ? दूसरी ओर जो पानी बाध के रूप मे नियंत्रित हो चुका है, उसका उपयोग भी किया जा सकता है। उसे जिधर चाहो उधर ही ले जा सकते हो। यही बात आपके जीवन की है। जीवन का अनियंत्रण समाप्त करो। उसे नियत्रित और सुव्यस्थित रूप से चलाओ। इसी मे आपके जीवन की सफलता निहित है।

आप कमलसेन का चरित्र सुन रहे है। वह एक राजकुमार है। उसका सौन्दर्य अद्वितीय है। युवा होते हुए भी उसे अपने ऊपर पूरा भरोसा है। उसकी समस्त इच्छाए उसके अपने नियत्रण मे हैं। अनैतिक व्यापारो की ओर उसका किंचित् भी झुकाव नही है। इस समय वर राज भवन के प्रागण मे खडा है। उसके सामने एक तरुणी अपना सर्वस्व न्योछावर करने को तत्पर है। इस राजकुमार को वह अनेक तरह से अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न कर रही है। उसने अपने जो विचार राजकुमार के सामने रखे थे, उन्हे मैं आप लोगो को बता चुका हूँ। अब कुछ आगे सुनिये। दोनो का सवाद चल रहा है। अपने प्रस्ताव को प्रभावोत्पादक बनाने की दृष्टि से तरुणी ने कहा कि:–नदी. नारी, किरण, सूर्य और सज्जन, इन पाँचो को पवित्रता के साथ देखना चाहिए। कुमार ने इन बातो को ध्यान से सुना और अपने मन मे सोचने लगा.–क्या इसका कथन सत्य है। यदि नारी को

पूर्णरूपेण पवित्र मान लिया जाय तो इसका जीवन इस बात का अपवाद है। अतः यह कथन एकागी लगता है। तरुण अपने अन्तर मे एक एक बात का विवेचनात्मक दृष्टि से विश्लेषण कर रहा है।

आत्मवत्सर्वभूतेषु

नारी तभी पवित्रता का प्रतीक मानी जा सकती है, जब उसके हृदय मे वास्तविक रूप से समता सिद्धान्त घर कर जाय। जैसे माता अपनी सतान के प्रति भी ममता की भावना रखती है, वैसी ही भावना पडोसी को सतान के प्रति भी रहे। इससे भी आगे ससार के प्रत्येक प्राणी के साथ यथा सभव यथा शक्ति, ऐसी ही भावना विकसित होती रहे इससे नारी समाज की प्रतिष्ठा बढती है, सम्मान बढता है और उसके गुणो का विकास होता है। इसके विपरीत जो नारी सदा मोह मे ही उलझी रहती है, अपने नारीत्व का तनिक भी ध्यान नही रखती। दुष्प्रवृत्तियो की दासी बनी रहती है। उसे पवित्र कहना उचित नही है। उसके व्यवहार से परिवार, समाज, देश, तथा राष्ट्र सभी के जीवन को हानि पहुँचती है। वहिने यदि अपने जीवन के स्वरूप को भलीभाति समझले तो इन अधिक उपदेशो की आवश्यकता ही न रहे। क्योकि माता ही मनुष्य का सर्व प्रथम 'शिक्षक' है। वह अपने जीवन निर्माण की नैसर्गिक कला के द्वारा सतान को जैसा चाहे वैसा ही बना सकती है। यह कला कमल सैन की माता को ज्ञात थी। उसकी शिक्षा का ही यह प्रभाव था कि विकारो की भयकर आधी मे भी वह अडिग खडा हुआ था। वह बार बार यही सोच रहा था कि:–यह कैसी स्त्री है इसे अपने कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का तनिक भी ध्यान नही है। इसने "परललना' रखने वाले को उत्तम पुरुप कह कर तो अपनी वास्तविकता ही प्रगट कर दी। "परनारी" रखने वाला उत्तम पुरुप कैसे हो सकता है? उसे तरुणी का भाव समझने मे कुछ भी देर नही लगी। उसने शीघ्र ही इस तथ्य को पकड़ लिया कि यह तो मुझे फमाने के लिए एक शाब्दिक जाल फेका गया है। कुमार ने तरुणी की सभी बातो को सुना और फिर बोला —

कमल सेन भी प्रगट रूप मे करता है उच्चार।
परस्त्री का त्याग किया, दोष लगे निरधार जी॥

वहिन? तुम्हारी बातो मे कोई-तथ्य नही है। तुम्हारे सभी प्रश्नो का उत्तर देने से एक विवाद खडा हो जायेगा किन्तु उत्तम पुरुप के साथ परललना का विशेपण लगा कर तुमने सूर्य पर राहू का कलंक लगा दिया

है। उत्तम पुरुष तो परललना की तरफ देखता भी नही है। फिर रखने की तो बात बहुत दूर की है। वह तो अपनी विवाहिता धर्म पत्नि के अतिरिक्त ससार की भी स्त्रियो को अपनी माता या बहिन समझता है। आप इधर मुझे उत्तम पुरुष की कोटि मे रखना चाहती हो और उधर मेरे साथ 'परललना' का विशेषण लगाने का दुष्प्रयास कर रही हो यह कहा तक ठीक है ? मैं परललना हूँ और मुझे आप रख लीजिए यह कैसी दोहरी बात है। बहिन ? इस प्रकार की बातें आपके मुंह से शोभा नही देती। आप तो मुझे भ्राता के तुल्य देखें। मैं आपका भाई हूँ। मैंने आज तक किसी भी विकारी भाव को अपने मन मे नही घुसने दिया है। तुमसे भी अधिक सुन्दरी कन्या से मेरे विवाह का प्रस्ताव रखा गया था, किन्तु मैंने उसे स्वीकार नही किया. मैं अपने जीवन की वर्तमान गतिविधियो का गम्भीरता पूर्वक चिन्तन कर रहा हूँ। मैं जीवन का विकास चाहता हूँ। इसे बन्धन मे डालना नही चाहता। इसका यह अर्थ नही है कि मैं साधु बनने जा रहा हूँ। साधुव्रत की साधनाओ के निर्वहन मे पूर्ण सक्षम हुए बिना उस व्रत को कैसे धारण किया जा सकता है। हाँ ऐसी भावना नित्य प्रति अवश्य रहती है कि वह दिन मेरे लिए धन्य होगा, जब मैं सर्व तो भावेन साधु बनकर अपने जीवन का कल्याण करूगा। अभी मेरी ऐसी स्थिति नही है। दुष्प्रवृत्तियो पर विजय प्राप्त करने का दृढ सकल्प अवश्य है। अत आप मेरे लिये—इस प्रकार की कल्पना भी न करे। मैं आपको बहिन कह चुका हूँ। इस पवित्र सम्बन्ध को पवित्रता के साथ ही निभाने का शक्ति भर प्रयत्न करूगा। आपको भी इस सम्बन्ध के अनुरूप ही मेरे साथ व्यवहार करना चाहिए।

> उत्तम जन तो नासाश्लेष्मवत् त्याग करे चितधार।
> इससे ऐसा शब्द न बोलो मलीन बने नर नार॥

बहिन ? आपने मुझे उत्तम पुरुष की संज्ञा दी है। मेरी उत्तमता को कलंकित होने का प्रसंग कभी मत आने देना। उत्तम जन, पवित्र पुरुष नाक के श्लेष्म की तरह परस्त्री का त्याग करके चलता है। नाक का श्लेष्म जिसे आप नाक का मैल कहते है। उसे नाक मे कोई बुद्धिमान् मनुष्य नही रखता। गृहस्थाश्रम मे रहने वाला उत्तम पुरुष भी पर स्त्री को नाक के श्लेष्म की भाति ही देखता है। यही स्थिति मेरी है। आप मुझे लुभाना चाह रही हैं। बहिन ? मैं तो समता की तुलना लेकर चल रहा हूँ, इसलिए तुम्हारे शब्दो का मैंने अपने विचारो के अनुकूल ही भाव लिया

है। यदि ये शब्द तुम किसी साधारण व्यक्ति के सामने प्रयोग कर जाती तो अनर्थ हो जाता। एक उत्तम कहलाने वाला पुरुप यदि पर स्त्री को रखता है तो फिर दूसरे साधारणजनों के लिए उसका निपेध कैसे किया जायेगा? तुम्हारी इस दृष्टि से दुष्प्रवृत्तियो को प्रश्रय मिलता है। आप कहती है, मै अनाथ हूँ। मै सोचता हूँ कि आपकी अवस्था अनाथो जैसी नही है। फिर भी इसके अतिरिक्त आपको और कोई संरक्षण चाहिए तो मै सहर्ष देने को तैयार हूँ।

भय और प्रलोभन के दांव

मै आपको बहिन के रूप मे निर्वाह की दृष्टि से सहायता दे सकता हूँ। जीवन भर तुम्हारा निर्वाह कर सकता हूँ। धन धान्य आदि जो भी चाहो जुटा सकता हूँ। आपकी सभी नैतिक इच्छाऐं पूर्ण कर सकता हू। इस दृष्टि से तो मैं आपको 'सनाथ' बना सकता हूँ, लेकिन आपकी भावना के अनुसार मै नाथ बनने को तैयार नही हूं। आप मुझे चाहे जो कुछ भी कहे। तरुण राजकुमार के इन वचनो को सुनकर उस तरुणी के मन मे एकदम जोश उभर आया, वह कहने लगी अरे राजकुमार? तू क्या कह रहा है? क्या सोच रहा है? तुझे कुछ भान भी है। मेरे जैसी अप्सरा तुल्य तरुणी तुझे कहां मिलेगी? मुझे तू केवल इस शरीर के रूप मे ही न देख, मेरे असली स्वरूप अनुपम सौन्दर्य और साथ-साथ ही जीवन पर भी दृष्टि पात कर? मेरे वैभव के पीछे कितना अर्थ, कितना ऐश्वर्य और न जाने क्या-क्या सयोग जुटा हुआ है? तुम किसी देश के राजा बन सकते हो पर यह सौन्दर्य तुम्हें इस जीवन में नही मिल सकेगा। यदि तुम मेरी बात स्वीकार कर लोगे तो यह सारा वैभव और इसके साथ-साथ मेरे जैसो तरुणी आपके चरणो की चेरी बनकर रहेगी। यदि आपने मेरी बात को स्वीकार न किया तो सोचले इसका परिणाम अच्छा नही होगा। इस स्थिति में आप अपने जीवन से हाथ धो बैठेंगे। इधर जीवन का सर्वनाश है अब भी समय है, मै स्पष्ट कह रही हूँ। कल्पलता के समान मैं—आपकी सभी इच्छाओ को पूर्ण कर दूंगी। तरुणी जोश मे अपनी बात को कहती ही चली गई। कुमार के मन पर उसका कोई प्रभाव नही पडा। उसने अपनी सहज वाणी मे कहा:—

प्रलय काल की आधी आवे सूर्य करे अधियार।
सर्वनाश हो वे तो भी मैं करू नही स्वीकार॥

बहिन ! आप मुझे कितने ही जोशीले शब्द कहे और कितनी ही उत्तेजना दे, मैं अपने जीवन मे समता की स्थिति लेकर चल रहा हूं । विकारो की आधी मुझे अपने मार्ग से नही डिगा सकती । तुम मुझे मृत्यु का भय दे रही हो । मेरा सर्वनाश तुम क्या करोगी ? मै पहिले ही तुम्हे अपना प्रण सुनाये देता हूं—यदि प्रलय काल की आधी चले, जिस आधी के कारण ससार का एक दृष्टि से खण्ड प्रलय हो जाता है, सर्व प्रलय नहीं, जिसमे कोई भी व्यक्ति अवशेष नही रह सकता, ऐसे समय भी यदि कोई मुझे यह कहे कि इस आधी मे तुम नष्ट हो जावोगे अत. इस कन्या को स्वीकार करलो, तब भी मैं तुम्हे स्वीकार नही करूंगा । तुम मेरा अन्तिम प्रण भी सुनलो—सूर्य पश्चिम से उदय होने लगे, जगत आधारिणी पृथ्वी आधार देना छोडदें, ससार के सभी पदार्थ अपना स्वभाव त्याग दें किन्तु मैंने जो दुष्प्रवृत्तियो का त्याग कर सत् प्रवृत्तियो मे रहने का निश्चय लिया है, उससे विचलित नही होऊंगा । आप जो कुछ भी करना चाहती हैं कर सकती है, मुझ पर उसका कोई प्रभाव पडने वाला नहीं है । मैंने आपका पीछा, आपका पता लगाने के लिए स्वाभाविक रूप से किया था, अब मैं आपके रहस्य को समझ गया हूं । अब अधिक कुछ जानने को उत्सुक नहीं हूं । ऐसा कह कर राजकुमार वहा से चल पड़े । अभी वे दो चार कदम ही चल पाये थे कि वह तरुणी फिर बोल पड़ी । इस बार के उसके शब्द कुछ ऐसे प्रभाव के थे कि कुमार को इच्छा न होते हुए भी रुकना पड़ा । वे शात भाव से खडे हो गए और बोले—बोलो, बहिन ! क्या कहना चाहती हो ।

लाल भवन
१७-८-७२

आत्म-साधना

प्रार्थना

ऋषभ जिनेश्वर प्रीतम माहरोरे और न चाहु रे कत।
कोई कत कारण काष्ठ भक्षण करे रे मलशु कत ने धाय।
ए मेलो नवि कइये समवेरे मेलो ठाम न ठाय ।। ऋषभ०

यह ऋषभ देव भगवान् की प्रार्थना है। पद्य की पक्तियों में एक विशिष्ट अर्थ निहित है। उसे पढते जाइये, अनुसधान करते जाइये, आपको एक अलौकिक आनन्द प्राप्त होगा। पिछली पंक्तियो के भावार्थ तो आप सुन ही चुके है, यहा शेष रही पक्तियो पर विवेचन करने जा रहा हूँ। अपने इष्ट को प्राप्त करने के लिए सासारिक आत्माए अनेक प्रकार के कष्ट सहन करती है। कभी उसकी चिता के साथ जल मरने का प्रयास करती है तो कभी पानी मे डूब कर या अन्य अनेक विधि के प्रयोगो से उसे अपने इष्ट (पति) को प्राप्त करना चाहती है! किन्तु उनकी इन अज्ञान जन्य क्रियाओ से उन्हे अपने साध्य की सिद्धि प्राप्त नही होती। जब हम भगवान् को पति के रूप मे देखना चाहते है, तब हमारा लक्ष्य सीधा परमात्मा की ओर होता है। अपनी चेतना शक्ति को प्रभु के चरणो मे समर्पित करके उनके तुल्य बनना चाहते है। आध्यात्मिक रूप से यह पति का दर्शन है। यह दो महान् तत्त्वो के मिलन का प्रश्न है। सासारिक सम्बन्धो से ऊपर उठकर ही इस प्रश्न का समाधान हो सकेगा। प्रभु वीतराग बन चुके है। वीतराग दशा मे उनके लिए राग का कोई प्रश्न ही नही उठता है। सांसारिक पति और पत्नी के सम्बन्ध मे राग भाव की प्रधानता होती है। रागी व्यक्ति की प्रत्येक क्रिया मे राग भावना किसी न किसी रूप में झलकती रहती है? राग दशा एक प्रकार की विकृति है। ऐसी स्थिति मे यदि मानव, भगवान् से सम्बन्ध जोडना चाहता है, और वह भी पति के रूप मे। यह कैसे सभव हो सकता है? सम्बन्ध सदा समान प्रकृत्ति मे ही हो

सकते हैं। विषम प्रकृति मे ऐसा संभव नही हो सकता। परमात्मा सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तथा सासारिक पदार्थों के आकर्षण से पृथक् है। उनके साथ द्रव्य प्रेमी का सम्बन्ध कैसे हो सकता है? जो जिसके स्वभावानुकूल होता है, उसी से उसका सम्बन्ध होता है। यह एक सैद्धान्तिक तथ्य है। प्रार्थी ससारी हैं, और जिसकी वह प्रार्थना कर रहा है वह असासारिक परमात्म तत्त्व है। दोनो का सम्बन्ध कैसे हो सकता है? ऐसी स्थिति मे कवि आनन्दघन की इस प्रार्थना का क्या उद्देश्य रहा? प्रार्थना की ये पंक्तिया हमे कुछ सोचने पर बाध्य करती हैं। कवि की भावना मे कोई विशिष्ट रहस्य अवश्य है। इस स्थिति मे आकर हमे अपना आत्मिक अनुसधान करना होगा। तभी हम इस महान् रहस्य को पा सकेंगे कि आत्मा और परमात्मा दोनो ही एक स्वभाव के तत्त्व हैं। आज हमारी आत्मा, अपनी आत्म शक्ति का सहारा न लेकर अपने से भिन्न बुद्धि का आश्रय ले रही है। यह अपने से भिन्न पदार्थों मे रमण की क्रिया ही उसे परमात्मा से भिन्न (पृथक्) बनाये हुए है। शुद्ध जल को दो भागो मे रख दीजिए। एक मे काला रग मिल जाने पर दोनो जल भिन्न २ दीखने लगेगे। उनका आपस मे मेल नही खायेगा किन्तु ज्योही पानी के कालेपन को निकाल दिया जायगा, पानी अपने पूर्व रूप मे आ जायगा, तब उस पानी का आप अभिन्न सम्बन्ध स्थापित कर सकते है। यह एक दृष्टि का दृष्टान्त है, सर्वांगीण नही। उस का कुछ अंश ही हमारे काम का है। हम अपने स्वरूप को समझें। परमात्मा के स्वरूप को समझे। फिर देखे उनमे क्या भिन्नता है? यही आकर हम सम्बन्ध की स्थिति मे आ जायेंगे। यहा यह स्पष्ट अनुभव होने लगेगा कि :—

बुद्धि को पतिव्रता बनाइये

"अप्पा सो परमप्पा"

आत्मा ही परमात्मा का स्वरूप है। इसका अर्थ यह हुआ कि तू ही अपना पति है, कोई अन्य नही। पति के सम्बन्ध मे पत्नी शब्द का प्रसग आता है। उसे इस प्रकार समझा जा सकता है। आत्मा शब्द पुल्लिग मे भी प्रयुक्त होता है, और उसकी चेतना को सहयोग देने वाला बुद्धि तत्व स्त्रीलिंग मे आता है। पत्नी जब पति के अनुरूप आचरण करती है तभी उसे पतिव्रता कहा जाता है। वह कभी अपने पति से विपरीत नही जाती! इसी प्रकार बुद्धि आत्मा के अनुरूप आचरण करे, उसके सभी कर्त्तव्यो का ध्यान रखे, वही बुद्धि "पतिव्रता" बुद्धि कहला सकती है। यदि ऋषभदेव

भगवान् को पति बनाना है तो आप वुद्धि ललना के सहयोग से ही ऐसा कर सकेगे। यदि उस बुद्धि को आत्मा के साथ जोड देते हैं तो हमारा प्रयास सफल हो जाता है। इस प्रश्न के समाधान मे लोगो ने अपने-अपने दृष्टि-कोण के अनुसार अलग २ मार्ग—(उपाय) बताये हैं; यदि आप सूक्ष्म दृष्टि से देखे तो इससे आत्म साधना सफल नही होगी। जीवन साधना के क्षेत्र में हमे विवेक से कार्य करना होगा। व्यर्थ ही शरीर को कष्ट देने या उसे अग्नि जल आदि मे नष्ट करने से कार्य सिद्धि नही होगी।

मनुष्य अज्ञानता से भटकता है। समता सिद्धान्त के द्वारा प्राप्त ज्ञान से ही हम अपना जीवन प्रशस्त कर सकेंगे हमारे शरीर मे अनेक तत्त्व हैं शरीर एक पिड है उसमे सारे ब्रह्माण्ड का नक्शा रहा हुआ हैं। इस विषय को समझना भी आवश्यक है। साधना के क्षेत्र मे साधक चलता है तो वह साधक तीर्थकर जैसा नही होता। उस साधक के लिए किसी अन्य साधन सपन्न साधक की आवश्यकता रहती है। साधना मे चलता हुआ साधक यदि कभी बीमार हो जाय तो रोग के कारण उसकी साधना मे बाधा आ सकती है। असमर्थ और अस्वस्थ दशा मे कभी-कभी वह अपनी परिचर्या भी नही कर पाता। ऐसी स्थिति उसे निष्क्रिय बना देती है। दूसरे साधक, संत साथ मे हों तो बीमारी की अवस्था मे, सकट की अवस्था मे सहयोग कर उसे साधना मे आरूढ कर सकते है। इसलिए साधक के लिए अन्य साधको के साहचर्य्य की आवश्यकता है। अन्य साधको का समूह बनेगा, वह एक तरह से साधको का सघ बनेगा। सघ की स्थिति मे कार्य चालू होगा तो उसके साथ सघ मे किंवा समूह मे रहने वाले अन्य साधको का अस्तित्व स्वीकार करना पडेगा। मै जैसा साधक हूँ, वैसे ही मेरे साथ रहने वाले भी होने चाहिए। मेरा और मेरे साथियो का एक ही लक्ष्य है। जब दोनो का एक लक्ष्य होगा तो साथ चलने का प्रयास भी होगा, एक दूसरे के सुख दु ख मे सहयोगी भी होगे। इस भावना से जितने साधक चलने वाले होते है वे एक दूसरे के साथ हमदर्दी रखते हुए, उनका अस्तित्व स्वीकार करके चलते है। इसलिए दुष्प्रवृत्तियो का त्याग करके चलने वाले साधक के लिए अन्य साधको का अस्तित्व स्वीकार करने की आवश्यकता है। एक साधक साधना की अवस्था मे शरीर को लेकर चल रहा है, उसे वस्त्र, मकान, आदि अन्य उपकरणो की भी आवश्यकता होगी। ये वस्तुएँ उसे उपार्जन करने वाले गृहस्थो से ही प्राप्त हो सकती है। इस स्थिति मे गृहस्थ का अस्तित्व भी स्वीकार करना पड़ेगा। इसके बिना जीवन की

साधना आगे नही बढ सकती । बात यहीं समाप्त नही होती । आगे बढते २ हमे समाज, देश और राष्ट्र सभी के अस्तित्व को स्वीकार करना पडेगा !

यहा एक बात अवश्य ध्यान मे रखनी है । उन्नत साधना के साधको को निम्न श्रेणी के साधको का तिरस्कार नही करना चाहिए । क्योकि गृहस्थ अवस्था मे रहने वाले निम्न कोटि के साधको द्वारा ही उसे अपनी साधना मे सफल होने का सहयोग मिलता है । बडा साधक हो, यहा तक कि सर्वज्ञ ही क्यो न हो जब उन्हे भोजन की आवश्यकता होगी तो गृहस्थ के द्वार पर जाना ही होगा । इससे स्पष्ट है कि गृहस्थ एक पडौसी साधक है । साधना अवस्था मे एक दूसरे को, एक दूसरे के सहयोग की आवश्यकता रहती ही है ।

हम और हमारे पडौसी सभी साथ-२ रह रहे है तो हमारी आवश्यकताएँ भी समान होगी । अन्न, वस्त्र, औषधि और मकान आदि सभी आवश्यकताओ मे हमे पडौसी को साथ लेकर चलना चाहिए । मैं और मेरा पडौसी भिन्न २ नही, एक ही स्थिति के व्यक्ति हैं । व्यक्ति से परिवार बनता है और परिवारो के समूह से ग्रामो का निर्माण होता है । हमे इन सबके अस्तित्व को स्वीकार करके चलना है । इस प्रकार ज्यो-ज्यो हमारे सम्बन्ध बढते जायेंगे, हम विस्तृत होते जायेंगे । एक समय वह आ जायेगा जब समूचे विश्व के साथ हमारा सम्बन्ध होगा ।

आत्मा का अस्तित्व

ससार के समस्त प्राणियो से हमारा सम्बन्ध होगा । हम आत्मा के सम्बन्ध को मानने वाले हैं । इस स्थिति मे एकेन्द्रिय से पचेन्द्रिय तक हमारा सम्बन्ध है । आत्मा की दृष्टि मे किसी मे भी भिन्नता नही है । यदि इस वर्णित सत्य को स्वीकार न किया गया तो हम वस्तु स्थिति को नही पा सकेंगे । एकेन्द्रिय आदि जीवो मे अपने ही जैसे आत्म-प्रदेशो को अस्तित्व न मानना तो अपने ही आप के अस्तित्व को मानने जैसा है । यह बात आत्मिक दृष्टि से कही गई है, चर्म नेत्र चक्षुओ की दृष्टि से नही । लेकिन अगर उनके अस्तित्व को स्वीकार नही किया गया और सोचा गया कि मेरे अन्दर आत्मा को जो प्रदेश है वे एकेन्द्रिय मे नही है उनको दिखता नही है तो मैं उनके अस्तित्व को कैसे स्वीकार करूँ, इसके विपरीत भावना लेकर चलने वाला साधक सम्यक साधक नही कहला सकता । वह तो भटक जायगा । इसलिए शास्त्रकारो का कहना है कि सबसे

पहले प्रत्येक प्राणी को अस्तित्व स्वीकार करो। अस्तित्व की दृष्टि से सोचा जाय तो सब आत्माओ के असख्य प्रदेश है, उन सब का बराबर अस्तित्व स्वीकार करते है तब एक आदर्श सामने आता है। वह यह है कि जैसे असंख्य प्रदेश हमारे है, उसी तरह के पशु के है और उसी तरह के एकेन्द्रिय मे भी है। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि जब सब जीव समान हैं तो उनकी समान स्थिति दिखती क्यो नही है। हम पशु को देखते है वह विवेक शक्ति से चलता है, उसको समझने का प्रयत्न भी करता है, पर समझ नही पाता। जब पंचेन्द्रिय मनुष्य को हम देखते है तो मनुष्य सब कुछ समझता है, उसकी बुद्धि का विकास हो रहा है, वह तो आज सृष्टि के रूप को सुन्दर बनाने जा रहा है, उसने आज क्या कुछ नही कर लिया है, आज मानव की बुद्धि कहाँ से कहाँ पहुंच गई है, वह निरन्तर आगे गति कर रहा है। फिर आप कैसे कह सकते है कि एकेन्द्रिय और मनुष्य में समान असंख्य प्रदेश हैं। आपका तर्क और प्रश्न दोनो ही ठीक है और इसका समाधान हुए बिना मानव अपनी साधना में शान्ति से नही बैठ सकता है, उसके मस्तिष्क मे उथल-पुथल मचती रहेगी। आज मेरे भाई अधिकाश साधना में बैठते है, सामायिक करते है, धर्म ध्यान की भावना से चलते है लेकिन मन स्थिर नही रहता है। साधना मे मन नही लगता है। क्यो नही लगता है? इसके कई कारण हैं। उनमे से एक कारण यह भी है, हम वस्तु स्थिति को ठीक तरह नही समझते है, जहा आत्मा और परमात्मा का प्रश्न है, मनुष्य के जीवन और एकेन्द्रिय का प्रश्न है, मनुष्य के शरीर और पशु के शरीर का प्रश्न है—उन प्रश्नो मे असख्य प्रदेश मान लेने की दृष्टि से, असख्य प्रदेश के साथ यदि तारतम्यता नही समझी गई और केवल रट लगाते रहे तो वस्तु स्थिति का ठीक से दर्शन नही हो पायगा शास्त्रीय दृष्टि असख्य प्रदेश एकेन्द्रिय, पचेन्द्रिय सबके समान है। उसकी हिसा सबकी हिंसा है, चाहे पचेन्द्रिय की हो, चाहे तीन इन्द्रिय की हो, चाहे एकेन्द्रिय की हो। तो यह सोचना युक्ति विकल है।

भगवान् ने आत्मा के असख्य प्रदेश बताये है। पर यह बताते हुए एकेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय का विकास समान नही बताया है। वहाँ विकास की दृष्टि से तारतम्यता बतलाई है। विकास की दृष्टि से एकेन्द्रिय का विकास न्यून है, असख्य प्रदेशो का उनमे सकुचन हो गया है। एक इन्द्रिय वाला एकेन्द्रिय जीव है, दो वाला द्वीन्द्रिय जीव है, तीन वाला त्रीन्द्रिय जीव है, चार इन्द्रिय वाला चारइन्द्रिय है। एकेन्द्रिय वाले और पंचेन्द्रिय वाले जीव

मे अन्तर बतलाया है और उसके साथ यह भी बतलाया हैं कि उनको उसी रूप मे स्वीकार किया जाय जिस-जिस रूप मे वे हैं। एकेन्द्रिय को एकेन्द्रिय के रूप मे स्वीकार किया जाय, पचेन्द्रिय को पचेन्द्रिय के रूप मे स्वीकार किया जाय उनके विकास क्रम को सदा दृष्टि मे रक्खा जाए। जीवत्व दृष्टि से उन्हे एक माना जा सकता है किन्तु अवस्थाएं भिन्न-भिन्न ही रहेगी इस प्रकार की दृष्टि को ही समता दृष्टि कहा जाता है। जैसे बच्चा जवान और वृद्ध सभी मनुष्य हैं, मनुष्य के नाते मनुष्य मान लेगे लेकिन विकास की दृष्टि से बच्चे का विकास कम है। बच्चे को बच्चे के तुल्य माना जायगा, जवान को जवान की अवस्था मे देखा जायगा और वृद्ध को वृद्धावस्था मे देखा जायगा। यह देखने वाले की सीमा है कि वह तीनो के भेद को नही देख पाये, तीनो के लिए एक तरह का भोजन आगे रख दे और तीनो को कहदें कि तीनो एक जैसा भोजन करे, काम भी एकसा करे तो सारी व्यवस्था उथल पुथल हो जायगी और यह व्यवस्था अव्यवस्था का रूप लेलेगी।

ऐसी मान्यता से समता नही विषमता ही बढेगी। इसलिए यह मानना होगा कि मनुष्य-मनुष्य मे अन्तर है। इसी प्रकार एकेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय मे भी भेद है तो उनकी हिंसा और अहिंसा मे भी भेद है।

विकसित अविकसित का अन्तर ?

मनुष्य जाति के एक होने पर भी उनमे रात-दिन का अन्तर पाया जाता है। एक मनुष्य उन्नत विकासशील है तो दूसरा मनुष्य आदिवासी है। एक मनुष्य शहर का प्रतिष्ठित नागरिक है, एक मनुष्य एक प्रदेश का मुख्यमत्री है, एक मनुष्य एक देश का प्रधान मत्री है और एक मनुष्य एक देश का राष्ट्रपति है। मनुष्य के रूप मे सभी मनुष्य हैं किन्तु विकास की दृष्टि से उनमे रात-दिन का अन्तर है। एक मनुष्य की स्थिति पूर्ण विकसित अवस्था मे है जब कि दूसरे मनुष्य की स्थिति का रूप अविकसित है। एक नागरिक की अपेक्षा आदिवासी का विकास कम हुआ है। इसीलिए कहा गया है कि प्रत्येक मनुष्य को यथा विकास तथा यथा स्थान स्वीकार किया जाना चाहिए। ऐसा करने वाला ही समता सिद्धान्त के मार्ग का पथिक होता है। पृथक्ता की विषम मान्यता, जीवन मे उथल-पुथल मचा देती है। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान को ही ले लीजिए। दोनो देशो के निवासी आज अशात है, क्यो ? इसलिए कि इन मे विषमता घर किये

वठी है। ऐसी स्थिति में किसी भी कार्य मे मन नही लगता हैं। पिछले दिनो जोधपुर के एक भाई यहाँ आये थे। वे कहते थे कि महाराज पाकिस्तानी हमले के दिनो मे हमारी हालत वडी खराब हो गई थी। सामायिक सवर आदि किसी भी क्रिया में मन नही लगता था। यही भय रहता था कि न जाने कब क्या हो जाय। हवाई जहाज आकाश मे मंडराते और हमे डर लगता न जाने कब किस समय वम गिरा दे। हम सदा भयभीत बने रहते थे। मन मे उथल-पुथल मची रहती थी। आपसी सघर्ष के कारण ही यह सारी विपमता कि स्थिति वनी। ऐसे समय मे किसी सावक का क्षेत्र कैसे प्रशस्त हो सकता था। शास्त्र मे गृहस्थ धर्म, कुल धर्म, सघ धर्म, नगर धर्म, और राष्ट्रधर्म आदि के बाद चारित्र्य धर्म का वर्णन किया गया है। आप सोचे नगर धर्म, राष्ट्र धर्म कुल धर्म और फिर अत मे श्रुत धर्म और चारित्र्य धर्म क्यो बतलाया गया ? गृहस्थ धर्म का अस्तित्व स्वीकार किये विना नगर धर्म नही टिक सकता हैं और नगर धर्म को स्वीकार किये बिना राष्ट्र धर्म नही टिक सकता है और राष्ट्र धर्म को स्वीकार किये विना सघ धर्म नही टिक सकता है। इस धर्म व्यवस्था को निभाने के वाद ही हम श्रुत धर्म और चारित्र्यधर्म को जीवन मे उतार सकते है। नगर धर्म की व्यवस्था ठीक रहने पर ही नगर मे रहने वाले अपनी धर्म ध्यान आदि क्रियाऐ निश्चित होकर कर सकते है। आज आप जयपुर नगर मे शान्ति से बैठें हुए हैं लेकिन यदि आपके मस्तिष्क मे यह बात आ जाय कि नगर को व्यवस्था टूट गई है शहर मे लूट खसोट हो रही है तो क्या आप शान्ति से धर्म-उपदेश सुन सकेगे ? आप उसी समय अपनी-अपनी व्यवस्था को ठीक करने मे लग जायेगे और उपदेश सुनना छोड देगे। जहां नगर धर्म की व्यवस्था टूटती है वहा अध्यात्मिक धर्म भी नही हो पाता। पाकिस्तान वन गया। वहा भी श्रुत धर्म और चरित्र धर्म है। कुछ वहाँ रह गये थे लेकिन क्या वे शान्ति से रह रहे थे ? जो हिन्दू सरक्षण की दृष्टि से भारत मे आना चाहते थे, उन्हे यहा लाया गया। यह राष्ट्र धर्म का ही तो कार्य है। धर्म की आराधना के लिए इन व्यवस्थाओ का होना अत्यन्त आवश्यक है। हमारा लक्ष्य आध्यात्मिक है, आत्मा से परमात्मा वनने का है। प्राणी मात्र का अस्तित्व स्वीकार करने पर ही हमारी आध्यात्मिक साधना सफल हो सकेगी। अपना एक लक्ष्य वनाकर अपनी आत्मा को देखिये। आप इस लाल भवन की तीसरी मंजिल के ऊपर कमरे में जाना चाहते है। सडक पर खडे खडे आप ने कमरे को लक्ष्य वना लिया। क्या आप सड़क से सीधे ही ऊपर चले जायेगे, इसके लिए आप को

अनेक अस्तित्व स्वीकार करने पडेगे। पहिले द्वार मे प्रवेश करना पडेगा। सीढियो का अस्तित्व मानना पडेगा फिर कही गन्तव्यस्थान पर पहुँच पायेगे। इसी प्रकार मोक्ष को साधना के लिऐ ससार मे जितने प्राणी है उन सबके अस्तित्व को स्वीकार करना होगा। आपने दैनिक पत्रो मे पढा होगा कि हिन्दुस्तान-पाकिस्तान का एक समझौता हुआ हैं। भारत के अधिकारी दोनो देशो मे शान्ति का वातावरण बनाना चाहते है इसके लिए दोनो पडौसी देश शान्ति के साथ सभी समस्याओ का समाधान खोजे। जब तक इस ओर सच्चे हृदय से निर्णय नही किया जावेगा तब तक कोई भी राष्ट्र शान्ति से नही रह सकता।

नैतिकता का प्रहरी

कमलसेन का कथानक कुछ दिनो से चल रहा हैं। वह अपने जीवन का दृष्टिकोण सही बना कर चल रहा हैं। वह सोच रहा है कि गृहस्थ अवस्था की दृष्टि से सब अपना अस्तित्व रखते है। इस अस्तित्व मे नैतिकता अनैकतिकता दोनो ही होती हैं। नैतिक व्यक्ति नैतिकता पर चलता हैं, और अनैतिक व्यक्ति अनैतिकता पर चलता है। राजकुमार का जीवन नैतिकता का जीता जागता आदर्श था। तभी तो वह करुण क्रन्दन सुनकर जगल मे आया था। एक नारी की सुरक्षा के लिए ही उसने ऐसा किया था। वहा जाकर उसने देखा कि वह जिसे बचाने आया था वह उसे अपने रूप यौवन के जाल मे फसाना चाहती है। उस नारी ने अनेक वाक् जाल फैलाये, अनेक प्रपन्च किए, पर राजकुमार पर उनका कोई प्रभाव नही पड सका। तब उस स्त्री ने एक दाव और चलाया—पैतरा बदल कर उसने राजकुमार को रोका और कहा—कुमार ? तुम अपने आपको राजकुमार मानते हो। पर आपने क्षत्रीय धर्म कलंकित कर दिया। क्षत्रीय तो सिह के तुल्य होते है जब कि तुम तो आज श्वान वृत्ति दिखा रहे हो। श्वान सूने घर मे जाता है और चुपचाप दुम दबाकर निकल जाता है। पहले तो वीरता का दम्भ लेकर आपने इस भवन मे प्रवेश किया था, और अब चुपचाप दुम दबाकर भागे जा रहे हो। यह श्वान प्रवृत्ति नही तो और क्या है ? मुझ से हार क्यो गये, कुछ आप भी वीरता दिखाओ। मेरे पास तो कोई शस्त्र भी नही है, मेरी बातो को सुनकर ही घबरा गये ! राजकुमार उसके इन वचनो को सुनकर आश्चर्य मे पड गया और सोचने लगा—यह क्या कह रही हैं। यह अपनी भावना के अनुरूप सबको देखना चाहती है। मैंने इसे बहन मान लिया है। फिर भी इसका मन शान्त नही हुआ है। यह मुझे भाई के रूप मे

वठो है। ऐसी स्थिति मे किसी भी कार्य मे मन नही लगता हैं। पिछले दिनो जोधपुर के एक भाई यहाँ आये थे। वे कहते थे कि महाराज पाकिस्तानी हमले के दिनो मे हमारी हालत वडी खराव हो गई थी। सामायिक सवर आदि किसी भी क्रिया मे मन नही लगता था। यही भय रहता था कि न जाने कब क्या हो जाय। हवाई जहाज आकाश मे मंडराते और हमें डर लगता न जाने कव किस समय बम गिरा दे। हम सदा भयभीत बने रहते थे। मन मे उथल-पुथल मची रहती थी। आपसी सघर्ष के कारण ही यह सारी विषमता कि स्थिति वनी। ऐसे समय मे किसी साधक का क्षेत्र कैसे प्रशस्त हो सकता था। शास्त्र मे गृहस्थ धर्म, कुल धर्म, सघ धर्म, नगर धर्म, और राष्ट्रधर्म आदि के वाद चारित्र्य धर्म का वर्णन किया गया है। आप सोचे नगर धर्म, राष्ट्र धर्म कुल धर्म और फिर अत मे श्रुत धर्म और चारित्र्य धर्म क्यो वतलाया गया? गृहस्थ धर्म का अस्तित्व स्वीकार किये विना नगर धर्म नही टिक सकता हैं और नगर धर्म को स्वीकार किये विना राष्ट्र धर्म नही टिक सकता है और राष्ट्र धर्म को स्वीकार किये विना सघ धर्म नही टिक सकता है। इस धर्म व्यवस्था को निभाने के वाद ही हम श्रुत धर्म और चारित्र्यधर्म को जीवन मे उतार सकते है। नगर धर्म की व्यवस्था ठीक रहने पर ही नगर मे रहने वाले अपनी धर्म ध्यान आदि क्रियाऐ निश्चित होकर कर सकते है। आज आप जयपुर नगर मे शान्ति से वैठें हुए हैं लेकिन यदि आपके मस्तिष्क मे यह बात आ जाय कि नगर की व्यवस्था टूट गई है शहर मे लूट खसोट हो रही है तो क्या आप शान्ति से धर्म-उपदेश सुन सकेगे? आप उसी समय अपनी-अपनी व्यवस्था को ठीक करने मे लग जायेगे और उपदेश सुनना छोड देगे। जहा नगर धर्म की व्यवस्था टूटती है वहा अध्यात्मिक धर्म भी नही हो पाता। पाकिस्तान वन गया। वहा भी श्रुत धर्म और चरित्र धर्म है। कुछ वहां रह गये थे लेकिन क्या वे शान्ति से रह रहे थे? जो हिन्दू सरक्षण की दृष्टि से भारत मे आना चाहते थे, उन्हे यहा लाया गया। यह राष्ट्र धर्म का ही तो कार्य है। धर्म की आराधना के लिए इन व्यवस्थाओ का होना अत्यन्त आवश्यक है। हमारा लक्ष्य आध्यात्मिक है, आत्मा से परमात्मा वनने का है। प्राणी मात्र का अस्तित्व स्वीकार करने पर ही हमारी आध्यात्मिक साधना सफल हो सकेगी। अपना एक लक्ष्य वनाकर अपनी आत्मा को देखिये। आप इस लाल भवन की तीसरी मंजिल के ऊपर कमरे मे जाना चाहते हैं। सडक पर खडे खडे आप ने कमरे को लक्ष्य वना लिया। क्या आप सडक से सीधे ही ऊपर चले जायेगे, इसके लिए आप को

अनेक अस्तित्व स्वीकार करने पडेगे। पहिले द्वार मे प्रवेश करना पडेगा। सीढियो का अस्तित्व मानना पडेगा फिर कही गन्तव्यस्थान पर पहुँच पायेगे। इसी प्रकार मोक्ष को साधना के लिऐ ससार मे जितने प्राणी है उन सबके अस्तित्व को स्वीकार करना होगा। आपने दैनिक पत्रो मे पढा होगा कि हिन्दुस्तान-पाकिस्तान का एक समझौता हुआ हैं। भारत के अधिकारी दोनो देशो मे शान्ति का वातावरण बनाना चाहते है इसके लिए दोनो पडौसी देश शान्ति के साथ सभी समस्याओ का समाधान खोजे। जब तक इस ओर सच्चे हृदय से निर्णय नही किया जावेगा तब तक कोई भी राष्ट्र शान्ति से नही रह सकता।

नैतिकता का प्रहरी

कमलसेन का कथानक कुछ दिनो से चल रहा हैं। वह अपने जीवन का दृष्टिकोण सही बना कर चल रहा हैं। वह सोच रहा है कि गृहस्थ अवस्था की दृष्टि से सब अपना अस्तित्व रखते है। इस अस्तित्व मे नैतिकता अनैकतिकता दोनो ही होती हैं। नैतिक व्यक्ति नैतिकता पर चलता हैं, और अनैतिक व्यक्ति अनैतिकता पर चलता है। राजकुमार का जीवन नैतिकता का जीता जागता आदर्श था। तभी तो वह करुण क्रन्दन सुनकर जगल मे आया था। एक नारी की सुरक्षा के लिए ही उसने ऐसा किया था। वहा जाकर उसने देखा कि वह जिसे बचाने आया था वह उसे अपने रूप यौवन के जाल मे फसाना चाहती है। उस नारी ने अनेक वाक् जाल फैलाये, अनेक प्रपन्च किए, पर राजकुमार पर उनका कोई प्रभाव नही पड सका। तब उस स्त्री ने एक दाव और चलाया—पैतरा बदल कर उसने राजकुमार को रोका और कहा—कुमार ? तुम अपने आपको राजकुमार मानते हो। पर आपने क्षत्रीय धर्म कलकित कर दिया। क्षत्रीय तो सिह के तुल्य होते हैं जब कि तुम तो आज श्वान वृत्ति दिखा रहे हो। श्वान सूने घर मे जाता है और चुपचाप दुम दबाकर निकल जाता है। पहले तो वीरता का दम्भ लेकर आपने इस भवन मे प्रवेश किया था, और अब चुपचाप दुम दबाकर भागे जा रहे हो। यह श्वान प्रवृत्ति नही तो और क्या है ? मुझ से हार क्यो गये, कुछ आप भी वीरता दिखाओ। मेरे पास तो कोई शस्त्र भी नही है, मेरी बातो को सुनकर ही घबरा गये ! राजकुमार उसके इन वचनो को सुनकर आश्चर्य मे पड गया और सोचने लगा—यह क्या कह रही है। यह अपनी भावना के अनुरूप सबको देखना चाहती है। मैंने इसे बहन मान लिया है। फिर भी इसका मन शान्त नही हुआ है। यह मुझे भाई के रूप मे

नही मान रही है। अपनी वासना को मुंह से उगलती ही जा रही है। कुछ भी हो मैं वीर हूँ। मैं इस नारी का गुलाम नही बन सकता। बन्धुओ ? उस राजकुमार के विचार कितने पवित्र है। वह किसी के मोह मे नही फंसना चाहता ! वह अपने चरित्र का रक्षक है। एक नारी तो क्या उसे कोई भी शक्ति अपने मार्ग से नही डिगा सकती।

वासना के दास वीर नही होते, कायर होते है। आप जानते ही है रावण जैसे राजा के मन में वासना की दासता आ गई थी। वह अपनी इच्छा पूर्ति के लिए सीता के चरणो मे लका का साम्राज्य भी चढाने को तैयार था। पर सीता एक पवित्र सती थी। रावण की सारी शक्ति का उसने डट कर मुकाबला किया! अन्त मे जीत उसी की हुई। यह जीत उसकी पवित्रता की जीत थी। राजकुमार सोच रहा है मुझे वीरता का ताना मार कर यह अपना दास बनाना चाहती है लेकिन मैं काम शस्त्र से हारने वाला नही हूँ। इसके कहने मात्र से मैं श्वान थोडे ही बन जाऊगा। मैं तो क्षत्रिय सिह हूँ ? मेरी वीरता इसी बात मे है कि मैं प्रत्येक विषम स्थिति का डट कर सामना करू। यही मेरी वीरता का माप दण्ड है। अनैतिक कार्य वीर नही कायर पुरुप ही करते हैं।

राजकुमार ने कहा तुम मेरी वीरता को क्या चुनौती दे रहे थे। मै डर कर भाग नही रहा हूँ। अपितु दृढता के साथ अपनी स्थिति मे खडा हूँ शक्ति कोई दिखाने की वस्तु नही है। वह तो समय पर ही काम मे ली जाती है। तुम तो नारी हो, यदि देवागनाये भी आये तो वे भी मुझे अपने शील स्वभाव से नही हटा सकती। मै आध्यात्मिक क्षेत्र का सेनानी हूँ। शक्ति और विवेक मेरे शस्त्र है। मैं तुम्हारे काम बाणो से घायल होने वाला नही हूँ। क्षात्र धर्म के साथ-साथ नैतिक बल भी मेरा अखण्ड सम्बल है। मैं तुम्हे बहन कह व मान चुका हूँ। यही सोच कर खड़ा हूँ। क्या अब भी तुम्हे कुछ कहना शेप है ?

तरुणी बोली—तुम अपने आपको वीर बता रहे हो। यह वीरता की बाते मेरे सामने कह रहे हो। मेरे सहारे ही इस जगल मे निर्भय खडे हो। जगल मे कोई शेर निकल आया तो तुम्हारी वीरता भाग खडी होगी।

तरुणी के विचार सुनकर कुमार बोला—तुम पहले अपने कर्त्तव्य को समझलो और मुझे भाई के रूप मे स्वीकार कर लो। फिर मेरा पराक्रम देखना। एक शेर तो क्या, यदि सौ शेर भी आजाये, तो मैं तुम्हारी

उनसे रक्षा करूंगा । कुमार इतना कह ही रहे थे कि सामने से एक भयंकर सिह आता हुआ दीख पडा ।

सिंह भी चरणों में झुक गया

देखिये वह सिंह आ गया । अब आपकी वीरता का पता चल जावेगा । शीघ्रता करिये, कही सिंह आक्रमण न कर दे, तरुणी ने कहा ।

कमलसेन बोला डरने की कोई बात नही है । वह हमारा कुछ भी नही बिगाड सकता। उसके पास कोई शस्त्र नही था, किन्तु मनोबल अवश्य था, आध्यात्मिक शक्ति थी । वह वीरता से डटकर खडा हो गया और अपनी समता भरी दृष्टि से सिंह की ओर देखने लगा जिसकी दृष्टि सिंह से अविमेश रूप से मिल जाती है उस पर शेर आक्रमण नही करता है । उसके स्नेहपूर्ण दृष्टिपात मात्र से सिंह चरणो मे झुक गया । उस समय का दृश्य बडा ही समतापूर्ण था । सिंह का सिर सहलाते हुए राजकुमार बोले—देखा अहिंसा दर्शन का प्रभाव। यह मासाहारी पशु है किन्तु आज मेरा साथी बन गया है । इसमें भी आत्मा है और मुझ मे भी । जब मैं इसका शत्रु नही हूं तो यह मेरा शत्रु क्यों कर होगा । समता की भावना से आज मेरा मित्र बन गया है ।

तरुणी कहने लगी—तू कोई मंत्रवादी प्रतीत होता है अन्यथा सिंह जैसा क्रूर पशु तुझे मारे बिना नही छोडता । मनुष्य और सिंह मे तो सदा से शत्रुता रही है । इसके उत्तर मे कुमार कुछ कहना ही चाहते थे कि उस भवन के भीतर से एक युवा व्यक्ति हाथ मे नगी तलवार उठाये हुए निकला और ललकार कर बोला—अरे तू इस स्त्री से क्या बातें कर रहा है ? जानता है यह कौन है ? पराई स्त्री से इस प्रकार बाते करना अनैतिकता नही तो और क्या है ?

इस नाटकीय दृश्य को देखकर कमलसेन आश्चर्यचकित हो गया । वह सोचने लगा—यह क्या प्रपंच है । कुछ समझ मे नही आता इधर यह स्त्री है, इधर यह सिंह और बीच मे यह आदमी आगया । फिर भी वह साहसपूर्वक बोला—भाई मैं अपने आप यहा नही आया । इसने करुण क्रन्दन करके पुकारा तभी मुझे यहा आना पड़ा । इसे सांत्वना देने की दृष्टि से ही मैं यहा आया हूं । अनैतिकता नाम की कोई स्थिति मेरे जीवन मे नही है । तुम बताओ कि तुम कौन हो ? और यहां क्यों आये हो ?

तेरे पास कोई शस्त्र नही है अन्यथा अभी तुझे वता देता कि मैं कौन हूँ। पहिले शस्त्र सम्भाल फिर मेरा परिचय ले। वीरो का परिचय शस्त्रो से ही होता है। उसकी इन वातो से कुमार तनिक मुस्कराये और फिर बोले—यह ठीक है कि कि मेरे पास कोई वाह्य शस्त्र नही है पर मेरे पास ऐसा शस्त्र है जिसे कोई देख नही सकता। वह शस्त्र है समता का। इसी शस्त्र के सहारे मैं सभी संकटों का सामना करता हूँ और करता रहूँगा। तुम भी अपने बल का परीक्षण यदि चाहो तो करलो।

फिर तो तू डरपोक है। तूने जो अपराध किया है, मैं तुझे उसका दण्ड अवश्य ही दूंगा। ले सभल जा। अब मैं बताता हूँ कि मैं कौन हूँ। अपनी व्यर्थ की बाते बन्द कर और मरने को तैयार हो जा। अभी वह इस प्रकार कुछ कह ही रहा था कि कुमार ने एक झटके में उसके हाथ से तलवार छीन ली और उसे आकाश मे घुमाकर कर कहा—लो अब तो मेरे हाथ मे शस्त्र आ गया। बोलो तुम क्या चाहते हो? मेरा बल देखना चाहते हो तो वह भी देख लो। यदि प्राण बचाकर भागना चाहते हो तो भाग जाओ। कुमार के इतना कहते ही उस युवा व्यक्ति ने दूसरी तलवार सम्भाल ली। अब दोनो के हाथ मे शस्त्र है। दोनों एक दूसरे के सामने खड़े है। एक समता मार्ग का सैनानी है तो दूसरा विषमता का। इसे दो व्यक्तियो का संघर्ष न कहकर समता और विषमता का संवर्ष कहूं तो अधिक उपयुक्त होगा। समता युगो-युगो से जीतती आयी है फिर भी उसमें अभिमान नही है और विषमता हर बार हारी है फिर भी उसकी अह की भावना नही मिट पाई है।

कुमार वीतराग के सिद्धात पर विश्वास रखता है। वह निरपराधी पर कभी प्रहार नही करता। हा, यदि कोई उस पर प्रहार करता है तो फिर उससे दो-दो हाथ किये बिना नही रहता। सामने खडे व्यक्ति को प्रहार करने की स्थिति देखकर वह उससे लौहा लेने को तैयार हो जाता है।

अभी आक्रमण प्रत्याक्रमण होने ही वाला था कि सारा दृश्य क्षण के क्षण मे कुछ से कुछ हो गया। अब न वहा भवन है, न सिंह, और न खड्ग धारी मनुष्य। वहाँ तो दिव्य स्वरूपधारी देवता नम्रतापूर्वक हाथ जोड़े खड़ा है। चारो ओर से कमलसेन कीजय-जय की ध्वनियाँ आ रही है। वह देवता क्षमा-याचना करते-करते बोला—आप धन्य है। आपके समान इस ससार मे अन्य कोई दूसरा वीर नही हैं। आप पुरुष ही नही महापुरुष हैं।

मैं तो पहले ही आपके चरणो मे आना चाहता था परन्तु परीक्षा लेने की भावना एकाएक उठ खडी हुई थी। आप सचमुच ही जीत गये और मैं हार गया। इस रूप मे आपके दर्शन करके मैं धन्य हो गया। इतना कह कर उसने एक बार फिर राजकुमार के चरणो मे नमस्कार किया और क्षण के क्षण मे आखो से ओझल हो गया। कमलसेन कुमार एक बार तो इस नाटकीय दृश्य को देखकर आश्चर्य चकित हो गये। परन्तु दूसरे ही क्षण अपनी स्थिति को सम्भालते हुए विचार करने लगे—यह सब कुछ वीतराग वाणी पर चलने का फल है। आज मेरी नही समता सिद्धात दर्शन की विजय हुई है। यदि मैं तनिक भी अपने मार्ग से डिग जाता तो मुझे यह सौभाग्य कभी नही प्राप्त हो सकता था। अपनी कर्त्तव्य परा-यणता के कारण हो आज मैं इस परीक्षा मे उत्तीर्ण हुआ हूँ। अन्यथा न जाने क्या होता। इम सभी वातावरण से कुमार की आत्मिक दृढता को और भी प्रोत्साहन मिला। उसने अपने जीवन को और भी अधिक विक-सित करने का सकल्प कर लिया। थोडी दूर पर सामने एक वृक्ष के नीचे गये और शुद्ध भावेन ध्यानस्थ हो गये। ध्य न मे पुनः-पुन अपने लक्ष्य का चिन्तन करने लगे।

लाल भवन
१८ अगस्त, ७२

